यह पुस्तकनु रखडता रखकर अशातना करना नहि ।

॥ वैराग्य भावना ॥

— हिन्दी —

भव्यजीवसमुदायकु धर्मकी सन्मुख रखनेवाली
अनेक प्रकारकी हितशिक्षाओंसे भरपूर



लेखक —

पंन्यासजी महाराजश्री भक्तिविजयजिगणी ।



- प्रकाशक -

शा. उमेदभाइ सुराभाइ 'अमदावाद'-(माधुपुरा)



प्रथमावृत्ति—— प्रत -१०००

वीराब्द -२४६२ विक्रमाब्द -१९९२

શ્રી જૈનભાસ્કરોદય પ્રિન્ટિંગ પ્રેસ—જામનગર.
મેનેજર—બાલચંદ હીરાલાલે છાપ્યું.

बालब्रह्मचारी पंन्यासजी महाराज श्रीभक्तिविजयजीगणी



જન્મ સં. ૧૯૩૭ આસો શુ. ૮ (શમી) દીક્ષા સં. ૧૯૫૭ મહા વદ ૧૦

ગણિપદ પન્યાસપદ

સં. ૧૯૭૫ અસાડ શુ. ૨ કપડવંજમાં સં. ૧૯૭૫ અસાડ શુ. ૫

॥ હરિગીત ॥

વીતરાગવાણી સરસ શીતળ અધિ- ચંદન બાનના
જાણી મદા ભાવે ભ-ી વાચો આ વૈરાગ્યભાનના
વૈરાગ્યનામિત ચિત્ત કરવા નિત્ય ભાવે ભવીજના,
વાચો વિચારો ન નુવારો જીવન એહુથી આપણા

श्रीजिनस्तुति

त्रैलोक्य युगपत्करान्बुजलुठन्मुक्तावदालोकते,
जन्तूना निजया गिरा परिणमत्य सूक्ष्माभापते ।
स श्रीमान भगवान विचित्रविविधिर्मिर्दैवासुरैरर्चितो,
वीतत्रासविलासदासरभस पायाज्जिनाना पनि ॥२

गुरुस्तुति

य घन्तेऽप्रतिमप्रभावकरत्ना विश्वोपकाराहता,
दुर्दान्तप्रतिवादिकुञ्जरघटामत्रासकण्ठीरवा ।
वैराग्यामृतवर्षणप्रशमितमोहाममोहानना',
सर्वत्रापि गुणाढ्यसनिन श्रीधर्मसूरीश्वरा ॥३

॥ प्रस्तावना ॥

पूज्यपाद न्यायविशारद न्यायतीर्थ उपाध्यायजी महाराज-श्रीने भव्यप्राणिवर्गका हितके लिये आत्माका शुद्ध स्वरूपका अमूल्यबोध स्वल्प शब्दमें हि बतला दिया है। आत्माका सहज और स्वाभाविक स्वरुप बतलानेके लिये महाराजश्रीने ज्ञानसार अष्टकजी में कहते है की'—

निर्मल स्फटिकस्येव सहजरूपमात्मन

आत्माका सहज शुद्ध स्वरूप निर्मल स्फटिक जैसाहि है। परन्तु अनादिकालसे परद्रव्यका सयोगकु लेकर इस स्वरूपमें फरक पडही जानेसे उसकी निर्मलता आविर्भाव प्राप्त किये हुइ अनुभववाली होती नहिं है। परद्रव्यका सयोग जितने प्रमाणमें आधिक होता जाता है इतनेहि प्रमाणमें आत्माका शुद्ध स्वरूप आच्छादित हो जाता है। और इसि वजहसे आत्माका अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र और अनन्तवीर्य आच्छादित होकर वहोतसा कम अनुभवमें आता है।

परायि वस्तुकु अपनी मान लेनेकी वजहसे अपना

आत्माका निर्मल स्फाटिक जैसा शुद्ध स्वरूपमें अनादि कालसे बनाहुवा फरक यहि सच्चा सुखका अनुभव प्राप्त करनेमें अपनेकु विघ्नस्वरूप है। और यहि फरक अपनेकुं दुःखकी परंपरामें धकेल देता है। यह वस्तुस्थिति यथार्थ समजमें आजावे तव अपने आत्मामें वहोतहि अच्छा विकास होता है वह स्वाभाविक है। इसि वजहसे आत्माका निर्मल स्वरूप प्रगट करनेके लिये हि आत्माकि उपर अनादि कालसे लगाहुवा राग उसरागकु दूर करनेके लिये उद्यमशील वनना चाहिये। और राग दूर होनेसे हि वैराग्य प्रगट होता है तवहि आखिरमें सम्पूर्ण सफलता प्राप्त करके सम्पूर्ण तथा वैराग्यवान वनकर आत्माका शुद्ध स्फटिक जैसा निर्मल स्वरूप प्रगट करके अखण्ड आत्मिक सुखका भोक्ता वननेके लिये भाग्यशाली अपने लोक वन सकते है। यह हकिकत निश्चित है।

एसा प्रकारकी अत्यन्त उदारता और स्वपरहित करनेवाली मनोवृत्तिकु लेकर श्रीमद् पन्यासजी महाराजश्री भक्तिविजयजी ने वैराग्य भावना नामका यह पुस्तक रचनेका श्रम उठाया है वह सर्वांस सफल है। विरागपणा वहि वैराग्य वैराग्यसे स्व और परका आत्माकी प्राप्ति हो और प्रत्येक आत्मासमुदाय

अपना निर्मल शुद्ध स्वरूप जो अधुना नही देखता है वह आविर्भाव स्वरूपसे प्रगट करके अनन्त और अक्षय सुखका भोक्ता हो, यदि उच्चतम भावना जिसमें रहि है उसका नाम वैराग्य भावना यथार्थ बनसकता है, यह पुस्तकमें कौनसी स्थितिमें जीवका अध पत्तन होता है वह बताकर उस अधःपतन होनेके बाद सूक्ष्म निगोद तकभि पहोंचकर वहा अनेक प्रकारके दु खानुभव करनेकी बाद उस विषयकि अपनी उपर अच्छि तरहसे प्रतिकृति फोटो पडसके इसिलिये सुक्ष्मनिगोदना भवकी गिनती अलग अलग रीतिसे करके अपने चक्षुसमुदायकु खोलनेका प्रयत्न किया गया है । और दुसराभी ससारकी रखडपट्टी कहा कहा होती है वह बतलाकर मानवभव कितनि मुश्केलीके बाद प्राप्त होता है वह अलग अलग दृष्टान्त शास्त्रोक्त रितिसे बतलाये है । और ऐसि प्रकारसे महा मुश्केलिसे प्राप्त हुवा ऐसा मनुष्यभवमें बनसके इतना लाभ उठाकर आत्माकु निर्मल बनहाके बनानेके लिये सद्गुरकी पाससे धर्मश्रवण करके उसका आदर करनेका अत्यन्त असरकारक उपदेश दिया है। "श्रेयासि बहु विघ्नानि ।" इस कथनके अनुसार धर्मक्र आदर करनेयोग्यरूप श्रेयकारीकार्यमें कौनसा २ प्रकारका विघ्न। बचमें आते

है। उसकु भलिभातिसे बतलाकार उसविघ्न करनेवाळे तेरह काठियाका स्वरूप दाखल करके सचोट स्वरूप समजाया है कि जिससे अन्तलोक धर्मका आदर करके आत्माकु निर्मल बनाते हुवे परमोत्कृष्ट कार्यमें अंतरायभूत दुश्मन समुदायकु दूर करके सावधानीसे आगे बढते जाते हुवे, और हरेक शुभ कार्यकी सफलतामें विरोध करनेवाला आत्माका शत्रु समुदाय उससे सावधान रहकर उसकु दुर करते हुवे आत्महितकी शुभ प्रवृत्तियांकु आदर करनेकी आवश्यक्ता जिसी रितिसे कीयि गयि है। इसी तरहका निषेध विधिका विधानसे अतिरिक्त कार्यसिद्धि पूर्ण होसक्ति नहि है। उसी वजहसे निषेध करने योग्य वस्तु समुदायकु बतानेकी बाद आदरणीय वस्तु-समुदायकी ओर अपना लक्ष्य उत्तम रीतिसे खिंचनेमें आया है। और ऐसा करनेमें बहोत परिश्रम उठाया है ऐसा अपनेकु दृष्टिगोचर होता है। और यह पुस्तकमें अनित्यादि द्वादश भावना; मार्गानुसारिके पांत्रिस गुण; आत्मशुद्धि उपाय; सूत्रोका पाठ देकर प्रतिमापूजनकी कियी हुइ सिद्धि; सम्य-क्त्वका स्वरूप; और उसका भेद श्रावककु अहर्निश याद रख-नेका तिन मनोरथ, अंतसमयकी आरधना; तदन्तरगत अति-

चार, आलोचना व्रतोच्चारण और शास्त्रमें कही हुइ भितनि हकिकत इत्यादि अनेक विषयकु दाखिल करके पुस्तकक्कु अनेक रितिसे रसमय बनाया है ।

ऐसा उत्तम प्रकारके पुस्तक उपर जनसमुदायका चित्त लगे यह स्वभाविक है और उसी वजहसे उसकी माग जास्ती हि हुवा करति है । यह पुस्तक प्रथम स. १९७२ में सक्षेपसे प्रगट हुवा तबसे आजतक में विशेष विशेष विशेष भागकी साथ गुजराती भाषामें पाच आवृत्ति प्रगट हो चुकी है । और सब बिकाभिगइ है । यहि उसकी उपयोगिता सिद्ध करसक्ति है। सवत १९८९ की सालमें प. महाराज श्री भक्तिविजयजीका सुरतमें चातुर्मास हुवा उस समय उपधान तपमें ४२५ श्रावक श्राविका समुदायने प्रवेश किया था उस समय यह पुस्तककी पारावार माग होनेसे उदार दिलके गृहस्थोकी मददसे सुरत-वाले शेठ नवलचन्द खिमचन्दने छठ्ठि आवृत्तिकी चार हजार प्रत छपवाकर बहार पाडदिया और अनेक भव्यात्माक्कु भेट देदी और अभिभी दीइजाती है । औरभी महेसाणावाले पारेख मगळदास लल्लुभाइकी भावना ऐसी हो गइकि यह पुस्तक गुजराती मैने पढा है । मुझ बहुत लाभ हुवा । आत्मविजय जैसा

जगत भरमें दुसरा एक भी लाभ नहिं है। यह पुस्तक बाल, युवान; वृद्धा, इत्यादि प्रत्येक बुद्धिवान अपन अपनका अनुयोनुसार चार लाभ देनेवाला है। यह देखनेसेहि मुझकु सहज विचार आयाकी मेरा प्रवास व्यापारवशात वहोत दूरदूर देशमें होता है वहांके लोककु धर्मसामग्री किस तरह मिलाति है उसका विचार करते हुए यह वहोत लाभदायि होगा परन्तु वह लोक गुर्जरभाषा और गुर्जर अक्षरके नहिं पीछानते इस वजहसे हिन्दीभाषामें देवनागरी अक्षरमें यह पुस्तक तैयार हो जाय तव जहां मुनिवरोका विहार नहिं है उसे स्थलमें रहनेवाले जनसमुदायमें यह पुस्तक वहोत अच्छि असर करेगा। यहि भावनाकु अमलमें मुकनेके लिये मैने मेरी जिज्ञासा मेरा परम उपकारी मुनिराज श्रीभुवनविजयजीद्वारा पन्यासजी महाराज श्री भक्तिविजयजीने विज्ञापन करते हि मेरी दलीलकु मान दिया और लिखा किः—

त्यागी मुनिसमुदायने पुस्तक लिखनेका इतनाहि प्रयोजन हैकी जगत भरके त्यागी ऐसा वैराग्यमय पुस्तक पठकर क्षण भंगुर वैभवआदिक वस्तुसे दूर होकर आत्मविकास प्राप्त कर सके इत्यादि शुभ सूचनायें मिलि। उपरोक्त महेसाणावाले

पारेख मगळदास ल्लुभाइकी भावना मुझकु उत्तम लगनेसे और दूसरेभी कितनेक गृहस्थोकी प्रेरणासे यह पुस्तक हिन्दीमें मुद्रित कियाजावे तब ज्होतहि लाभका सफ्ल हो जाय। वह सब हकिकत ध्यानमें लेकर मैने यह कार्य सहर्ष स्वीकार लिया और जामनगर निवासी एक अच्छे पण्डितकी पास उसका हिंदी भाषान्तर करवा कर मुनिराज श्रीभुवनविजयजी कीपासमें ससोधन करवाकर पाठकगणकी सामने आदर समर्पित कर चुका हु। तब पाठकगण यह पुस्तकको धीरजसे साद्यन्त पुन - पुन पढकर उसका मनन करके इसमे वतलाये हुवे सामग्रीकु अमलमें मुककर अपना आत्मकु वैराग्यमय बनाकर अपना निर्मल स्फाटिकका जैसा शुद्ध मूलस्वरूप प्रगट करके शाश्वत सुख आनन्दकु प्राप्त करनेके लिये उद्यमशील बनेगा।

यह हिन्दी पुस्तक प्रकाशित करनेके कार्यमें जो २ सद्गृहस्थोने सहायताकी है। उस महानुभावोका उपकार मानकर यह पुस्तक कुछ दृष्टिदोषसे अगर प्रेस दोपसे जो कुछ गल्त रहगइ हो उसके लिये क्षमा याचते हुए यहासे हि विरमता हू।

ली

उमेदभाइ सुराभाइ शाह

अमदावाद (मांडुपुरा)

विषयसूचि.



॥ श्रीशङ्खेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

॥ श्रीवैराग्य भावना ॥



नमो दुर्वाररागादि—वैरिवारनिवारिणे ।
अर्हते योगिनाथाय महावीराय तायिने ॥ १ ॥



—ः विना धर्म जीवोंका अधःपतन ः—

जगत् मात्रके हितचिन्तक देवाधिदेव सर्वज्ञ परमात्मा श्रीमहावीरप्रभुने सांसारिक जीवोंके आधि, व्याधि, उपाधि, संयोग, वियोग, जन्म, जरा, मरणादि दुःखोंसे छुडाके अविनाशि शाश्वत सुखानुभव करानेके लीये ही मुक्तिमार्गका उपदेश कीया है. जीसको अनुसरण करनेवाले के भव्यजीवों अनादिकालसे प्राप्त हुवे है. सांसारिक क्लेशोंका समूलोच्छेद करके मुक्तिनगरमें अखंड आनन्दानुभव कर रहे है.

जब के जीवों उन देवाधिदेवका उपदिष्ट (दिखायाहुवा) मार्गका अनुसरण न कर, अनादिकालसे प्राप्त हुवे पौद्गलिक वासनाके आधीन बन कर, धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष, यह चतुर्विध पुरुषार्थमें केवल अर्थ और कामकी पिपासामें लुब्ध होकर, धर्मके प्रभावसे मोक्षसुखकी प्राप्ति मनुष्य जन्ममें सुलभ होने परभी उसका अनादर करके, मीली हुई, मानवजन्मादि उत्तरोत्तर शुभोदर्क सामग्रीकों वृथा खो कर, अधोगतिकों प्राप्त करते है, और उसमेंभी कै बहुलकर्मी जीवो औरभी अधःपतित होकर अंतिम सूक्ष्मनिगोद पर्यन्त पहुंच कर अनंत दुःखाधीन हो जाते है. अनादि कालसे सूक्ष्मनिगोदमें रहा हुवा जीवों और भवभ्रमण करके फीर सूक्ष्मनिगोदमें गये हुवे जीवोंके दुःखोमें जराभी फरक नहि है. दोनो प्रकारके सूक्ष्मनिगोदी-जीवोंका दुःखोंकी श्रेणि जो आगे बताइ जायगी समान ही होगी. सिर्फ भवभ्रमण करके आखिर सूक्ष्मनिगोदमें गये, वे व्यावहारिक जीव कहलाते है, और अनंतकालसे कभिभी बहार नहि आये अव्यवहारिक गिने जाते है. अनादिनिगोद जो चौदह राजलोकमें ठोंसठोंसके भरी है, उसका असंख्यात गोलक है, प्रत्येक गोलकमें असंख्यात वे निगोदके जीवोंका शरीर है, और प्रत्येक शरीरमें अनंत जीव है, वे जीव भगवा-नकी केवळज्ञानदृष्टिके विना और किसीसे भी देखा जा सकता नहिं. जब ऐसे अतिन्द्रियपदार्थ विना सर्वज्ञ सर्वशक्ति परमात्माके विना कोइ देखने भी समर्थ नहि तो फिर शास्त्रमें दीखलानेकी

या यथार्थ कथन करनेकी शक्ति दूसरे साधारण मनुष्योंकी होनेका संभव ही कहा है ?

सर्वज्ञ परमात्मामें रागद्वेषादि होते ही नहि ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, और अंतराय इन चारों घातिकर्मकी बन्द उदयउदीरणा और सत्ता प्रकृति मूलसे ही नष्ट होनेके कारण आत्माकी अपूर्व शक्ति प्रकटित होनेसे केवलज्ञानसे यथास्थित वस्तु वस्तुस्वरूपेण देखकर भव्यजीवोंकों दीखाते है, लोकालोकका स्वरूप निरंतर केवलज्ञानमें प्रकाशित रहता है इससें उन्होंका बताया निगोदादि अतीन्द्रिय पदार्थोंमें लेशभी शंकाका कारण नहि है. उसी कारणसें—

तमेव सच्चं जं जिणेहिं भासियम्।

" वो ही सच्चा जिसकों जिनेश्वरदेवने कहा है " उसमें ओ आत्मा (मन) लेशभी शङ्का मत कर तेरी बुद्धि अल्प है. परमात्माका नित्य ज्ञानके आगे तेरी बुद्धि लेश मात्रभी कार्यकर्त्री न हो सके, यह स्वाभाविक है. सर्वज्ञ परमात्माके वचनमें श्रद्धावाले जीव अनादिकालके मिथ्यात्वकों तोडकर सम्यक्त्व प्राप्त करते है, और परंपरासे सांसारिक दुःखसेभी शीघ्र ही मुक्त होते है, जब शङ्कावाला (संशयात्मा) सम्यक्त्वी होनेपरभी सम्यक्त्वसे भ्रष्ट होकर जमाली प्रमुख के तरह संसारमें भटकते है, अब प्रथमनिर्दिष्ट निगोदका स्वरूप जो जिनेश्वर

देवने विस्तारसे सिद्धान्तमें वताया है उसका विशेष उल्लेख न करके फक्त निगोदके जीवोंका जन्ममरणादि असह्य दुःखोंका विवरण भावी जीवोंका हितके लिये दिखाते है.

यह जीवने सूक्ष्मनिगोदमें अनंतकाल व्यतीत कीया, वहां जन्ममरणादि वेदानायों सहन की, वह एक श्वासोश्वाससे लेकर पुद्‌गलपरावर्तनकाल पर्यन्तके उसके भवोंकी गणनादि वस्तु जाननेसे मालुम होगा. इस अवस्थामें जीवने वहोत दुःख सहन कीया है.

—सूक्ष्मनिगोदके भवोंकी गणना और दुःख—

एक श्वासोश्वासमें कुछ अधिक सत्तरह भव कीया,

एक मुहूर्तमें पांसठहजार पांचसो छत्तीस भव कीया.६५५३६

एक दिनमें १९६६०८० उनीशलाख छाछठहजार अस्सी भव कीया.

एक मासमें ५८९८२४०० पांच कोटि नवासीलाख वाशी-हजार चारसो भव कीया.

एक वर्षमें उसी निगोदीया जीवने ७०७७८८८०० संतर कोटी सत्ततरलाख अठासीहजार आठसो भव कीया.
(जीतने भव वताये उतने वख्त जन्ममरण समजना चाहीये)

अव सूक्ष्मवुद्धिसे यही विचारणीय है की एक वर्षमें उक्त भवो उसी स्थानमें कीया तो असंख्याता वर्षका एक पल्योपम,

दश कोटाकोटी पल्योपमका एक सागरोपम, वीश कोटाकोटी सागरोपमकी उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी मिलकर एक कालचक्र, अनता कालचक्रका एक पुद्‌गलपरावर्तन, वैसे अनता पुद्‌गलपरावर्तन काल पर्यन्त वह निगोदमें रहनेवाले जीवने कितने भव कीया ? कितनी वेदना सहना की ? इस विषयमें शास्त्रकार महाराजा कहते है —

जं नरए नेरइया, दुहाइ पावंति घोर अणंताइं ।
तत्तो अणंतगुणिअं, निगोअमज्झे दुहं होइ ॥१॥

अर्थः—नर्कमें वसते नारकी जीवों घोर अनता दुःख भोगते है और नारकीय दुःखोंसेभी अनता दुःखों निगोदमें रहे जीवो भोग रहे है.—

विवेचन.—निगोदमें अनता जीवोंको रहनेका एकही शरीर होनेसे अत्यन्त सकुचित स्थानमें अव्यक्त तीव्र वेदनायें भोगनी पडती है वे भी कब तक ? इस विषयमें शास्त्रकार स्पष्ट समर्थन करके फरमाते है —

तम्मि निगोअमज्झे वसिओ रे जीव! कम्मवसा ।
विसहंतो तिक्खदुःख, अणंत पुग्गल परावत्ते ॥

'अर्थ'—हे जीव ! इस निगोदमें कर्मवश होकर तीक्ष्ण दुःख भोगता हुआ, अनत पुद्‌गलपरावर्तन पर्यन्त रहा है.

विवेचनः—कर्मवश होकर निगोदमें अनंता पुद्गल परावर्तन पर्यन्त यह जीवको रहना पड़ा, घोर दुःख सहना पड़ा, एक पुद्गलपरावर्तनका काल अनंता है. तो फीर अनंता पुद्गलपरावर्तनका कहना ही कीया ? पुद्गलपरावर्तनका स्वरूप कै आगमोमें और पांचवा कर्मग्रंथमें विस्तारसे वताया है, वह गुरुद्वारा समजनेंसे मालुम होगा की यह जीव अनंतानंत काल पर्यन्त निगोदमें रह कर अथाग वेदना सह कर आया है; तो फीर कभी ऐसे दुःख उदित न हो वैसा उपाय योजना चाहिये.

इतना तो सभी समझ सकने है की एकवार जिस कार्य करनेसे अधिकाधिक वेदना भई हो जिससे पारावार नुकसान भया हो और जिससे मरणांत कष्ट उत्पन्न भया हो ऐसे कार्यमें पागल (मूर्ख) मनुष्यभी प्रवृत्ति नहि करता तो फीर सुज्ञ मनुष्य तो कैसे ही करेगा ? उसपरभी ऐसे अघोर पाप करके निगोदस्थानमे जाने लायक प्रवृत्ति करे तो उससे कैसा समझा जाय ? इसका सभी (सुज्ञ) भव्य जीव विचार करें.

वादर निगोदसें पंचेन्द्रिय तक भटकना

सूक्ष्मनिगोदमें अनंता काल व्यतीत कर यह जीव अकाम निर्जराका जोरसे वादर निगोदमें उत्पन्न भया. वहां आलु, ग्रंजन, मूलीके कांदे, सकरकंद, थेक, हरा आदि इत्यादि जिसमें अनंता जीवोका एक शरीर है. ऐसी अनंतकाय वनस्पतिमें—वादरनिगोदमें प्रविष्ट होके भटकते रहा, बहुत वेदना

भोगा, और वहासेभी अकामनिर्जराके योगसे पुण्यराशी वढनेसे पृथ्वीकायमें माटी, पाषाण, आदिमें और अप्कायमें तेजोकायमें वायुकायमें प्रत्येक वनस्पतिकायमें वेइन्द्रियमें, तेइन्द्रियमें चौरिन्द्रियमें तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियमे, जलचर, थलचर, खेचर, उरपरीसर्प, भुजपरीसर्प, यह पाच समूर्च्छिम और पाच गर्भज यह दश पर्याप्ता और दश अपर्याप्ता मीलके वीशों भेदमें अनतो काल जानेसे मनुष्यभव प्राप्त करना वहुत कठीन भया मानवजीवन मीलना सहज नहि है जो जल्द मीलें उस परभी यदि मिली तवभी प्रमादवश खो दिया तो फिर मीलना तो वहुत ही कठीन समजना ऐसा मानवभवकी कठीनतासूचक तीर्थङ्कर गणधरोने मूलसिद्धान्तोमें दश दृष्टात वताये है वे वहुतसे ग्रन्थो और चरित्रोंमें प्रसिद्ध होनेसे यहा सव दृष्टान्त न दिखाकर सिर्फ तिनचार लघु दृष्टात दिखाते है.

मानवभवकी कठिनाइ सूचक दृष्टात

दृष्टात पहिला

कोइ राजाने कौतुकके लिये यह भारतवर्षमें पैदा होते हुवे चौवीस २४ प्रकारके सभी धान्य इकट्ठा कराके उसमें एक सेर सरसौ डलवाया और वे सभी धान्यके साथ मिश्र करादिया. वाद उसके एक करीव सौ वर्षकी बुढिया जिसका हाथ पैर माथा सभी कापते है, इसको बुलवाकर कहा अय बुढीया

यह चौविश प्रकारके धान्य अलग करो, और ये सरसौंके कणभी अलग कर दो, ऐसा कहा परन्तु इस बुढ़ियांसे किसी प्रकार सरसौके कण अलग हो सक्ता नहि, कदाचित् कोइ देवताकी सहायसे यह बुढ़ियां सरसौ अलग करभी सकै तथापि हे भव्य जीवों ! चिन्तामणी रत्न समान यह मनुष्यभव हाथसे गया फिर मिलना अति दुर्लभ है, अर्थात् यह कार्य उपरलिखे सरसौ अलग करनेकी अपेक्षाभी अति कठिन है.

दृष्टांत दूसरा

एक लाख योजन विस्तीर्ण एक द्रहमें (सरोवरमें) एक बड़ा कछुआ रहता था, इस कछुआने कदाचित् वायुवशात् शैवाल हट जानेसे शरदपूर्णिमाकी रात्रिमें संपूर्ण कलाके नेत्रको आनंदकारी चंद्रमा देखा. और चित्तमें आनंद पाया, फीर वह अपने कुटुंबी जनोंको दिखानेके लीये फीर पानीमें डुबकी मारके अपना कुटुंबको बुला लाया, इतनेमें वायुवशात् शैवाल मील गइ, इससे चन्द्रमाका दर्शन हो सका नहि, अब यदि शैवालमें फाट पडे तब चंद्रमाका दर्शन होवे, परन्तु फाट जलदी पड़ नहि और दर्शन जलदी होता नहि कदापि देवताओंकी कृपासे फीर इसमें फाट पड़े और वह कछुआके कुटुंबको चंद्र-दर्शन हो सके परन्तु मनुष्यभव खोया मिल सकता नहि.



दृष्टान्त तिसरा

स्वयभूरमण समुद्र अर्धराज्यकी न्याइ भूमिको रुधकर पडा है इसमेंकी पूर्व दिशामें धोंसर डालें और पश्चिम दिशामें कील (समोल) डालें यह दोनो चीज किस प्रकार इकट्ठी हो सकें और धोंसरके छिद्रमें कील(समोल) कैसे कब प्रवेश करे? क्योंकी असख्याता द्वीप समुद्र दुगुना दुगुना प्रमाणमें है उसमें असख्याता योजनका स्वयभूरमण समुद्र है वहा क्या पत्ता लगे! तथापि देवताकी सहायसे धोंसरके छिद्रमें कील प्रवेश हो सके परन्तु अपने हाथसे खोया मनुष्य भव फिर मिल नहि सकता

दृष्टान्त चौथा

एक देवताने वडा पथ्थलका स्तम्भकों वज्रसे तोड दीया, और पीसके चूर्ण कर मेरु पर्वतके उपर चढ कर वासकी नलीमें भर के फुक देकर चूर्णको उडा दीया, वे उडगये परमाणुकों फिर से इकट्ठा करना दुर्लभ है वैसाही मनुष्य भवसे भ्रष्ट भये प्राणिकों फिनसे मनुष्य जन्म प्राप्त होना दुर्लभ है. इस प्रकार मनुष्य भवकी कठिनतासूचक दश दृष्टान्त समजना.

तब फिर ओ चेतन! विचार कर, विचार कर, मानव जीवन सुलभ है या दुर्लभ! यदि दुर्लभ है तो वडी परेशानीसे

मीली जिंदगीकों समालना की विगाड़ना ? यदि विगाडोगे तो फिन कैसे पाओगें यह सोचो.

हरिगीत.

चुलग अने पासादि दश दृष्टांते दुर्लभ भव लही,
उरमां विचारो क्षण क्षणे ए फरी फरी मळशे नही;
पळ पळ अमूली जाय डुली जाय आयु आ वही,
शीदने गुमावो जन्म मोंघो मोह निद्रामां रही.—१
वहु पुन्यना उदये मळ्यो जिन धर्मनो शुभ जोग जो,
आळस तजी आत्मोन्नति करवा सदा तत्पर थजो;
शुभ समय जो वीती जशे ने कार्य कंइ जो ना थशे,
पस्तावो पाछळथी थशे खरेखर अरे ! ए खटकशे.—२
चोमासा टाणे वावणी जो खेडुतोए ना करी,
पाछळ करी ते ना करी चाली गइ घडी जो खरी;
वीत्यो वखत ते तो फरीने ना मळे रे ना मळे,
रणमां रड्याथी एकलां शुं रे वळे शुं रे वळे?—३
घडी लग्ननी गइ निंदमां जाग्या पछी तो शुं थयुं,
टाणुं अमोलुं आम जो वीती गयुं तो शुं रह्युं,
माटे विचारी देहथी हित आत्मानुं करजो सदा;
'भक्ति' करी भवजळ तरो हरो भवभ्रमणनी आपदा.—४

कदापि पुण्य योगसे मानव जिंदगी मिली तथापि अनार्य देशमें मिली तो क्या होगा ? क्योंकी अनार्य देशमें पैदा भया

जीवकों धर्माराधन करनेकी सामग्रीका अभावसें और अघोर जीवहिंसादी पापकर्मोंका प्रभावसें आखिर सातवी नरक भूमिकों जाना पडता है देखो ' शांत सुधारसमें उपाध्यायजी विनयविजयजी महाराज क्या कहते है'—

लब्ध इह नरभवोऽनार्यदेशेषु य स भवति प्रत्युतानर्थकारी
जीवहिंसादिपापाश्रवव्यसनिना,माघवत्यादिमार्गानुसारी

बुध्यता बुध्यतां बोधिरतिदुर्लभा,
जलधिजलपतितसुररत्नयुक्त्या ।

अर्थ —मनुष्य भव प्राप्त करने परभी अनार्य देशमें उत्पन्न भया उस देशमें रहनेवाले जीवो हिंसादि पाप आश्रवके व्यसनी होकर माघवती नामक सातवी नर्क के मार्गको अनुसरनेवाला होते है. इससे अनार्य देशमें जन्मप्राप्त करनेसे मनुष्य जन्म औरभी अनर्थकारी होता है इसलीये बोध प्राप्त करो, बोध प्राप्त करो, समुद्रके जलमें गीरा हुआ चिंतामणी रत्नकी तरह बोधीरत्न याने सम्यक्त्वरत्न प्राप्त करना अति दुर्लभ है.—

इस प्रकार होनेसे मनुष्य भव मिलने परभी कुछ उपयोगी नहि भया, और उलटा अनर्थकारी हो गया जैसे पायस और इससेभी मधुर भोजन तैयार भयाहो वह भोजन स्वाद लेनेवालाकों आनद देनेवाला होता है परन्तु कदापि उसमें

जहर लेशमात्र भी पड़ गया तो वह स्वादिष्ट भोजन होने परभी कोई कामका नहि रहता है. और उसे फेंकही देना पड़ता है वैसेही मानव जन्म अति उत्तम, कर्म काटनेके कारणभूत होने परभी अनार्य देशमें उत्पन्न होने से हिंसादि पापरूप जहर उसमें मिलनेसे कोई कामकी रहते नहि है, परन्तु नरक और तिर्यंचादि दुर्गतिमें फेंक देना पड़ती है अर्थात् यह जीव अनार्य देशमें उत्पन्न होके वैसे अघोर पापकर्म करके नरकादि दुर्गतिमें चला जाताहै, इसीसेही मनुष्य भव मिलने परभी यदि आर्य देशमें उत्पत्ति भई तभी कुछ आत्मोन्नति कर सकते है.

धर्म श्रवण दुर्लभ.

आर्य देशमें उत्पन्न होने परभी धर्म क्या चीज है ! धर्म कैसा है ? धर्म माताकी तरह पुष्टि करता है, धर्म पिताकी तरह रक्षा करता है, धर्म मित्रकी तरह प्रीति करता है, धर्म बंधुकी समान है, स्वर्गापवर्गादि सुखोंका फल देनेवाला है, धर्मके प्रभावसेहीं सचराचर जगत् सुखी होता है.

इस रीतीसे चिंतामणी रत्नसेभी अधिक ऐसे धर्मके श्रवण करनेकी--समजनेकी इच्छा भई नहि, और संसारके क्षण भंगुर विनाशी स्वभाववाले पौद्गलिक पदार्थों में लपटा, यहां तक लपटा की रात्रि दिवसके चौविस घंटामें एक घंटाभी आत्मजाग्रति करनेका समयभी नहि मिला और रात्रि दिन

में और मेरा, करके ही भव पूरा कीया तो फिर आय देश खूब सुदर होने परभी ऐसे पुद्गलानदी जीवोंके लीये कोई कामका नहिं.

(राग—भैरवी)-यह प्रेमवश पातळीया-अथवा तुही देव साचो

वीर वाणी जाणी साची. (२)
रहो रगे. एहमा राची रे वीरवाणी०
धर्म-श्रवण गुरु पासे करीने, जीवन जरुर सुधारो,
विकथाने दूर निवारो, (२)
शीद मोहे रह्या छो माची रे वीरवाणी०
बे घडी प्रभुनी वाणी साभळवा, भवीया भावे आवो,
ल्योने लाखेणो ल्हावो, (२)
गणी काया—माया—काची रे वीरवाणी०
धर्म-श्रवण-दुर्लभ मन मानी, सफळ करो जींदगानी,
करो 'भक्ति' भावे मजानी, (२)
ल्यो शिवसुखडा झट जाची रे वीरवाणी०

कदापि धर्म सुननेकी इच्छा भई तौभी मिथ्यात्विका सगसे मिथ्यात्व धर्म जाननेकी और आचरण करनेकी इच्छा भई तो क्या कामकी ? मिथ्यात्वि के धर्ममेंभी हिंसादि पापवृत्तिया भरी रहती है. अधर्मको धर्म और कुमार्गको सुमार्ग समझा है, ऐसे मिथ्याधर्मके सेवन करनेसे फिरसे ससारमें

भटकना हुआ यहां तक भटकना हुआ की महामूल्य चिंतामणिसेभी अधिक मनुष्य भव खोके नरक तिर्यंचादि गतिमें घोर वेदना सहन करनेके लीये चला गया. मिथ्यात्व सेवनसे जीवोंकी कैसी दुर्गति होती है, वो इस दृष्टांतसे थोडा कुच्छ मालुम पड़ेगा.

मिथ्यात्व विषयमें देवशर्माका दृष्टान्त और मिथ्यात्वसे होनेवाली हानि.

एक नगरमें देवशर्मा नाम कोई ब्राह्मण रहताथा. उसको पुत्र न होनेसे पुत्रके लीये पाद्रदेवी नाम देवीको भक्ति किया और कहाकी—हे देवि ! आपकी प्रसन्नतासे यदि मुझे पुत्र होगा तो मैं तेरा मंदिर नया बनाउंगा और तेरी पास हर साल एक बकड़ाकी पूजा (बलि) दुंगा इसलिये हे देवि मेरी कामना पूर्ण कर, पूर्ण कर.

प्रिय वांचक सज्जन ! विचार करो, कितनी मिथ्यात्वकी तीव्रता, कितना मिथ्यात्वका जोर है ? ऐसा रत्न चिंतामणि समान मनुष्यभव देवशर्माको–हिंसा करनेके लिये ही भया. सभी दर्शनकार पुकार करके कहते है " जहां हिंसा वहां धर्म नहि पर अधर्म है, अधर्म सेवनेवाला सुखी होता नहि " यह बात देवशर्माके दृष्टान्तसे आगे स्पष्ट होगी.

आगे देवशर्माको कुछ समय बाद पुत्र हुआ, देवशर्मानेभी

पुत्रका नाम देवीकी कृपासे प्राप्त होने के कारण देवीदत्त रखा और देवीका भव्य मन्दिरभी बना दिया चारों तरफ दिवाल बनवाई एक सरोवरभी बधवाया और बडा उत्सवके साथ बकडाका बध किया, मिथ्यात्वी जीवोंको तत्वातत्त्व, कृत्याकृत्य, खाद्याखाद्यका भान होता नहि, उनके विवेकरूप लोचन मिथ्यात्वरूप अन्धकारसे देख सकते नहि की में ऐसे पचेन्द्रिय जीवोंका वध करके कौन गति प्राप्त करुंगा ? मेरी क्या गति होगी ? मुझेभी घोर दुःख सहना होगा, ऐसी शुभ विचारणा ऐसे पामर जीवोंको होती नहि.

उस ब्राह्मण देवशर्माने तो प्रतिवर्ष एक एक बकडाका वध किया. इसे बहुत कर्मबन्ध हुआ, और मनुष्य भव खो बैठा सचित कर्म उदित होनेसे और आर्तध्यानसे अंतमें मर-कर उसी नगरमें बडेर रोमवाला हृष्टपुष्टांग बलिष्ठ बकडा हुआ इसका पुत्रभी स्याना भया और एक कन्याके साथ शादी कीया और प्रतिवर्षके नियमानुसार देवीदत्तने अपना पिता जो बकडा भया है उसीको द्रव्य देकर खरीदा. बकडाने अपना घर विगेरा देखकर पूर्व जन्मका स्मरण हुआ और पूर्व जन्मका स्वरूप विचार करनेसे कापने लगा और विचार करने लगाकि अरे ! मुझे देवीके पास वध करनेके लीये ले आये हैं अब मैं क्या करु ? कहा जाऊ ! मुझे कौन छुडावे ? इत्यादि विचारसे बहुत भयभीत हो गया. इतनेमें वध करनेका

दिवस आगया. उसदिन महोत्सवपूर्वक उसे चलाने लगे तो वे चलता नहि. उसे मरना अच्छा नहि लगता, जिस कारणसें वे एक पैरभी आगे चलता नहि. लोगोंने उसे खूब पीटा कर और खींचकर वध स्थानपर लेजाने लगे तब वह निराधार बकडा अशरण होके बें बें शब्द करने लगा. इस अवसर पर इसके पुण्य योगसे एक ज्ञानी गुरु महाराज वहांसे नीकले वे मुनिराज उस छागकों कहने लगे ओ मूर्ख तुं तेरे पूर्व कर्म को देख. तुने अपने ही वृक्ष बोये वृद्धि पाये अब तुमकों इसके फल भोगनेही होंगे, बें बें क्यों कर रहे हो, पहिले विचार क्यों न किया, ऐसे मुनिके वचन सुन के धैर्यका अवलंबन करके वेगसे चला. तब सब लोग आश्चर्यमग्न होकर विचार करने लगे, 'ओहो! प्रथम इस बकडाकों खूब मारा तभी एक पैर भी आगे नहि बढ़ा, फिर यह महात्माने किस रीतसे चलाया? ऐसे सब लोग सोचते है इतनेमें इनके पुत्र देवीदत्तने मुनिको कहा " हे साधु महात्मा कृपा करकेबकडाकों चलानेका उत्तम मंत्र मुझे दीजिये " मुनिराजने कहा ओ मूर्ख! यह तेरा पिता मिथ्यात्वका सेवन करके आर्तध्यानसे मरकर यह बकडा बना है. आर्तध्यानसे जीवकी तिर्यंच गति होती है. यदुक्तम्:—

अट्टेण तिरियगइ, रुद्देण ज्झाणेण पावए नरयं।
धम्मेण देवलोओ, सिद्धिगइ सुक्कज्झाणेणं ॥१॥

अर्थः-आर्तध्यानसे तिर्यञ्चगति, रौद्रध्यानसे नरकगति, धर्मध्यानसे देवगति और शुक्लध्यानसे मोक्षगति प्राप्त होती है यदि तुमको इस विषयमें संदेह होवे तब इस बकडाको अपने घर ले जा. और इसको छुट्टाकरके पैरमें पडके कहो हे पिताजी ! आपकी मृत्युके समय आपको दुःखी देखके मैने आपको कुछ पुछा नहिं है. मैं आपका पुत्र देवीदत्त हुं इसलीये यदि कोई दौलत रक्खी हो मुझे बतलाईये, तब वह बतलावेगा मुनिराजके कहने माफिक देवीदत्तने किया बकडाने अपने पैरसे एक कोनेमें निधिका स्थान बताया देवीदत्त मुनिराजके समागमसें हिंसासे बच गया. धनभी पाया, और सुखी भया. बकडाभी मरण कष्टसे बच गया.

इस रीतिसे देवशर्माको मिथ्यात्व सेवनसें तिर्यञ्च जन्म लेना पडा मानवभव हार गया. इति देवशर्मा दृष्टांत

इस कारणसे मनुष्य भवादि सामग्री मिलने परभी वह मिथ्यात्वमें आदरयुक्त बनी तो उसे निष्फल जाननी चाहीये. शास्त्रकार एक तरफ सत्तरह पापस्थानक और एक तरफ मिथ्यात्व रखकर, दो पल्लामें मिथ्यात्वका पल्लाको नीचे जानेवाला कहते हैं सत्तरह पापस्थानकसेभी मिथ्यात्वका अधिक प्राबल्य है मिथ्यात्वको रोग अधकारादिसेभी विशेष हानिकारक बताते है कहते है की—

मिथ्यात्वं परमो रोगो, मिथ्यात्वं परमं तमः
मिथ्यात्वं परमः शत्रु मिथ्यात्वं परमं विषम् ॥ १ ॥
जन्मन्येकत्र दुःखाय, रोगो ध्वांतं रिपुर्विषम् ।
अपि जन्मसहस्रेषु, मिथ्यात्वमचिकित्सितम् ॥ २ ॥

अर्थः—मिथ्यात्व उत्कृष्ट रोग है. मिथ्यात्व उत्कृष्ट अंधेरा है. मिथ्यात्व उत्कृष्ट शत्रु है. मिथ्यात्व उत्कृष्ट विष है. इन सभी चीजोंको उत्कृष्ट बतानेका कारण यह है की रोग, अंधेरा, शत्रु और विष यह चारों चीजें एक भवमेंही जीवको दुःखद होती है. और अंतमें प्राण हरण करती है, परन्तु मिथ्यात्वका यदि शोधन न किया तो हजारो लाखों और अनंत भव पर्यंत दुर्गतिके कटुफल देता है. वर्तमान समयमेंभी कई जैननाम धारणकरनेवाले श्रावक श्राविकायें प्रभुके अटल सिद्धांतकी परवा न करके अज्ञानतासे पुत्रके, धनके, शरीरके और दूसरे कितनेही कारणोंके वास्ते मिथ्यात्वी देवी देवताओंकी मान्यता रखके और इनके पर्वोंकी मान्यता रखकर पापवन्धनमें पड़ते है. परन्तु इतनाभी विचार नहिं करते को देवाधिदेव परमात्माकी भक्ति से सव प्रकारके अंतरायका नाश होता है. कदाचित् पूर्व जन्मके कर्म अति निविड़ होनेसे अंतराय नष्ट नहिं भये तो फिर दूसरेसे क्या होने वाला है? समकितके सदसठ वोलकी सज्झायमें उपाध्यजी महाराजश्री यशोविजयजी कहते है कीः—

" जिनभक्ते जे नवि थयु रे, ते बीजाथी शु थायरे,
एवु जे मुख भाखीये रे, ते वचन शुद्धि कहाय रे, "
चतुर विचारो चित्तमा रे०

इसरीतिसें मनमें विचारके मिथ्यात्वी देवी देवताओंको और इनके पर्वोको दूर करके वीतराग प्रभुने दिखाये मार्गको अनुसरना.

कितने जीवो जैनकुलमें जन्म लेने परभी लोकोत्तर मिथ्यात्वको न समझके अज्ञानताके वश केशरीयाजी भगवानसे पुत्रकी याचना करते है "हे केशरीयाजी भगवान् जो मुझे अच्छा पुत्र होगा तो पुत्रको तोलकर केशर चढाउंगा" कमानेके लीये देशातरमें जानेवालाभी रुपैया और श्रीफल देरासरमें रखके प्रभुके पास यही मागेगा ' हे प्रभो में अच्छा कमाउंगा तब आपको इतना अर्पण करुंगा उपरांतमें प्रभुके पसली (हाथ) मे रुपैया रखकर खूब लक्ष्मी मागेगा कैसी मूर्खता ? कैसा पागलपना ? इस प्रकार आचरित धर्म कैसा फलेगा ? लोकोत्तर मिथ्यात्व सेवन करनेसे मोक्ष न मिलेगा, येसो खूब याद रखो जिनेश्वरकी भक्ति और धर्मका सेवन मोक्ष देनेको समर्थ है उन्होंके पास नाशवत पौद्गलिक सुखोंकी याचना करना केवल मूर्खता है, एसे याचना करनेवाले वासुदेवो, ब्रह्मदत्तचक्रवर्ति विगेरकी कया दशा भई ! सो जरा सोचो अढारह देशका मालिक कुमारपाल

सिद्धाचलमें जाके दादाके पास क्या मांगता है? "हे प्रभो! मेरी भक्तिका कुछभी फल होवे तो मुझे तेरा भिक्षुकपना दे. भिक्षुकपना मांगा. परंतु राज्यऋद्धि विगेरा कुछ मांगता नहिं. इत्यादि सब ध्यानमें लेकर लोकोत्तर मिथ्यात्वका स्वरूप समजके मिथ्यात्वसे दूर रहना.

प्रभुका आगम लौकिक और लोकोत्तर दोनो प्रकारके मिथ्यात्वका त्याग करनेकु कहता है. परमात्माका धर्मके आराधन करनेसें विना मांगे स्वभावसे ही उभय लोकमें आत्माकों उच्च कुलमें जन्म अनेक प्रकारकी लब्धि ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त होती है. और अंतमें श्रीपाल राजाकी तरह मोक्षप्राप्तिभी सुगमतासे प्राप्त होती है. इस लीये पौद्गलिक वस्तुको याचना करनेकी तुजे कोई जरूरत नहिं है. वीतराग प्रभुका आगम खूब जोरसे कहता है की मिथ्यात्वसे दूर रह कर आत्मकल्याण कर लेना, मिथ्यात्वके सेवनसें आत्मकल्याण नहिं होगा. किन्तु दुर्गति होगा. देखो सिद्धांतमेंसे संकलित संबोध सत्तरीमें रत्नशेखरसूरीश्वरजी महाराजभी मिथ्यात्व विषयमें क्या कहते है?-

न वि तं करेइ अग्गी, नेव विसं नेव किन्हसप्पो अ।
जं कुणइ महादोसं, तिव्वं जीवस्स मिच्छत्तं ॥ १ ॥
कट्ठं करेसि अप्पं, दमेसि अत्थं चयसि धम्मत्थं।
इक्कं न चयसि मिच्छत्तं, विसलवं जेण वुड्डिहसि ॥२॥

अर्थः-तीव्र मिथ्यात्व जीवकों जितना दोष करता है,

इतना दोप अग्निभी नहिं करता विषभी इतना दोप नहिं करता, काला सर्पभी इतना दोप नहिं करता, क्योंकी अग्नि, विप और सर्प एक भवका कदापि नाश करें परन्तु मिथ्यात्व तो जन्मजन्मान्तरका नाश करता है १

जीव कष्ट करें, आत्माकों दमें, और धर्मार्थ द्रव्यकों त्यागे परन्तु यदि मिथ्यात्वरूपी जहर एक लवमात्रभी न त्यागें तो और सब त्यागना निरर्थक जानो क्योंकी मिथ्यात्वसें जीव ससार समुद्रमें डुबता है २

सम्मत्त उच्छिदिअ, मिच्छतारोवण कुणइ निअकुलस्स।
तेण सयलो वि वसो, दुग्गइमुहसमुह नीओ ॥

अर्थ'–जो मनुष्य सम्यक्त्वरूप वृक्षकों अपने कुलरूप अगनेमे उखाड (दूरकर) के मिथ्यात्वरूपी वृक्षको बोता है, वह जीव अपना सपूर्ण वशको दुर्गतिमें लेजाता है ऐसा समजना

मिथ्यात्वका इसप्रकारका प्रचड प्रताप होने परभी अनादिकालकी कुवासनासे जिवकों मिथ्यात्व छोडना जचता नहिं है, यहभी आश्चर्य ही तो है

उपर लिखे मिथ्यात्वका सेवन करके यह जीव बहुत भटका यहा तक नीचे गिरगयाकि कईवार निगोदमेंभी चलागया फिरभी प्रथम प्रदर्शित दशा प्राप्त भई दुखोंकी श्रेणीया उपस्थित भई कई दु खोंकों सहन करते प्रथम दिखाये क्रमानुसार आगे बढते २ अनेक जन्ममरणके चक्रमें घूमता २ अनत पुण्यराशि बढते २ मनुष्यभव, आर्यदेश, उत्तम जाति,

उत्तम कुल, निरोगी शरीर, पांचों इन्द्रियोंकी पटुता आदि उत्तरोत्तर उत्तम वहुत कुछ सामग्री मिली. वीतराग परमात्माके वचन श्रवण करनेकी भावनाभी हुई.

—सद्‌गुरुका संयोग मिला—

सद्‌गुरुके पास धर्म सुननेको (शिक्षा–लेने) तैयारभी भया. तव मोहराजा यह वात सुनके विचारने लगाकि यह जीव यदि धर्म सुनेगा तो धर्म करके मुक्तिपुरिमें पहोंचेगा महासुख भोगेगा. इसलिये कोई तरहसे यह जिव धर्मशिक्षा ग्रहण करनेकु न जाय ऐसा करुं. यह विचारके मोहराजाने अपने तेरह अधिकारिओंको वुलवाए वेभी आज्ञा होतेहीकी साथ हाजर भये. तव मोहराजाने कहा “अरे सुभटो? तुम सव जाओ, मेरे नगरमें जिनराजका एक उमराव (अधिकारी) आया है. इसके पास अनेक लोग धर्म सुननेकी इच्छा रखते है इस वास्ते तुम वहां जाके उनोंको रोको, विघ्न करो, धर्मसुननेकु मतदेओ, क्योंकी वे धर्म सुनेगें तो धर्म करनेमें तत्पर होंगे. और अपने उपरसे प्रेम तोड़कर आये हुए धर्मराजके उमरावकी सेवा करेंगे. और क्रमसे अपने वैरी वनके अपनाही विनाश करेगे. इस वास्ते यह कार्यमां विलंव करना नहिं. जल्दि यह कार्य करो”

इसरीतिसे अपने स्वामीका वचन सुनके वो तेरह अनुचर तयार हो गये. अरे जीव ! तुं विचार करकी जो सांसारिक वस्तु है सभी झुठी–अल्पकाल रहनेवाली और

परिणाममें दुःख देनेवाली है, ऐसा समझने परभी धर्मका श्रवण छोडकर मिथ्या वस्तुमें रातदिन अलमस्त-प्रमत्तकी तरह भटकता है भान भूलजाता है और तुमे यह तेरह काठीया (मोहराजके अनुचर) धर्म श्रवण करनेमें बाधायें डालते है बराबर मनन पूर्वक ये तेरह काठीयाके स्वरूप विचारना, देखना कितना जोर उनका है तब तुझे मालुम होगा तबही तुझे अनुभवसे खातिर होगा की वे खरेखर मित्र करनेवालेही है उन्हे परोक्ष चोर समजना, जैसे लौकिक व्यवहारमें रास्तेमें चोर मिले तो वे सब धन लूट लेते है वैसही ये तेरह काठीयारूप तेरह कट्टे चोर धर्मरूप धनकों लूट लेनेमें कुछ बाकी नहिं रखते है. यह बराबर सोचके उन काठीयाके फादेमें फसना नहिं सावधान रहो "

तेरह काठीयाके स्वरूप-

प्रथम तो आलस काठीयाने खडा हो के कहा -तुम सब कों कोई प्रयत्न करनेकी आवश्यक्ता नहिं है मैं अकेलाही इस जीवकों जिनराजके उपदेशकी पास जाने रोकता हु ऐसा कहके तुरत वह आलसरूप काठीया गुरुमहाराजकी पास जानेकी इच्छावाले जीवके शरीरमे पैठा तब उस जीवकों गुरु-महाराज पास जानेमे आलस होने लगी शरीर तोडने लगा और मदता आने लगी विचार बदल गया की " अब आज तो व्याख्यानमें न जाउगा कल जाउगा " इसप्रकार यह काठी-

याने अपने सब पराक्रमकों बताया, और उस भव्य जीवका अमूल्य रत्नके समान दिवस नष्ट कीया, दूसरे रोज उन भव्यजीवको अच्छा विचार भया की इस प्रकार यदिमें करुंगा, और गुरुमहाराज तो अप्रतिबद्ध विहारी है. और चले जायगे, तो फिरमें धर्म किसके पास सुनुंगा. और बिना सुन-नेसे मैं धर्माचरण किस रितिसे करुंगा? यह जीवन थोडे कालमें पूर्ण हो जायगा. और जैसा आया वैसाही खाली हाथ पीछा चला जाउंगा. तो पीछेसे पस्तावा होगा वह काम नहि आवेगा इससे ओ चेतन! उठ आलस छोड़? इस प्रकारके विचार करके जिनवाणी सुनने तैयार भयाकी तुरंत मोहराजकों खबर पहुंचा की "आलस काठीयाकों जीत लिया अब वह धर्म श्रवण करनेकों जायगा" तब तुरंत मोह नामक दूसरा काठीयाकों बिना विलंब भेजा.

दूसरा काठीया शिघ्र जाके जीवके शरीरमें पैठाकी तुरंत छोटे बच्चे आकर उनकों लपटे और कहने लगे की "पिताजी आपकों उपाश्रयमें जाने नहि देंगे, आप जायगें तब हम सब रोएंगे, रास्तामें आड़े पड़ेंगे, वास्ते आप विचार मोकुफ रक्खो " बस उसी समय घरमेंसे स्त्री बहार आकर कहने लगी " आपकोंतो दूसरा कामधंधाही नहिं सूजता! इतनाभी समज नहिं हैं की मैं क्या विचारके उपाश्रय जाताहुं! ये लड़के रोएंगे इन्हे कौन खेलावेंगे

मैं क्या घरका काम करुंगी की लडकोंका समालुंगी वास्ते लडकोको समालो इन लडकोंको समालनेके लीये कुछ पैसा कमानेका अधिक उद्यम करो. फिर उपाश्रयमें जाना इस प्रकार स्त्रीपुत्रादिकका वचन सुन के मोहमें मुझाया इसलीये उसदिनभी जिनवाणी श्रवण करनेके लिये जा नहि सका, उस दिनका उत्पन्न होनेवाला धर्मरूपी धन मोहरूप काठीयाने चोर लिया, और दूसरा दिनभी व्यर्थ चला गया और क्षुद्र विचार आने लगा की "क्या कर यह परिवार पिछे पडा है किस रीतसे जा सकु मनतो बहुत चाहता है"

तीसरे दिन फिर शुभ भाव हुआ और शोचने लगा की "यह स्त्रीपुत्रादिक सब स्वार्थ के ही सगे है इनके माहमें जो लपटा तो कभी धर्म हो ही नहि सकता, क्योंकी यह तो जिंदगीमें पडा है और लडकाभी बहुत दफा रडता है मुझे ऐसे धार्मिक कार्यमेंभी स्त्रीपुत्रादिका प्रति बधसे गभराकर बैठ रहना यह तो प्रत्यक्ष मूर्खता है और ऐसे गुरु बार२ मिलतेभी नहि इस वास्ते जिनवाणी श्रवण करने जाना यही निश्चय है. ओ चेतन! उठ,चल,जिनवाणी श्रवण कर" ऐसे विचार करके उठा.

मोहराजको तुरत दूसरे काठीयाभी निष्फल होनेका पता लगा. व्याख्यान श्रवण करनेके लिये भव्य जीव गया. मोहराजाने तीसरा निद्रानामक काठीयाको तैयार किया. और कहाकी "तु जल्द जा, धर्म श्रवण करते उनको रोक. ऐसे पटारानीके

समयमें तु जो यह कार्य नहि करेगा तो फिर कब करेगा? और कौन करेगा? ऐसा कहते ही तीसरा निद्रा काठीया रवाना भया. जहां भव्यजीव व्याख्यान श्रवण कर रहा है वहां गया, और भव्यजीवका शरीररूप मंदिरमें पैठा. आत्माके असंख्यात प्रदेशमें निद्राका उदय भया. निद्राके जोरसे धर्म श्रवण करते २ आंखो वंद होने लगी. जड़ जैसा परवश वन गया. पांचो इन्द्रियोंका क्षयोपशम रुक गये. जैसे मदिरा पिया आदमी परवश होनेसे मार्ग सूझता नहि. वैसे निद्रावश भया आदमीकों कोई वातका भान रहता नहि. निद्राके प्रचंड उदयसे वह परवश वन गया. नाकके नसकोरे वोलने लगे दोनो हाथमें शिर झुका करके नीची मुंडी रखकर वैठा. इस रीतिसे निद्रावश होनेसे गुरु महाराजकी वाणी सुननेमें अंतराय भया. वैठे २ ही डोलने लगा. कुछ समझे नहि. निद्रा काठीयाने उस जीवकों वश करनेसे मोहराजाके सेवकोंने मोहराजाकों खवर दिया की "साहेब! आपके उमरावकी जीत भई. ऐसा सुनकर मोहराजा निद्रा काठीयाके उपर खुश भया, और चौदह लोकमे सर्वत्र राजधानी वनानेकी उनकों वक्षीश दी. "देखो! निद्रारूप प्रमादके प्रभावसे चौदह पूर्वधारी करोड पूर्वके चारित्र हारजाके निगोदमें उत्पन्न होते है. इस हेतुसे वीर प्रभुश्रीने उत्तराध्ययन सूत्रमें उपदेश किया है की " हे गोयम! क्षणमात्रभी प्रमाद करना नहि. यह मनुष्यका आयु अति अल्प है. इस लिये प्रमादकों छोड दे" ऐसा परमात्मका उपदेश सभी भव्य आत्मा-

ओको हृदयमें रखने लायक है. यहा भव्य जीव गुरुमहाराजकी पासमें जिनवाणी श्रवण करने बैठा था वह निद्राके जोरसे धर्म सुन सका नहि उस दिनकोंभी खोया.

फिर चौथे दिन विचारशक्ति जाग्रत भइकी गुरुमहाराजके पास जाकेभी कुछभी न सुनकर और उलटा निद्रामें ही घोरना वो बडा भारी नुकसान है. लौकिक कार्यमेंभी यदि निद्रावश होते है तो बडी हानि होती है तो ऐसे शुभ कार्यमें निद्रावश रहुगा तो जिनवाणीका श्रवण नाह होगा इस लिये निद्रा त्याग ऐसा विचार कर मन मजबूत करके निद्रा न आवे ऐसा उपाय खोजा और धर्म श्रवण करने गया

मोहराजाकों खबर पहुचा, मोहराज अकुलाया तुरत चौथा अहकार नामक काठीयाकों बुलाया और आज्ञा दी की 'तु अभी जा, धर्म श्रवण करनेवाला भव्य जीवको धर्म श्रवणसें रोक दे. तु अपना पराक्रम बता दे' अहकार फौरन रवाना होकर भव्य जीवके शरीरमे पैठा भव्यजीवके विचारोंको अहकारयुक्त बनादिया ओ विचारने लगाकी "गुरुमहाराजके पासतो मैं आया परतु गुरुमहाराजने आदर तो दिया नहि हमारे सामनेभी नहि ताका धर्मलाभ देनेकी तो वातही कहा? सभामेंसेभी कोइने मुझे नहि बुलाया' अच्छा आया सो तो आया अब व्याख्यान श्रवणके लिये नहि आवेंगे यहा कुछ छोटे बडेका विवेकभी नहि है मैं कौन? मेरी आबरु कैसी? जहा

जाउं वहां सत्कार पाऊं यहां तो कोई ठिकानाही नहि" ऐसा विचार करायके अहंकार काठीयाने धर्म श्रवण करनेवाले जीवकों मुंझादिया. और धर्मरूपी भंडारकों लुट लिया. गुरु उपरसे आदर उठ गया. कुछभी ग्रहण करने नहि दिया. जहां विचार परिवर्त्तन होता है. वहां फिर कुछ समझमें नहि आता. अहंकार काठीयाकी जितका समाचारभी मोहराजकों पहुंचे. सो वडा प्रसन्न भया. और इस रीतसे भव्य जीव उसदिन कोंभी खो बैठा.

पांचवे रोज कुछ विवेक बुद्धि सतेज भई, शुद्ध विचार आया, और गुरु उपर आदर भया" खरेखर मैने कल बुरे विचार किये है. गुरुमहाराज निस्पृह है. उनकों कुछ अपनी पास लेना नहि. अपने उपर उपकार करनेके लिये ही वे उपदेश देनेका प्रयत्न करते है. अपने नहि सुनेगें तो इन गुरुकों कुछ घाटा नहि है. उसमें तो अपनाही बिगड़ता है अपने वीतराग प्रभुके वचन श्रवण विना अहंकारसे मनुष्य भव खो देंगे. गुरुके पास मान क्या? वहां तो मानकों एकदम देशनिकाल (वहार) करना चाहियें. मैंने बुरे विचार किये, मैने भूल की" ऐसे भले विचारसे उसने अहंकारकों जीता.

अहंकारकों जीता यह समाचारभी मोहराजाकों पहुंचा की फौरन पांचवा क्रोध नामक काठीयाकों रवाना किया. क्रोध आकर शरीरमें पैठा. क्रोधरूप अग्नि शरीरमें जलनेसे सभी गुण

भस्म हो जाते है. करोड पूर्वका चारित्र्य दो घडीमें नष्ट करता है. ल्वा कालकी प्रीतिकों क्षणमात्रमें तोडनेवाला केवल क्रोध ही है आत्माके गुणोंकों ढाकनेवालाभी क्रोधही है दुर्गतिरूप बडे गर्तमें पटकनेवालाभी वह क्रोधही है स्व और पर दोनेकों जलाना वो इसका पुरुषार्थ है अच्छे वचनकों दूर करानेवाला है. शास्त्रोंमें मोहान्ध, लोभान्ध, विषयान्ध, और क्रोधान्ध—यह चार प्रकारके अंध कहे है अंध, मनुष्य जैसे मार्ग कुमार्गको देख सकता नहि वैसेही क्रोधान्ध मनुष्य कृत्याकृत्य हेयोपादेयकोंभी समज सकतानहि है. पहिले कुछ समजशक्ति होती है तथापि क्रोधवश होनेसे अज्ञान दशाकों प्राप्त करता है इस प्रकारका क्रोध, धर्म श्रवण करनेवालेकों उदित हुआकी तुरत दूसरे प्रकारके विचार प्रकट भये गुरुके पास व्याख्यान श्रवण करने कौन जाय? वहा तो फलाने २ मेरे वैरीभी आते है उनकों देखनेमे अपना ठीक नहि होगा. और वे अपनेमे उल्टे चलनेवाले है, तथापि उनका पक्ष होता है, वो अब अपनें तो व्याख्यान सुनेंगे नहि इस प्रकार पांचवा काठीयाके प्रबल प्रतापसे भव्य जीव धर्म श्रवण करनेसे रूक गया दिवस खाली गया. मोहराजाकों खबर जा पहुचा और मोहराजाकों आनंद भया.

छठवा दिन फिर शुभ विचार भव्य जीवकों होनेसे पश्चात्ताप करने लगा "अरे यह मैने क्या चिंतन किया? क्या

कपाय करना चाहिये, कपायके जोरसे अच्छे २ महात्माभी संजमको (संयमको) हार जाते है, तो मेरी क्या गणना? चेतनराज उठ, क्रोध छोड, गुरुमहाराजकी पास कोईभी आवे, उसमें अपने क्या अड़चण? गुरुमहाराजको राजा व रंक शेठ व नौकर सभी समान है. कोईभी आदमी धर्मसन्मुख हो ऐसीही उन्होकी भावना है. तो अपने क्यों उमदा समय व्यर्थ खोवें. इस वास्ते वहां जाकर जिनवाणी सुनेंगे" इत्यादि उत्तम विचार करके धर्म श्रवण करने गया. मोहराजाकोंभी ऐसे बलवान् उमरावकोंभी यह भव्यजीवने जीत लिया इससे विशेष चिंता भई. फिर मोहराजाने शोचा की "चिंता करनेसे क्या होनेवाला है! उस भव्य जीवको जिनवाणी श्रवण करनेसे पटके ऐसा सुभटको भेजुं" ऐसा निश्चय करके कृपण नामके छठवा काठीयाकों भेजा. वहभी तुरंतही वहां जायके भव्यजीवके शरीरमें पैठा. पीछे क्या भया सो जरा विचार करके देखो.

इस अवसरमें व्याख्यानमें गुरुमहाजने सात क्षेत्रकी व्याख्या करके उत्तम क्षेत्रमें धन दान करना त्याग करनेका अत्युत्तम लाभ बताया. उत्तम क्षेत्रोंके नाम—

१ जिन प्रतिमा २ जिन मंदिर ३ ज्ञान

४-५ साधु-साध्वी. ६-७ श्रावक-श्राविका

यह सात क्षेत्र बहुत उत्तम जानना.

उपदेश करते समय गुरुमहाराजने लौकिक दृष्टांत कहकर समझायाकी "व्याज रक्खा पैसा बहुत दिनमें दोगुना होता है, अच्छा व्यापार करनेसे चौगुना होता है, और क्षेत्रमें अन्न बोया होय और अच्छी वृष्टि हो जाय तब सौ गुनाभी होता है परंतु पात्रमें रक्खा दीया द्रव्य तो अनंत गुना होता है इस लिये लक्ष्मी प्राप्त करके अच्छा व्यय करना चाहिये. वही उसका फल है. सात क्षेत्रमें द्रव्य वापरनेसे जीव नरक तिर्यचादि दुर्गतिका उच्छेद करके देवता और इन्द्रका सुखकों प्राप्त करे, वासुदेव-बलदेव-चक्रवर्तिकी पदवीभी प्राप्त करे, और आखिरमें तीर्थंकर नाम कर्मभी उपार्जित करके सकल कर्मकों नष्ट करके अव्याबाध सुखकों प्राप्त करे" इस प्रकारकी गुरुमहाजकी देशना सुनकर कई श्रोता सात क्षेत्रमें द्रव्य व्यय करने तयार भये, नाम लिखना शुरु किया, बडी रकमका चंदा करके सातों क्षेत्रमें व्यय करनेकी योग्य प्रवृत्ति होने लगी उसी समय कृपण काठीया जिस भव्य जीवके शरीरमें बैठा है उसने यहा तक जोर कियाकी शुभगति तोडकर दुर्गति भेजनेका प्रपच रचा, अच्छी भावना और सुंदर विचारोंका फेरफार किया, इससे वह-भव्यजीव व्याख्यानमेंसे ऊठके जाने लगा इतनेमें कोइने पुछाकी'—भाई! इस शुभ कार्यमें कुछ चंदा लिखाओ" तब इसके साथ लडने लगा दूसरेके अवगुन निकालने लगा, धर्मकी निंदा करने लगा, कहा पाप लगाकी व्याख्यानमें आया, घर बैठे रहे होते तो कुछ पचाइत करनी न पडती, जो लोग चंदा

देते है, सभीकों बराबर जानताहुं, कोई चचाका, कोई मामुका अलग रक्खा होगा वही देते होंगे. बाकी तो सभी वडे देने वालें है यह तो मैने देखा है. इन लोगोंको गुरुमहाराजभी नहि रोकतेकी:—"भाई तुम सब व्याख्यानमेंभी ऐसी चंदाकी बात ले बैठोगे तो व्याख्यानमें कौन आवेगा? खैर अपने क्या! अपने तो एक पाईभी देनी नहि है. और अबसे कभी व्याख्यानमेंभी आना नहि है"

ऐसे बुरे विचार करके गुरुमहाराज और संघका दोष निकालके व्याख्यानमेंसे चला गया. धर्म श्रवण कर सका नहि. निज द्रव्य कृपण काठीयाने लुंट लिया. दूसरे चोरोंने यदि घरमेंसे धन लुंट लिया होता तो राजके पास फरीयादभी की जाय, राजा और अधिकारी फरीयादभी सुने, इस चोरकी फरीयादभी कौन सुने? तीन भुवनके नाथ परमात्माके सिवाय कोई सुनने वालाभी नहि है. यह कृपण काठीया अच्छे भले आदमीकोंभी चक्करमें डाल देता है. इसके प्रभावसे भव्यजीवोंकी पास पैसा रहने परभी शुभ कार्यमें खर्चा कर के मनुष्यभवका ल्हाव ले के पुण्यानुबंधी पुण्य उत्पन्न कर नहि सकता. इतनाही नहि परंतु धर्म श्रवण करनेसेभी रुक जाते है. इस काठीयाने तो हद किया. यह रोजभी विचारा भव्य जीवका व्यर्थ गया.

सातवे दिवस फिरभी शुभ विचार प्रकट भये. विचार-शक्ति अच्छि प्रकाशित होनेसे पश्चातापपूर्वक बोला कीः—

"अहो मैंने कल वडा खराव विचार किया लक्ष्मी तो अस्थिर है उसको जाना होगा तो रोकनेसेभी नहि रहेगी. लक्ष्मीके वारेमें शास्त्रकार कहते है की —

न याति दीयमानाऽपि, श्रीश्चेदीयेत एव तत् ।
तिष्ठत्यदीयमानाऽपि, नो चेद्दीयत एव तत् ॥१॥

अर्थ —लक्ष्मी यदि दान देने परभी खुटती नहि है तो दान देनेमें विलव नहि करना और यदि दान या भोग न करने परभी लक्ष्मी नहि ही रहती तो फिर उदारतासे क्यों दान भोग नहि करें? अर्थात् करनाही चाहीये क्योंकी लक्ष्मी अच्छे मार्गमें व्यय करनेसे औराती नहि इस वास्ते जितनी सत्कार्यमें खर्चीकी जावे इतनी ही सच्ची लक्ष्मी है इस वास्ते मेरी शक्तिके अनुसार मैंभी चदा दु मेरा देखके दूसरे लोगभी अच्छी रकम देंगे. इसका निमित्त मैं होउगा और इस भवमें जो लक्ष्मी मिलती है सो पूर्व भवके पुण्यसे ही मिलती है वास्ते इस भवमें पुण्य करगा तो अगामी भवमें लक्ष्मी मिलेगी, और कृपणता करगा तो लोग हासी करेंगे" ऐसे सुदर विचार जहा प्रकट भये तहा तो कृपण काठीयाका जोर हटा. और उनको जीत लेनेका समाचारभी फोरन मोहराजको मिला. माहराजाकी पास औरभी कई उमराव है इसलिये उसने और सात उमरावोंको क्रमसे भेजके उस भव्यजीवको धर्म श्रवण

करनेसे रोका. अब यह सात उमरावोंका विशेष उल्लेख न करके संक्षेपमें बताते हैं.

७ सातवा शोक काठीया	११ ग्यारवा अरति काठीया
८ आठवा लोभ काठीया	१२ बाहरवा अज्ञान काठीया
९ नवमा भय काठीया	१३ तेरहवा कुतुहल काठीया
१० दशवा रति काठीया	

सातवा शोक काठीयाके प्रबल प्रतापसे जीवकों दूसरेकी ऋद्धि देखके मनमें शोक भया. वह विचारने लगे कीः—"ऐसी ऋद्धि मेरे पास नहि है. मुझे अत्यंत विडंबना है. घरमें अच्छे मनुष्य नहि, पुत्रभी नहि." इत्यादि शोकमें ग्रस्त होनेसे धर्म श्रवण करनेमें विघ्न आया. साध्य चुक गया. उलटा रस्ता पर चढ़ा दिया. उस दिनभी व्यर्थ गया.

फिर आठवे रोज अच्छा विचार आनेसे पुण्य संबंधी विचार किया कीः—'मेरा पुण्य उदय होगा तब मुझे ऋद्धि मिलेगी, में क्यों व्यर्थ शोक करता हुं.' इत्यादि शुभ विचारोंसे शोक कों छोड़ा.

मोहराजाकों मालुम भयाकी तुरंत आठवा लोभ काठीयाकों भेज दिया. लोभने अपना जोर दिखाया. चेतनाम फरक कर दिया जिससे अशुभ विचार आने लगे 'इधर कब तक वैठे रहेंगे? यहां वैठनेसे क्या फायदा होगा? घरमें स्त्री

पुत्रादिकी चिंता करनी है इसमे ओ चेतन! कठ, चउ, बाजा-रमें कुछ करेंगे तब वैसा कमाओगे' लोभके जोरसे धर्म श्रवण हो नहि सका सचे रसमे (आटाटमे) विन आया. लोभका त्यागना बडा कठिन है. लोभवश होके आदमी ज्ञाति तजें, देश तजें, समुद्रमें मुसाफरी करें, पर्वत उपर चढें, कुआमे उतरे, न करनेके कार्यभी करें

देखो! लोभके जोरसे सागरदत्त शेठ चौरीस करोड सुनामुहरका स्वामी होने परभी सातवा नरकमें गया.

सुभूम चक्रवर्ती छे खंडका मालिकभी (अथाह) वहोत, ऋद्धि सिद्धि होने परभी अधिक लोभ करनेपर सब ऋद्धि सिद्धि त्यागें सातवा नरकमें गया

मम्मण शेठ लोभके जोरसे पारवार ऋद्धिका मालिक होनेपरभी लक्ष्मीको बिना भोगे दुर्गतिमें जा पहुचा दूसरे कषायोंके अपेक्षामें लोभका अधिक जोर शास्त्रकार महाराजाने दिखाया है

कोहो पीई पणासेइ, माणो विनय नासणो ।
माया मित्ताणि नासेइ, लोहो सव्व विणासणो ॥

क्रोध प्रीतिका नाश करता है मान विनयका नाश करता है माया मित्रताका नाश करती है लोभ सर्व गुणका नाश करता है सज्वलनलोभका उदय दशम गुणठाणमें रहनेमें

यथाख्यात चारित्र्यको तोड़ देता है. इग्यारहवे गुणठाणसेभी जीव गिरता है. जो लोभ वश भये, उनका धर्म खजाना वह सुभट लुट लेता है. इधर धर्म श्रवण करने वालाभी भव्य प्राणी लोभवश होकर आर्तध्यानमें गिर गया. जिससे उस दिनकोंभी खो बैठा.

नववे दिन फिर शुभ विचार भया. वह विचारने लगा 'अरे! ऐसा अघटित कार्य मैंने क्यों किया? अच्छे बुरे विचार करनेसे कुछ धन मिलता नहि है. ऐसा करनेसे तो लाभांतराय कर्म बंधाते है. जिससे आगामी भवमेंभी द्रव्यादिकी प्राप्ति होती नहि. और गुरुमहाराजभी दिनभर अपने पास बैठे रहनेके लिये नहि कहते' इत्यादि अच्छे विचार किये. नववे दिन लोभ काठीयाकों जीतके धर्म श्रवणमें गया. मोहराजकों मालुम हुआ. तुरंतही भय नामका नवमा काठीयाकों भेजा. भय काठीयाने प्रवेश किया. इतनेमें कोइ राजाका सिपाही वहां आया. इससे इनके मनमें भय पैठा 'अब क्या होगा? मैं क्या करुंगा? कहां ले जायगे! इत्यादि भयके जोरसे वहांसे ऊठके चला जानेका विचार हुआ. जिससे धर्म सुन सका नहि.

दशवे रोज फिर शुभ विचारणा भई. अरे! मैं कैसा मूर्ख? विना कारण ऐसा भय क्यों रखना? मैंने क्या कोइका गुन्हा किया है? इस रीतिसे अच्छे विचारसे भयकों जीत

लिया और धर्म श्रवण करने गया. मोहराजकों खबर होतेही तुरत रति काठीयाकों भेजा रति काठीयाने अपना पुरुषार्थ जमाया जिससे गीत गान अच्छे लगे, मधुर स्वर सुनके प्रीति जागी. सभी अच्छी २ चीजोंके उपर प्रीति होने लगी आत्मा उसमें भीन होनेके कारण साध्य वस्तु जो धर्म श्रवण, उसके उपर प्रीति न हो सकी. जिससे धर्म श्रवणमें विघ्न भया और वहासे उठके चल गये, यह रोजभी व्यर्थ गया

इग्यारहवे दिवस फिर अच्छे विचार होनेसे शुद्ध चेतना जाग्रत भई अहो! मैं अच्छी २ चीजें देखने आया हु की तत्त्व श्रवण करनेकु? इत्यादिक शुभ विचारोंसे रति काठीयाकोंभी जीत लिया धर्म सुनने गया मोहराजाकों खबर होतेही इग्यारहा काठीयाकों विघ्न करनेका हुकम किया. अरति काठीया भव्य जीवके शरीरमें पैठा तब विचार भया की'—'गुरुमहाराजका कठ अच्छा नहि कुछ समजमें नहि आता कथा वार्ता तो कुछ कहते ही नहि अब तो रोज आना अच्छा लगता नहि, यहा आना वखत गुमाना और कुछ समझमें न आवे' इत्यादि विचार कराय के अरति काठीयाने शुभ श्रेणि तोड दी जिससे धर्म सुनना दूर रहा इग्यारहवा दिवसभी निष्फल गया.

बारहवे दिन फिरभी शुभ विचार भया, बुरे विचारका पश्चात्ताप करने लगा हमेरेकु गुरुमहाराजके भले बुरे कठका विचार

करनेकी क्या जरूर? ये तो उपकारके वास्ते ही भव्यजीवोंका हितके लिये ही जिनवाणीका प्रकाश करते है. गुरुमहाराज निष्कारण बंधु है. उपदेश सुननेमें कंठका मुझे क्या प्रयोजन है? इत्यादि उत्तम भावनासे अरति काठीयाकों जीत लिया.

तुरंतही मोहराजानेभी बारहवे अज्ञान काठीयाकों भेजा. अज्ञान काठीयाके प्रवेश करतेही चेतनामें फरक हो गया. आत्मा धर्म श्रवण करते परवश हो गया. कुछ समझ सका नहि. जिससे अकुलाके ऊठ जाने लगा. अज्ञानका जब २ अधिक बल होता है. तब २ आत्मा भान भूल जाता है. कृत्या-कृत्य सूझता नहि. शास्त्रोंकी बातें समझमें नहि आती. संसारमें आसक्ति बढ़ती है. विनाशी पदार्थोंके उपर मोह बढ़ता है. और जब वह पदार्थ नष्ट होता है तब शोकग्रस्त होकर माथा छाती इत्यादि कूटने लगता है. अज्ञानताका विलास वर्णनका अंत आवे ऐसा नहि है. तथापि शास्त्रकार यह एक श्लोकसे कितना बोध देते है :—

यो ध्रुवाणि परित्यज्य, अध्रुवं परिसेव्यते ।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति, अध्रुवं नष्टमेव च ॥

अर्थः—जो मनुष्य जिनेश्वरका उपदिष्ट सत्य (आत्मिक) धर्म याने आत्माकों सद्गति देने वाला दान, शील, तप, शुभ भावना, सामयिक प्रतिक्रमण, पौषध, जिनपूजा, इत्यादि

क्रियाका त्याग करके अधर्म, याने मिथ्याधर्मका सेवन करे, अर्थात् जिनवचन माफिक न वरतता उलट वरताव करे, हिंसादि दुर्गतिमें घीसजाने लायक कार्य करे, न खानेके पदार्थ खाय, रात्रिभोजन करे, सिर्फ मौजशौख करना, मनमानी वस्तुओंका भक्षण करना, उसीकों धर्म मानके उसीका सेवन करे, तो ऐसे आचरण करनेसे सत्य धर्मसे तो भ्रष्ट भया और असत्य मिथ्या धर्मका सेवन करनेसे जब वह आदमी मरण पावेगा तब दुर्गतिमें चला जायगा, और उभय धर्मसे भ्रष्ट होके संसार चक्रमें भ्रमण करेगा. यह सब अज्ञान दशाका परिणाम समझना इस प्रकार भव्य जीवोंकी बुरी दशा अज्ञानतासे होती है यह जीव अज्ञानताकों लेके उस दिनभी कुछ ले सका नहि. और उस दिनकोंभी खो बैठा

तेरहवा दिवसमें फिर शुभ विचार होनेसे अज्ञानके तरफ धिक्कार छुटा और सोचा की "समझमें आवे न आवे तोभी जिनवाणी सुननी चाहीये, जिनवाणी सुननेसे कोइ दिन समज पडेगी और जब न समझेंगे तब गुरुमहाराजकों पुछ लेंगे" इत्यादिक अच्छे विचार हानेसे अज्ञान काठीयाकों जीतकर जिनवाणी श्रवण करने बैठा बारह काठीया जीत लेनेसे मोहराजाकों बहुत भय हुआ. तौभी आखिरी उपाय अजमानेके लिये तेरहवा कुतुहल नामका काठीयाकों रवाना किया कुतुहल काठीया भव्यजीवका शरीरमें पैठाकी तुरतही चेतना बिगडी, समाचारभी

ऐसाही तुरंत मिलाकी—'भाई! वाहर रम्मत वहुत अच्छी हो रही है, खास देखने लायक है," ऐसी वात सुनतेही तुरंत व्याख्यान सुननेके समयमें लघुशंकाका वहाना निकाल के उठा. वहार जाते समय कोई भला आदमीने रोका :—'भाई! ऐसी अमृतधारा समान जिनवाणीकों छोड़के कहां जाते हो? परंतु कुतुहल काठीयाका जोर होनेसे उसने कहाः—'क्या लघुशंका करनेभी नहि जाने दोगे' ऐसा कहके वहार गया. भांड, भवाया, नाटक वालेकों देखते खड़े पैर पूरा दिवस वीत गया. पैरभी दुःखने न आया, भुख उड़ गई, तृषा न लागी, एक चित्त देखा किया. इस रीतिसे यह जीव नाटकादि कुतूहल देखनेमें रात्रिभी वितादें, उजागरा सहे, खड़ा रहे, धक्का सहे, अपमान सहे, पैसा वरवाद करे, शरीरकों हैरान करे, परंतु प्रतिक्रमण, सामयिक, जिनपूजा विगेरे धर्म कार्य करनेमें वहुत समय हो जानेका वहाना निकाल के छोड़ देतहे क्रिया करनेमें थक जाय, मेरी शक्ति नहि है खडे २ काउसग्गादि करनेमें पैर दुःखते है, इत्यादि धार्मिक क्रियामें वहाना निकाले. कुतूहल काठीयाके जोरसे उपर कहा नाटकादि देखनेमें कुछ कठिनाई न देखी. दिवस चला गया. आखिर संध्या भई तव कुछ शुभ विचार भया. अपनी मूर्खता दृष्टिमें आई. और पश्चात्ताप करने लगा. अरेरे! आज मेरा सौना समान दिवस भांड-चेष्टा देखनेमें फोकट गया. उसमें कोइ लाभ तो भया नहि. परन्तु नुकसान वहुत भया. ओ जीव! आज अव ऐसी मूर्खाई

कभी करना नहि. धार्मिक क्रियामें बराबर उद्यमी होगा तो तेरी जिंदगी सफल होगी ऐसा विचार करके अबसे कुतूहल काठीयाके आधीन न होनेके वास्ते भव्य जीव सावधान भया.

राग लावणी (मुज उपर गुजरी)

आळस–मोह–निद्रा अने अहो! अहंकारे,
आ जीव मुझाणो करे न धर्म लगारे,
भय–शोक–कृपणता–क्रोध करि भव हारे,
पण चेतन जरीये पोतानु न संभारे

रति–अरति–लोभ–अज्ञाने–पडे अंधारे,
कुतुहल करी प्राणी धर्म करे नहि क्यारे,
आ तेर–काठीया मारे पण न विचारे,
रखडावे सहुने ए सहु आ संसारे

जे चेतें ते नर जीवन जरुर सुधारे,
पहोंचे प्रेमे ते भवजळधि किनारे,
नथी सार लगारे आ संसारे असारे,
करो धर्म करो प्रभु भक्ति 'भक्ति' उच्चार.

इस प्रकार उपर कहे तेरह काठीया अपना भिन्न २ स्वरूप धारण करके भव्य जीवकों जिनवाणी श्रवण करने में पके विघ्नभूत होते है. धर्म श्रवण करने नहि देते. अनंत कालसे जीवके पिछे लगे है वह तेरह दिन जाने बादभी एक दूसरे

आगे पीछे आके जीवकों हैरान करते है. और प्रथम कहे मानवभवादि उत्तम सामग्री मिलने परभी यह तरेह काठीयाके वश भया जीव सहजमें तमाम सामग्री खोकर दुर्गतिमें चला जाता है. काठीयाके वश भया जीव कदापि जिनवाणी श्रवण करे, तथापि उसमेंसे कुछ तत्त्व निकले नहि सुना न सुना जैसा होय. क्योंकी जिनवाणी श्रवण करने परभी कुछ गुण न भया, अनादि कालकी कुवासना न मिटी, सम्यग् दर्शन प्राप्त कर सका नहि, तो फिर ऐसा श्रवण व्यर्थ गयाही समझना. बराबर विचार करके समझ रखके तेरह काठीयाकों दूर करके जिनवाणी श्रवण करना और इसका मनन करना. जिससे आत्माकों हितशिक्षाकी बराबर असर होगी और आत्माका अपूर्व गुण सम्यग् दर्शन प्राप्त होगा.

आत्माकों हितशिक्षा

हे चेतन ! अब मनुष्यावतार प्राप्त करके निरोगी शरीरादि शुभ सामग्री प्राप्त करके प्रमाद करना नहि. और संसारकी मोहजालमें फसकर नरकगमन करना नहि. वार २ मनुष्यजन्म मिलना दुर्लभ है. सांसारिक चिजें कोईको साथ गई नहि. जायगी नहि. पुत्र, धन, स्त्री देखके तु क्या मोह करता है? अरे जीव! जरा विचार कर. ये कभी तेरे नहि है. तेरी वस्तु तेरी पास है. इसको तो शोध कर तो वार २ जन्म मरणका फेरा न फरना पडेंगे. स्मशान वैराग्यसे तेरा कुछभी भला न होगा. और अमुक

अच्छा, अमुक बुरा - इत्यादिक परभावमें खेलनेसे तेरा कुछ हित होनेवाला नहि तु मनमें समझता है की में सब समझता हु परतु वह मिथ्या है क्योंकी तु आत्मकल्याणमें प्रवृत्ति करताही नहि कर्म कलकयुक्त हे चेतन! तेरा रहनेका ठिकाना तो देख तुझे कहा निवास करनेका है जिस स्थानमें तु आज है वह तो चचल है, विनाशी है, क्षणभगुर है, थोडे रोजके लिये है हे जीव! ऐसे विचार मोहनीय कर्मके जोरसे नहि होनेसे तु सा यदृष्टि भूल जाता है और खानेमें, पीनेमें, पहेरनेमें, गाडी, घोडा खेलनेमें, मातापिता, पुत्र कलत्रादिकी चिन्तामें तु यहा तक मग्न हो गया है की अनत सुखका कारण सम्यक्त्व रत्न एकदम नजीकमें होने परभी प्राप्त कर सका नहि

भाग्यहीनको उत्तम वस्तु हाथमें आसक्तिही नहि इस विषयमें शास्त्रकारने कहा है कीः—

जह चिंतामणिरयण, सुलह नहु होइ तुच्छविहवाण।
गुणविहववज्जियाण, जीयाण तह धम्मरयणपि ॥

अर्थ'-जैसे तुच्छ वैभववाले पुण्य रहित जीवोंको चिंतामणि रत्न सुलभ न होय, तैसे ही गुणरूप वैभवोंसे रहित जीवोंको धर्मरत्नभी सुलभ नहि ही होय

विवेचन-पुण्य रहित जीवो मजुरी बहुत करे, शरीरमें क्लेशभी बहुत सहे स्वदेश छोडके परदेश जाय, ठडी, ताप,

भुख, तृषा विगेरे सहन करे. तथापि उन कष्टोंका आठवा भागभी धर्मसाधनमें कष्ट नहि सहते व्यर्थ जन्म गुमाता है. धर्मरत्नको प्राप्त नहि कर सकते यह इन जीवोंकी वहुत मूर्खता नहि तो दूसरा क्या समझना? देखो सुयगडांग सूत्रकार उपदेश देते समय क्या वताते है:-

संवुज्झह किं न वुज्झह, संवोहि खलु पेच दुल्लहा।
नो हुवमणंति राइओ, नो सुलहं पुणरवि जीवियं॥

अर्थः—हे भव्य प्राणीयो! तुम सच्चा वोध पाओ, क्यों वोध प्राप्त नहि करते? परलोकमें वोधिरत्न मिलना मुश्किल है. गये रात्रिदिवस पीछे नहि आते है. और धर्मसाधन करने योग्य जीवितभी फिर मिलना सुलभ नहि.

विवेचनः—यह जीवको अनंतानंत दुःख सहन करते अनंत पुद्गल परावर्तन काल संसारमें भ्रमण करते, सम्यक्त्वरत्न ग्रहण करनेका वडा सुंदर समय आया है. परलोकमें सम्यक्त्व प्राप्त होना वडाही कठिन है. जो जो दिन और रात्रि चली जाती है वे पीछी आती नहि. आयुष्यको काटती है. फिर ऐसी सामग्री मिलती नहि. आज मिली है तथापि प्रतिवोध नहि पाओ तो फिर अधोगतिमें चला जाओगा. इसमें क्या आश्चर्य? ओ मुसाफिर! समय वहुत कम है. और अभी तेरे आत्माके लीये वहुत कार्य तुझे करने है. ऐसा समझके प्रमादको त्याग कर जाग्रत होजा! प्रमादमें

गिरके अमूल्य समयको सार्थक नहि करेगा तो चिंतामणिरत्न-सेभी अधिक मानव भव व्यर्थ चला जायगा. पीछे तुमें बहुत पश्चाताप होगा यह बात कभी भूलना नहि वास्ते जल्दी सावधान होजा! और अनादि कालसे ससारमें दुःख देने वाले अष्ट कर्मोंको जडमूलसे उखाडनेके वास्ते सपूर्ण प्रयत्न करना तेरी फर्ज है सो भूलना नहि. ऐसे उत्तम साधन प्राप्त करने परभी प्रमादवश होके नये कर्म बाधोगे तो मिली हुई सामग्रीको हारके अधोगतिके भयङ्कर दुःख सहने पडेंगे यह लक्ष्यमें रख यह बात खास लक्ष्में रखनेकी है हे जीव! तुमे याद रखना चाहियेकी ससारमें थोडासमयकेलिये इकट्ठे भये कुटुम्बादि सभीका कार्य करना तेरे शिरपर आया है तथापि तेरा न बिगडे जैसे परभवका-दुर्गतिका आयु न बधाय, इस लक्ष्यको कभी न भूलना चाहिये भूलेगा तब तुम मूर्ख और गवार कहलावेगा आत्म-हितका साध्य जो पार पाडना होवे तो जैसा ससारके पदार्थों उपर आनद और आसक्ति है, वैसेही आनद और आसक्ति आत्मकल्याण करनेमें कर यदि करेगा तो सम्यक्त्वरत्न एक अतर्मुहूर्तमें मिल जायगा आत्मिक भावमें आनद प्राप्त करनेके लिये सब मिथ्या विषयको छोड दे आर्तध्यान-रौद्रध्यानको देश वहार कर, जड चैतन्यका परिचय कर मेरा क्या और दूसरेका क्या? इसको समझ. मार्गसे भूलाहै या मार्गमें आया है? इसका विचार कर देख चिदानदजी महाराज यह चेतनको

हितशिक्षा देते हुए आत्मिक भावमें लीन होनेके लिये क्या कहेते हैं:—

पद-भूलो भमत कहा वे अजान! आलपंपाळ सकल तुज मूरख
कर अनुभवरस पान; भूलो. आय कृतान्त ग्रहेगो एक दिन
हरि जेम मृग अचान; होयगो तन धनथी तुं न्यारा.
जेम पाको तरुपान; भूलो भमत कहा वे अजान!
मात तात तरुणी सुत सेंति; गरज न सरत नादान;
चिदानंद ए वचन हमारो, धर राखो प्यारे कान-भलो०

चिदानंदजी महाराजका यह अमृत समान वचन बराबर मनमें रखने लायक है. चिदानंदजी महाराज इस चेतनकों शिक्षा देते समझातेहैकी इसके उपर बराबर ध्यान देना.

हे चेतन! हे आत्मा! तु अनजान आदमीकी तरह कहां भटकता फिरता है. जैसे कोई देशमें या शहेरमें अपने जाना होय तो उसका रास्ता न देखा हो तो रास्तेमें धोखा होता है. वेसे अनजान आदमीकी तरह हे चेतत! तु कहां भटकता है? इतनेसे विचार होताहैकी अपने अनादि कालसे भूले भटकते है. जो भूले भटकते न होते तो जलदीसे आत्माका अव्याबाद सुखका खजाना प्रकट करके मोक्षमंदिरमें क्या आनंद २ न करते रहते? परन्तु राह भूले फिर शोचना क्या? अपने सवेरेसे

लेकर श्यामतक अनेक कार्य करते है, खाते है, पीते है, व्यापार करते है, धन इकट्ठा करते है, पहनते है, ओढते है, औरभी दूसरे अनेक कार्य दिन भर किया करते है थोडासाभी अवकाश अपनेको मिलता नहि है एक कार्य थोडा बहुत हुआ इतनेमें (वहा) दूसरे चार कार्य खडे करने तयार होते है परन्तु अब तक एक कार्य करते भये अपने भूल पडे है ऐसा विचार होता नहि रास्ता खोजते है और मिलना नहि इसलिये गभडाहट भया ऐसा प्रतिभास तो कोई दिन होता नहि अपनेतो जाने सभी काम अपना श्रेय और अपना उन कार्योकी साथ-वस्तुओंकी साथ सचा सबंध होय ऐसे ऐसा मानके करते है ऐसा भाम होता है कोई दिनभी इन कार्योको करते हुए ऐसा ख्यालभी नहि होता की अपनी वस्तु हेराई गई है और उनको खोजनेका अपने प्रयन करते है, परतु वह चीज अभी अपनेको खोजने परभी मिलती नहि अथवा अपने इष्टस्थानमें जानेका रास्ता चूके है और सचे राहकी शोधमें है जब ऐसा लगताही नहि तब मिथ्या जंजाल शब्दोंही इसका जवाब आगया. अपने जो कार्य करते है जो कार्य करनेमें अपनेको लेशभी आत्महित करनेकी फुरसद नहि मिलती है ये सभीतो मिथ्या जंजालही है ऐसा है चेतन! समझ पुर्वक हरएक कार्य करनेमें कुछ साध्य होना चाहिये ऐसा साधारण नियम है बिना प्रयोजन मंद (मूर्ख) मनुष्यभी प्रवृत्ति करता नहि. तो अपना कार्यकाभी साध्य न होय तो अप-

इस लिये चिदानंदजी महाराज कहते है कीः—'हे चेतन ! तुं अज्ञानीकी तरह भूलाभाला कहां भटकता है. जरा विचारतो कर. तेरे मार्गका अवलोकन कर. मार्गसे भूले पान्थकी तरह वांके टेडे रास्तेमें कहां जाता है ! यह मिथ्या मोहजालकों छोडकर अनुभव रसका पान कर. जिससे तुमकों इसमें ऐसा आनंद आयेगाकी तु कभी भी उस आनंदका वर्णनभी कर नहि सकेगा। तेरा आत्मामें अच्छा प्रकाश होगा और तेरी भवयात्रा व्यर्थ जैसी न बीतेगी कुछ सफल होगी, यह भवकी यात्रा सफल करनेके लिये अनुभव ज्ञानकी प्राप्ति करना यही सच्चा तत्त्व है, और वैसे अनुभव ज्ञानसेही कर्मबंधन टूटेगा, पौद्गलिक वस्तुओमेंसे राग उठ जायगा और सफल होगा. देखो सुनो

गझल.

मों वेरो देह आ पामी, जुवानी जोरमां जामी;
भज्या भावे न जग स्वामी, वधारो शुं कर्यो सारो....१

पडीने शोखमां पूरा, वनी शृंगारमां शूरा;
कर्यां कृत्यो बहु बुरां, पनाव्यो शी रीते वारो....२

भलाइ ना जरी लीधी, सुमार्गे पाइ ना दीधी;
कमाणी ना खरी कीधी, कहो केम आवशे आरो....३

गुमावीने जींदगी गाळी, न आणा वीरनी पाळी;
जशो अन्ते अरे ! खाली लइ वस पापनो भारो....४

इस लिये चिदानंदजी महाराज कहते है कीः—'हे चेतन ! तुं अज्ञानीकी तरह भूलाभाला कहां भटकता है. जरा विचारतो कर. तेरे मार्गका अवलोकन कर. मार्गसे भूले पान्थकी तरह वांके टेडे रास्तेमें कहां जाता है ! यह मिथ्या मोहजालकों छोडकर अनुभव रसका पान कर. जिससे तुमकों इसमें ऐसा आनंद आयेगाकी तु कभी भी उस आनंदका वर्णनभी कर नहि सकेगा तेरा आत्मामें अच्छा प्रकाश होगा और तेरी भवयात्रा व्यर्थ जैसी न बीतेगी कुछ सफल होगी, यह भवकी यात्रा सफल करनेके लिये अनुभव ज्ञानकी प्राप्ति करना यही सच्चा तत्त्व है, और वैसे अनुभव ज्ञानसेही कर्मबंधन टूटेगा, पौद्गलिक वस्तुओमेंसे राग उठ जायगा और सफल होगा. देखो सुनो

गझल.

मोंघेरो देह आ पामी, जुवानी जोरमां जामी;
भज्या भावे न जग स्वामी, वधारो शुं कर्यो सारो....१

पडीने शोखमां पूरा, बनी शृंगारमां शूरा;
कर्या कृत्यो बहु बुरां, पनाव्यो शी रीते वारो....२

भलाइ ना जरी लीधी, सुमार्गे पाइ ना दीधी;
कमाणी ना खरी कीधी, कहो केम आवशे आरो....३

गुमावीने जींदगी गाळी, न आणा वीरनी पाळी;
जशो अन्ते अरे ! खाली लइ बस पापनो भारो ...४

नकामा शोखने वामो, करो उपकारना कामो,
अचळ राखो रुडा नामो, विवेकी वात विचारो ५

सदा जिनधर्मने धरजो, गुरु "भक्ति" सदा करजो,
चिदानद सुखने वरजो, विवेकी वात विचारो ६

इस प्रकार होने परभी कुछभी न समझे तो फिर मैं और मेरा करते २ जैसा अनत भव निष्फळ गये वैसेही यह भवभी निष्फल जायगा. और जैसे मृगकों अचानक सिंह पकड कर मार डालता है वैसेही कालराजा (मृत्यु) तुमकों यहासे काल-राजा तेरेकु अचानक उठा जायगा और तेरा जीवनका अत लावेगा उस वख्त तुजेकु अकेला, सर्व वस्तु 'स्त्री, धन, घर, दुकान, हवेलीओ सभी छोडकर चला जाना पडेगा. शास्त्रकार कहते हैं की.—

जहेह सीहो व मियं गहाय, मच्चू नरं णेइ हु अतकाले ।
न तस्स माया न पिया न भाया, कालम्मि तम्मि सहरा भवन्ति

जैसे सिंह मृगके जूथमेंसे कोइ मृगको पकड ले जाता है वैसेही अतकालमें कुटुबादिके जूथमेंसे इस मनुष्यकों मृत्यु पकड ले जाता है. पकडते समय मरनार जीवको मातापिता प्रिया, भाइ, कोइ भागीदार होते नहि अर्थात् दुःखमें भाग लेते नहि. मरणसे छुडाते नहि. जाना न होवे

तौभी जीवकों बलात्कारसे जाना पडता है. यह पक्का समझ. मरना निःसन्देह बात है. शंका रहित बात है. बडे २ मान्धाता और रावण जैसे राजा और, चक्रवर्तिओं, बलदेवो, वासुदेवो इन्द्रोजैसेभी समय आनेसे अपने २ स्थान छोड के चले गये है. वेऐसे बलवानथे की सारी पृथ्वीकों उलट पलट करदेनेमें समर्थथे वैसेभी एक क्षणकाभी आयु अपना बढा न सके, और ऐसे इन्द्रादिकोक पिछे रही ऋद्धि सिद्धि व परिवार कोइकी साथ गया नहि. जानेवाला नहि. तो ओ चेतन! वह कालराजा अचानक तुजे पकड़ेगा इसमें क्या आश्चर्य? ऐसी निश्चयात्मक पक्की बात होनेसे तुजे अभीसे जाग्रत रहना आवश्यक है. उसमेंभी खास ध्यानमें रखने लायक यह है की कौन वखत में यह मृत्युरूप सिंह आके तेरे उपर छलांग मारेगा? और तुमकों पकड के देहसे भिन्न करदेगा, इसका तुम्हे पताभी नहि है. और इस विषयकी चौविस घंटेकी तो दूर रही परन्तु एक मीनीटकीभी तुमे नोटीस मिलनेवाली नहि है. और वह अवस्था प्राप्त होनेवाली है. उसमे संशय नहि है. इसके साथ २ इतनाभी चोकस है की तेरी पास जो २ चीजें होगी; तेरी मालीकीकी सो तेरी यहांही पडी रहेगी तेरी साथ आनेवाली काइ नहि है. उसमेंसें कुछभी तु साथ लेजा सकता नहि. तुम्हे अकेलाही जाना होगा. और कोईकी साथ एक मिनिटभी बात करनेका या कहने सुननेका अवसरभी मिलेगा या नहि

यहभी चोक्स नहि है ऐसेही तेने जीवनमें किये पापोंका पश्चात्तापकरनेकासमयभी मिलेगा या नहि यहभी चोक्स नहि है. परलोकमें जाना, वस्तुमात्र छोडना यहतो चोक्स है क्योंकी संसारी जीवों मरण धर्मवाळे है उस विषयमें समरा दित्यके रासमें पद्मविजयजि महाराज कहते है की.—

मरणधर्मी सहु जीवडा, हा हा भव गयो एळे रे,
नरपति सुरपति सहु जणा, नवी दीसे कोइ काळे रे,
अथीर संसार एणीरे. १

धन्य ते शेठ सेनापति, चिंतामणि सम जाणी रे,
घर छोडी व्रत आदरे, धनधन तास कमाणी रे,
अथीर संसार एणीपेरे २

यह गाथामेंभी यही वस्तु बताई है की संसारमें सभी जीव मरणधर्मवाळे है. वस्तुमात्र अनित्य है, क्षणभंगुर है चिंतामणि रत्नसेभी अधिक धर्मरत्न ग्रहण करे, व्रत पच्चखाण अंगिकार करे, और बुद्धि पूर्वक घर और ऋद्धि विगेराका त्याग करे वैसे जीवोंकी ही सची कमाई है और बाकी तो मगलाये गहेने जैसे पीछे दे देने पडते वैसेही संसारकी सभी वस्तु संसारसे विदाहोवे समय पछी दे देनी पडेगी (अर्थात् मैयत हाथि वखत सब वस्तु इहा पडे रहेंगे) उस विषयका समर्थन करते हुए श्री यशोविजयजी महाराज ज्ञान-सार अष्टकमें कहते है की —

पूर्णता या परोपाधेः, सा याचितकमण्डनम् ।
या तु स्वाभाविकी सैव, जात्यरत्नविभानिभा॥१॥

शब्दार्थ–पौद्गलिक वस्तुसे उत्पन्न भई जो पूर्णता है सो मंगकर लाये हुये गहेने के समान है. परंतु स्वभाव जनित जो पूर्णता है, सो उत्कृष्ट रत्नकी कांति समान है.

विवेचन–धन, रमणी, देह, स्वजन, रूप, सौभाग्य, वल, यौवन, ऐश्वर्य, आदि पौद्गलिक पदार्थोंकी प्राप्तिसे होनेवाली जो पूर्णता–संग्रहता, सो कहींसे [कार्य समाप्तीमें] पीछे देनेके हिसाबसे मंगकर लाये जेवरके समान है. जैसे मंगनी लाये गहेने ज्यादे दिन रख नहि सकते, समय होनेसे पीछे दे देना ही पड़ता है. कोई शेठ अपने पुत्रकी सादीमें पहीनानेके लिये कोई धनिकके घरसे कुछ समयके लिये गहेना मांग ले आवे, फिर मुदत पुरी होते ही तुरत उतारके पीछे दे देना पड़े. वैसाही पौद्गगलिक वस्तुकी पूर्णतासे भरा जीवको आयु रूपी मुद्दत पुरी होतेही तुरंत पूर्णताको छोड़के चला जाना पड़ता है. कुछभी साथमें ले जा नहि सकते. संयम ग्रहण नहि कीये एसे चक्रिवर्तिओ प्रतिवासुदेवो,राजामहाराजाओ अपनी पूर्णताओ याने राज्य समृद्धिओ छोडके नरकादिक घोर दुर्गतिके भाजन भये है और वहां असह्य दुःख भोगते है. चक्रवर्तीओ जो संयम ग्रहण करे तब ही सकल कर्मका क्षय कर मोक्षमें

अथवा देवलोकमें जा सकता है. परन्तु संयम ग्रहण न करे तो संपूर्ण जिंदगी मंगकर लाये गहेने के जेसी पौद्गल्कि पूर्णतामेंही विताते तो सातवी नरकमें जाते है, कितने आचार्य कहते की.– पहिली, दूसरी, तीसरी, चौथी, पाचवी, छठवी, सातवी सात-मेंसे कोई भी नरकमें जाय, और पूर्णता पीछी सुमत करनी पडे इस विषयमें ब्रह्मदत्त चक्रवर्ति, सुभूम चक्रवर्ति, विगेराका दृष्टान्त प्रसिद्ध है ऐसी पूर्णता जीवने भवचक्रमें भटकते २ कईवार प्राप्त की तोभी कोइ कार्य सिद्ध नहि हो सका तव ज्ञानादि धर्म जो आत्माका गुण है उन्होंसे होनेवाली जो पूर्णता वही सची पूर्णताहै वह कभीभी आत्मासे अलग होने वाली नहि है चिंतामणि आदि रत्नोंकी कान्तिके समान है याने जैसे श्रेष्ट रत्नकी कांति जब तक रत्न विद्यमान है तबतक इसकी साथही रहती है. वैसेही आत्माकी जो स्वाभाविक पूर्णता है सोतो आत्माकी साथ ही अनंत काल तक रहती है

ऐसी सची पूर्णता प्राप्त करनेके लीये जबतक उद्यम नहि करो, तबतक जन्म मरणका आवागमन मिटेगा नहि अभितो मरण शब्दभी तेरेकु कडुआ जहरका समान लगता है कोई मरण विषयक शब्दभी उचारे तो तुमकु वो अमंगल लगता है, परन्तु हे चेतन इस विषयमें तेरी वडी भूल होती है तु जानता है की जिस स्थितिकों वडे २ चक्रवर्ति ओ और तीर्थंकरोंभी उल्लंघन कर सके नहि, जो स्थितिका प्रतिकार वडे २ धन्वंतरी

वैद्याभी कर सके नहि यह स्थितिकी तयारीकों तु अमंगल समझता है. यह तेरी वड़ी ही गलती है. और इसमें तु मिथ्या खेद करता है. वास्ते यह मरणकी स्थिति वरावर समज कर धैर्यका अवलंवन कर, मरणसे अव डरना जरूरत नहि.

परंतु इस विषयमें अमुक सिद्धान्त ग्रहण करना जरूरी है की चेतन तो कदापि मरनेवाला नहि है. यह चेतनकी अजरामरता शास्त्र प्रसिद्ध है. शरीरसे चेतन अलग होता है, यह स्थितिकों मरण कहते है. कितने मूढप्राणि संसारके दुःखोंसे उब आके (कंटालके) मरणकी इच्छा करते है. परन्तु संसारके दुःखोंसें व्याकुल होके छुटनेका यह मार्ग नहि है जिसकों पामा भई हो उसकों उसके उपर खजुहाटसे कुछ अच्छा आनंद होता है परंतु परिणाममें अधिकाधिक दुःख होता है, यह पामाकों मिटानेका उपाय खर्जन नहि है परंतु इसका वरावर औषध करना यह है. वैसेही संसारके दुःखोंसे कष्ट होता हो तो इसका उपाय मरण नहि है, परन्तु दुःख कदापि न आवे ऐसे उपाय शोधनेमें है. इस प्रकार वस्तु स्थिति होनेसे दुःखसे क्लेश उत्पन्न भया हो तोभी कदापि मरणकी इच्छा करना नहि. और आखीर मरना तो है ही ऐसे विचारसेभी डरना नहि. ऐसे डरनेसे और कायर होनेसे कोई प्रकारका लाभ नहि.

शास्त्रकार कहते है की ?—

धीरेण वि मरियव्व, काउरिसेण वि अवस्स मरियव्व।
तम्हा अवस्समरणे, वर खु धीरत्तणे मरिउं ॥

'धीरोंकोंभी मरना है कायरोंकोंभी मरना है दोनो प्रकारसे मरण तो है ही. उसमें फरक होनेवाला नहिं. तो फिर धीरतासे क्यो न मरना? के ज्यों उत्तम मरण है ऐसे कायरतासे अनंत मरण भये है श्रीउत्तराध्ययनसूत्रके नववे प्रत्येकबुद्ध अध्ययनमें युगबाहुकों अपने भाई मणिरथने शस्त्रसे इतना अधिक मारा की वो मरनेकी घडी गिनता था रौद्रध्यान होनेका समय पासमें आया, तथापि युगबाहुकी स्त्री मदनरेखाने निझामणा कराके पंचपरमेष्टीके स्मरणमें लीन किया शत्रु भिनके उपर समभाव रखवाया. मृत्यु सुधरे इस रीतीसे सचोट उपदेश दिया जिससे युगबाहु थोड़ी देरका शुभ अध्यावसायसे मृत्यु पाकर पाचवा ब्रह्मदेवलोकमें देवता भया इस प्रकारकी मरणकालम निझामणा करानेवाली स्त्रीयाभी जगतमें क्वचित् मालुम पडती है आजकलकी स्त्रीओंमें प्राय. विपरित ही देखनेमें आता है इसलिये आत्मकल्याणको इच्छावाली भगिनीयाकों सुधारा करनेकी जरूरत है. धीरतासे मरण भया तो दुर्गति न भई हे चेतन! कदाचित् कायर होके मरेगा तो मरणतो दूर होनेवाला नहि है. रूका रूकनेवाला नहि है. इसवास्ते कोइकी साथ वैर विरोध करना नहिं. कदापि कोइके साथ खेद और बोलचाल भइ हो तो इसके लिये क्षमा याचना

करके सर्व जीवोंके साथ वैर विरोध क्षमा कराके शांति रखना. जिससे वैरवाला आदमीभी प्रायः वैर निकाल देगा. जो तु ऐसा नहि करेगा तो वैरका प्रवाह भवांतरमेंभी चलताही रहेगा. जिसका जीवन पवित्र है उस जीवकों मरण समयमेंभी कोइ प्रकारका दुःख नहि होता.

जिसका जीवन धर्मरहित है. उनकों इस जन्म और भवान्तर सभीमें दुःखवोही है. वास्ते जीवनको धर्म करके सुधारनां खास कर्तव्य है. शुद्ध जीवन वालाकों मरणके विचारमें दुःख नहि, शोक नहि, खेदभी नहि. ऐसा उत्तम जीवन मनुष्य भवसे अतिरिच्य दूसरे भवमें नहि होसक्ता. वास्ते हे चेतन ! बरावर तैयार होजा. विचार करकी उस भवमें धर्मका आराधनके लिये जो सामग्री मिली है, सो वार २ मिलेगी नहि. इससे यदि मिली हुई सामग्री आत्महितके साधनमें उपयोगी न भई ता ऐसी गंभीर भूल दूसरी क्या होगी ? अनेक प्रकारकी उत्तम सामग्रीसे भरपूर मानवभव व्यर्थ चला जाय ये तो बहुत खराव है. अजाने जीवतो खाने पीनेकी चीजें इकट्ठी करना, धनसंचय करना, पुत्रपौत्रादि परिवार वढ़ाना, रहेनेके लिये नये २ वंगले वनवाना सच्ची झूठी रीतिसे अपना सन्मान वढ़ाना इसमेंही लपटे है. ऐसे अनजान जीवो मार्गसे भ्रष्ट होकर संसार गलीमें भूले पडे है. और अनादि कालसें भटकते है. ऐसे जीवोंकों सच्चा सुखका स्थानजो मोक्ष है, ये वहूत दूर रहता है.

इसका ख्यालभी ऐसे अनजान मनुष्यकों नहि होता. और ऐसा सुख प्राप्त करनेकी भावनाभी नहि होती और अपनी जिंदगी पर्यंत कपट, छल, पाशला, झुठ, चोरी, परस्त्रीगमन, इत्यादिसे भई हुई अधम दशाकों दूर करनेका विचारभी नहि होता है. ऐसे प्राणी ससारमें आसक्त रहके इधर उधर भटकते रहते है अनेक प्रकारकी उपाधिओंसे व्याप्त होके भारी बनता है ऐसे जीवोका मनका परिणाम इसकी प्रवृत्तिया, इसके विचार विगेरे देखा होय तो सुननेवालिकोभी कटाले होते है ऐसी स्थितिमें हे चेतन! मझाह नहि है ऐसी स्थितिसे चौराशी लक्ष जीवायोनिमें नये २ भव लेने पडेगे तिर्यंच गतिमें कुत्ते, बिल्ली, बाघ, शेर, ऊट, सर्प, गद्धे, घोडे, इत्यादिके कई भव करना होगा, और भवभ्रमण करना होगा, मानव जीवन हाथ लगनेपरभी दुर्गतिके भव पैदा किया तो कितना खोया ? कितना नुकशान किया? हे चेतन ! कदापि तु मानते होगा की मुझे मेरे माबाप, स्त्री, पुन, मामा, मासी विगेरे सुख देंगे इसलिये उन्होके लिये प्रयास करके कुछ सचय कर रखु या उन्होंका आधार रखके मैं ससारमे मस्त रहु तो यह तेरी बडी भारी भूल है क्योंकि ज्ञानी महाराज कहते हैं की.—

माजाणसिजीवतुम, पुत्तकलत्ताइ मज्झ सुहहेउ ।
निउणबधणमेय, ससारेससरत्ताण ॥ १ ॥

अर्थ.—हे जीव ! यह ससारमे एकात दु.खके हेतु पुन,

स्त्री, मित्रो विगेरेकों तुं सुखका साधान मत समझ. क्योंकी संसारमें भ्रमण करते हुए जीवोंकों यह पुत्र, स्त्री, मित्रादि स्नेहि संवन्धी आदि वड़े भारी कर्म वंधनके कारण है; परन्तु तुमको संसारसे मुक्त कराके मुक्तिमंदिरमें पहोंचानेवाले नहि है. कईवार अपने व्यवहारमें देखते है तो स्नेही सवंधीओंका स्नेह क्षणिक मालुम पड़ता है. धनके लिये भाई २ परस्पर लड़ते देखनेमें आते है. और ऐसे लड़ते है, और क्लेश करते है की एक दूसरेकों पानी पीने तकका भी संवंध रहता नहि मातापिताके स्नेहमेंभी स्वार्थका स्नेह कितना देखनेमें आता है? वेभी पैसा कमाने वाला लड़कों और न कमानेवाले लड़कों में कितना अंतर रखते है यह देखा जा सकता है. ये तो व्यवहारमें अपने देखा परंतु आत्महित करनेके कार्योंमें तो उन्होंके तरफसे वहुतसी अड़चने डाली जाती है. आत्मसाधन करने वाला पुत्रका तिरस्कार करते है. और अंतमें उन्हेकों (पुत्रकों) समझा वुझा के संसारमें घीसट ल्यानेका प्रयत्न सर्वत्र देखने में आता है. मोहके कारणसे संसारका ल्हाव लेनेके कारणसे जो मातपिता अपने लड़कोंमें संसारकी रसिकता ठसाते है. वो लडके संसारका कीचडमें अत्यंत खुंप जाय ऐसा कार्य करते है–वे मातापिता अपनी संतति के हितेच्छु नहि है. किन्तु अपने शरण आई अपनी संततिकों अपने हाथसें दुर्गतिके गर्तमें डालनेवाले है. वो विश्वासघाती है. धर्मिष्ठ मातपिताकों अपने पुत्रकों ओलादको धर्मी वनते

वैरागी बनते देखकर आनद होय, अपनी कायरताके वास्ते तिरस्कार होय, और कहभी देंयगेकी हम तो शास्त्र सुनते २ बुढ्ढे हुए तोभी अपने वैराग्य न भया धर्म परिणत न भया इसलिये हम पामर है, हे पुत्र तुम्हे धन्य है की तेरी ऐसी उच्च भावना-ससारकों तोडनेवाली दीक्षा ग्रहण करनेकीभई. हे पुत्र पारमेश्वरी दीक्षा ही अवश्य आदरणीय हैं इसीसे कल्याण हैं सब कोई महापुरुष ईससें आत्मश्रेय कर सके है, ससार तरसके है ससारके भ्रमणसे छुटानेवाले यह सयमज ही है तेरे लियेभी श्रेष्ठ मार्ग यही है हमतो बुढ्ढे भये तौभी ससारमें आसक्त है हमारी आसक्ति छुटती नहि इस प्रकार कहके फिर चारित्रकी अतेजाम (स्वरुप) समझा के चारित्र ग्रहण करनेके वास्ते स्थिर करे, दृढ करे, वैरागी भये लडकेकों दृढ वैरागी बनावे, कृष्ण महाराजने जैसे अपनी पुत्रीओंकों परमात्माश्री नेमिनाथ भगवान के पास सयम ग्रहण करनेकों दृढ बनाई थी, वैसे सम्यक्त्ववाला जीव अपनी सततिकों सयम मार्गमें दृढ बनाके ससारकों अत्यत अल्प करादेते है वैसेही मातापिता लडके के सच्चे हितकर हैं, ससारसे तारनेमें मददगार हैं. ऐसे मातपिता आज कल पचमकालमें मिलना दुर्लभ हैं कमती है. उनकी सान्यद्रष्टिमें मददगार होना यह तो सोटकेमें नव्वेका अभावही है यद्यापि कालराजा अचानक आके जब गरदन पकडे उस वख्त रोकने समर्थ नहि है. इसलिये

शास्त्रकार तत्त्वद्रष्टिसे धर्ममें विघ्न करनेवालेकों शत्रूभूत कहते है. देखोः—

मातापितास्वसृगुरुश्च तत्त्वात्, प्रबोध्य यो योजति शुद्धमार्गे
न तत्समोऽरिः क्षिपते भवाब्धौ,यो धर्मविघ्नादिकृतेश्च जीवं

अर्थ—जो मनुष्य शास्त्रकी आज्ञानुसार बोध करके शुद्ध मार्गमें दूसरे जीवको जोडते है वोही तत्त्वतः उसकी माता, पिता, वहिन और गुरु कहे जाते है परन्तु जो धर्ममें विघ्न करने वाले मातापितादि या जो कोई होय उनके समान दूसरे कोई शत्रु नहि क्योंकी वे धर्ममें विघ्न डालके इस जीवकों दुर्गतिमें डालते है ।

विवेचन—एक अदभूत आश्चर्यकी वात है की अनंत कालसे भव भ्रमण करते २ महा पुण्यके उदयसे मनुष्य भवादि उत्तरोत्तर शुद्ध सामग्री जीवको मिले और गुरु महाराजका मुखसे जैनागमानुसार अमृत समान संसारको छेदनेवाली देशना सुनकर जीवकुं प्रतिवोध हुवा संसारका त्याग करके पारमेश्वरी प्रव्रज्या ग्रहणकरनेको उज्माल भया, उस समयकी चारित्र शुद्ध भावनासे छठवा सातवा गुणठाणाका मालिक पनाकी तैयारी भये इतनेमें वह शुद्ध भावनारूप मार्गसे नीचे पटकके संसारमें भटकानेवाले मातापितादिकको यह जीव हितकारी मानता है. परंतु तत्त्वद्दष्टिसे देखनेसे शास्त्रकार उन्हो-

को शत्रुसमान कहते है सो बराबर है. क्योंकी शत्रुहोय सो तो विरुद्धपक्षके धन खोलाते है और कुछ नुकसान कराते है वैसेही यह जीवकों उच्चकोटी उपर चडने नीचे पटका तो इसने कितना नुकसान किया ? कितना आतरिक धन खोलाया है ? सो हे चेतन ? तु बराबर समझ

इस कारणसे सासारिक सगेसबधीके वास्ते रातदिन आरभ समारभमे लपट रहना और आत्महितकी प्रवृत्ति न करना सो वडी भूल है, बराबर विचार करनेसे मालुम होता है की यह जीव धनप्राप्ति विगेरे पौद्गलिक वस्तुओमे ललचाके इसके खातिर जिंदगी पूरी करनेकी बाते करते है और युठ लालचके जोरसे ता उसका मनके उपर अनादिकालसे ऐसी मोहिनी लगी है की उसकी प्राप्ति और उसकी रक्षाके विचारोमे उन्हको इतना आनद आता है की वो धनके लियेही धनके पीछे लगा रहताहै आगे पीछेका विचार विना किये उसीमे आसक्त रहता है और उसके साथ ऐसें जोरसे गाठ वाधीहैकी मानो कोई दिन इसका वियोग होनेवाला ही न है यह सारी मान्यता भूलभरी होनेसे परिणाम विपरीत आये तो इसमें क्या आश्चर्य ?

हे चेतन ! जो तुम्हे उच्च कोटीपर चढना होय, आत्मकल्याण करना होय तो शुद्ध अत.करणसे शुद्ध भावना प्रगट

कर. थोड़े दिनमें अपना कार्य साध ले. उत्तम नरभवादि सामग्रीसे गजसुकुमार, धनाकाकंदी धन्ना शालिभद्र, मेघकुमार आर्द्रकुमार, मृगापुत्र, अनाथीमुनि, खंधकमुनि, ढंढणमुनि, झांझरीयामुनि विगेरे महामुनिमतंगजो यह संसारकों असार समझके दुःखका बोजारुप जानके विषय सुखकों विषका प्याला समान समझके, संयम ग्रहण करके, आत्मखजाना प्रकट कर गये है. वही उत्तम नरभव उत्तम कुल, निरोगी शरीर इत्यादि सामग्रीकों तु व्यर्थ क्यों गुमाता है? क्यों विभाव दशामें पडा है ? इसका विचार कर. और तुजे जिसके उपर अत्यंत राग है. यह शरीरभी तेरा नहि तो फिर मातापिता पुत्रकलत्रादि हे चेतन! तेरे सगे कैसे होगे? तुम्हको वेदनासे किस प्रकारसें सहाय करेंगे? तु पापमार्गमें चढ़कर आत्माकी अधोगति मत कर. तेरा पैसाटकाकी खबर पूछनेवाले बहोत मिलेंगे परन्तु तेरा आत्माकी क्या स्थिति है. ये पूछनेवाले विरल है. ये कोई होवे तो महाव्रतधारण करनेवाले मुनिवरोही है. ये मुनिवरो संसारकी पुष्टि होनेवाली बातें नहि करते परंतु मानवजीवन पाके तुम्हे क्या करना चाहीये ! तुम्हारा जन्म सफल कैसे होय! कैसे तुम जन्ममरणकादुःखको काटके मोक्ष पाओगे! वही मार्ग मुनिवरो बतावेंगे. और बतानेके बादभी तुम्हे आत्मविकासके और मोक्ष प्राप्तिके वास्ते मार्ग ग्रहण करना चाहिये. जिससे आत्मामें जरुर परावर्तन

हो जाय यदि इसप्रकार हे आत्मा ! तु नहि करेगा तो चौदह राजलोकमें यह जीव स्वकर्मानुसार कहींभी उत्पन्न हो जायगा और कुटुंबादि कहीं अलग हो जायगा सो तु पत्यक्ष देखा ता है

औरभी यह शरीर भीतो तीन मित्रोंमेंसे एक मित्रहोनेपरभी मरणके समय सहाय नहि करेगा. तुम्हे जलद निकाल नहार करेगा तुम्हे जरूर निकल्वा होगा. जिस शरीरके लिये अनेक पाप किये होंगे न खानेकी चीजें—अभक्ष्य अनतकाय आलु कादे, विगेरा खाये होंगे बीडी, हुका, गाजा, विगेरा पीये होगे, रात्रि भोजन परदार गमनादि अकृत्य किये होगे अच्छे २ पदार्थ खिलाके खुब पुष्ट किया होगा यह तेरा औदारिक शरीरकों एक घडीभी कोई घरमें रक्खेंगे नहि परन्तु भस्मीभूत करेंगे यह शरीरके जे परमाणुभी चौदह राजलोकमें रहे हुये परमाणु और स्कधो विगेरामें मिलजायगे

श्रीपन्नवणासूत्रमें शरीरपदमें कहाहै की 'यह जीवने अनतशरीर छोडे ये सभी भवके शरीर छितर वितर हो गये वैसेही इस भवका औदारिक शरीरभी छितरवितर हो जायगा यह पक्का समझ तुम्हेतो चार हाथकी लगोटी पहिनायके बिदाय करेंगे कुडकपट दगा पासला अनीति इत्यादि पापकर्म करके जो धन इक्ट्ठा किया होगा यहतो कुटुबादि भोगेंगे अहो ! कैसी मूर्खता! खरेखर पूर्ण मूर्खता ही समझना अपना धन, ज्ञान, दर्शन चारित्रयकों प्राप्त करनेका रत्नचिंतामणि जैसा समय

खा वैठा. कुछभी सार ग्रहण न कर सका दूसरेका सुधारनेकुं गया. सोभी न वन सका. क्योंकी सभीजीव अपने २ कर्माधीन है. जिससे भला बुरा करनेवाला कोई नहि. मात्र शुभाशुभ कार्योंका वे निमितमात्र है. मातपिता अपनी पुत्रीकों अच्छे खानदान कुटुंवमें अच्छा मुहूर्त दिखा कर शादी करते है. परन्तु लडकीका पुण्य कम होय तो थोड़ेही समयमें वह विधवा वनती है. और गरीवके यहां व्याही होवे तथापि पुण्यशालिनी होवे तो सुखिनी होतीहै शास्त्रमें ऐसे वहुत दृष्टान्त विद्यमान है, मयणासुंदरी और सुरसुंदरीका अधिकार श्रीपालचरित्रमें सविस्तर है. इससे पुण्य प्रकृति और पापप्रकृतिका फल स्पष्ट समझता है, इसवास्ते हे जीव! वैसे मिथ्या कुटुम्बादिकके मोहमें मत फसना और आत्मिक लक्ष्मी प्रकट करनेकों उद्यमी वन. निश्चल चितसे शुभभावनामें आरूढ होगा तो आत्मिक लक्ष्मी प्रकट होनेमें देर नहि लगेगी शुभभावनामें आरूढ होनेके वास्ते जैन सिद्धांतोमें वारह भावनाका स्वरुप वहुत अच्छा वर्णन किया है. जिन भावनाओंको मनन पूर्वक भावित करनेसे आत्माका जलद उद्धार होता है. यह वारह भावनाका संक्षेप वरणनमें.

प्रथम अनित्य भावनाका वर्णन

यह संसार के कर्मवंधनकारक पदार्थों और आडंवरी देखावोंको तिरस्कार करानेवाली सर्व प्रकारके सांसारिक

भावोंकी अस्थिरताको सिद्ध करनेवाली और आत्माका उन्नत मार्गको बतानेवाली जो भावना है सो अनित्य भावना कहलाती हैं इस भावनाको मनन करने के लिये नीचेके वाक्य हे चेतन! तेरी हृदय भूमिकामें स्थापन कर, हे चेतन! इस अनित्य भावना भावते हुआ प्रथम तु तेरा आत्माको प्रतिबोध देना की हे आत्मा तु यह ससार के झुठे पदार्थोंसे आनद मत मान, ये सभी पदार्थ परिणाममें अनित्य है, विनाशी है, निरर्थक है क्षणभगुर है वे तेरे आत्माका नहि है और तेरा उद्धार करनेवाला नहि है, आखिरमे वे इन्द्रजालके समान क्षणिक है, उनकी अनित्यता तेरी पास साबित करनेकी कोइ जररत नहि है यह तो तु इस ससारमें प्रत्यक्ष देख सकता हैं कि अखूट धन वाला एक क्षणमें निर्धन बन जाता है सज्जनो के परिवारसे युक्त मनुष्य थोडी देरमें एकाकी बन जाता है यह खूब लक्षमें रखना ऐसे विनाशी पदार्थो उपरकी नित्यता और स्थिरताकी बुद्धि होने देना नहि. शास्त्रकार लिखते है की —

श्लोक—यत्प्रातस्तन्नमध्याह्ने यन्मध्याह्ने न तन्निशि ।
निरीक्ष्यते भवेऽस्मिन हा पदार्थानामनित्यता ॥१॥

अर्थ—जो पदार्थ प्रात कालमें रमणीय मालुम होता हैं सो मध्याह्नमें उससे विपरीत देखनेमें आता हैं अथवा होता ही नहि, और जो मध्याह्नमें सुदर मालुम होता है सो रात्रिमें नष्ट

हो जाता है जैसे सचेतन पदार्थोंमें कितने जीव सुबोहमें आनंद मानते देख पड़ते है सो दोपहर होते कालराजा के झपटमें आते भस्मीभूत हो जाते है. और अचेतन पदार्थोंमें प्रभातमें सुंदर देख पड़ते बंगलेमें धनमालादि उसीदिन नष्ट भये हुये दृष्टिगोचर होते है हे शुद्ध चेतन! जो तु सूक्ष्म विचार करेगा तो तुम्हे औरभी साफ साफ मालुम होगाकी जिस प्रकारसे संसार के पदार्थ अनित्य है. वैसेही संसार सुखभी अनित्य है. इतनाही नहि परंतु यह सुखके पीछे दुखभी तयार होके खडा है. यहां तककी सुखकी अपेक्षा दुःख अनंत गुना बढ़ जायगा इस लिये शास्त्रमें कहाहै कीः—

श्लोक—यज्जन्मनिसुखं मूढ यच्चदुःखं पुरःस्थितम् ।
तयोर्दुखमनंतं स्यात् तुलायांकल्पमानयोः ॥ १ ॥

अर्थः—यह संसारमें हे चेतन तेरी सन्मुख जो कुछ सुख अथवा दुःख दिखता है सो दोनोकों ज्ञानरुपी ताजुमें रखकर ताल देखनातो तुजे सुखकि अपेक्षासें दुःख अनेक गुना मालुम पड़ेगा जैसें हिंसादि पापाश्रवो करके मनुष्यभव हार गया उसकों परंपरा सात नरकमें अथवा तिर्यंचोंके भवोंमें भटकते २ अनन्त दुःख उत्पन्न होता है. और हे आत्मा तुम्हे शोचना चाहिये की मनुष्यमात्रकों सुख भोगनेका स्थान यह शरीर है परंतु शरीर ही अनित्य है तो फिर दुसरे सुखोंकी व्यर्थ इच्छा रखकर क्यों पापकर्ममें डुब रहा है? इत्यादि खूब उंडा विचार

करके वस्तुकी अनित्यताका चिंतन करके स्थिर धर्ममें अच्छी तरहसे दृढ बन जाना. जिससे पूर्णरीतिसे दोनो लोकमें सुखी होगा.

दूसरी अशरण भावनाका स्वरूप

यह संसारमें शरण करने योग्य क्या है अशरण ? आत्माको किसका शरण लेना चाहीये और शरणके साधन किस रीतिसे प्राप्तकरना ? कौन उपाय शोचु जिससे आनन्द प्राप्त कर सकु ? शास्त्रकार कहते है —

कोनुस्यादुपायोत्र येनाहं दुःखसागरात् ।
संसाराच विनिर्गत्य निर्भयानंदमाश्रये ॥

यह जगतमें ऐसा कोइ उपाय है की जिससे मैं इस दुखके समुद्र ऐसा संसारसे निकलके निर्भय ऐसा आनदका आश्रय लेऊ इस श्लोक उपरसे इतनाहि सिद्ध होता है की इस संसारमें धर्मका शरणही जीवको आनददायक है सभी प्राणीके उपर भयंकर और विकराल कालरुपी चक्र घुमता फिरता है इस कालका स्वरूप शास्त्रकारोने अनेक स्थलोंमें वर्णन किया है यह कालकी इच्छा मात्रसे जगतमें क्या बन रहा है सो तु विचार

जगत् त्रय जयीवीर एक एवान्तक क्षणे ।
इच्छामात्रेणयस्यैतेपतन्तित्रिदशेश्वरा ॥

अर्थः—त्रण जगतकों जीतनेवाला एक अद्वितिय सुभट-काल है जिसकी इच्छा मात्रसे देवताओंका स्वामी इन्द्रोंकाभी स्वर्गसे पात होता है तो दूसरेकी क्या दशा? जिसके हृदयमें अशरण भावनाकासच्चास्वरुपका ज्ञान भया नहि सो खरेखर मूर्ख है. क्योंकी कोई शरणभूत नहि है, ऐसा नजरसे देखने परभी झूठ शरणकों पकड़के कई जीव दुःखी भये है और सच्चे शरणका भान न होनेसे अनेक दुःखद भवाटवीमें भ्रमण कर रहे है दुसरेकी दुःस्थिति देखके उसका शोक करने लगता है, परन्तु अपने आत्माका विचार करता नहि, की हे आत्मा! तेरा क्या होगा? इसलिये कहा है कीः—

शोचन्ति स्वजनंमूर्खाःस्वकर्मफलभोगिनम् ।
नात्मानं बुद्धिविध्वंसं यमदंष्ट्रांतरस्थितम् ॥

अर्थ—अपने स्वजन संबंधीओंकी मरणादि आपत्तियां देखकर मूर्ख मनुष्य शोक करते है, परन्तु बुद्धिका नाश भया है जिसका ऐसे आप ही यमराजकी दाढमें रहा है इसका शोक करता नहि ये कितना शोचनीय है. जैसे दावानलकी ज्वाला-ओंसे भयंकर ऐसे वनमें मृगके बच्चेकों कोई शरण दे सक्ता नहि इस प्रकार दुःखरूप दावानलकी जलती ज्वालाओंसे भयंकर ऐसे संसाररूपी वनमें प्राणीओंकों शरण देनेवाला कोई नहि. हे चेतन! इसके जरीमे तुजे मालुम होगा की यह संसारमें प्राणी मृत्युके विकराल मुखमें ग्रास हो जाते है,

तब उनकों बचानेवाला कोईभी नहि, जो लोग छह खंडको जीतके आत्मोत्कर्षसे गर्जित हो रहे है. और जो अपना बाहुबलसे संपादन कीये हुवे महान् सुख प्राप्त करके आनंदसागरमें उछल रहे है और जो तीन भुवनमें निष्कंटक बिरुद धारण कर रहे है वैसे इन्द्रो चक्रवर्ति वासुदेवो प्रतिवासुदेवो विगेरा भी क्रूर कालराजाकी दाढोमें पीसाते २ अशरण होकर शरण खोजनेके वास्ते दीनमुख होके दशदिशामें दृष्टि फेंकते २ तलस रहते है परंतु कोई शरण होता नहि तो हे चेतन ! तो उन्होंकी पास तु क्या गिनतीमें है! इसके जरीमे सिद्ध होताहैकी इस संसारमें सच्चा शरण देनेवाला निर्भय आनंद देनेवाला धर्म ही है धर्मकी दिव्य सत्ताके नीचे आया आत्मा नीराबाध और निरंतर सुखी रहता है सो खास लक्षमें लेके धर्मका शरण करनेकों तत्पर हो जा

तीसरी संसार भावना

हे चेतन! जो तु यह संसारभावनाका स्वरुप विचारेगें तब तेरामनुष्य जीवनकी उपर कोई दिव्य प्रभा पडेगी तेरा जीवनकों सन्मार्ग बतानेवाली और सच्चे कर्तव्यका मार्गपर लेजानेवाली यह संसार भावनाकों जो तेरा हृदयमें आरुढ करेगा तो तेरी पास यह संसारका शुद्ध स्वरुप स्वत प्रकटहो जायगा और तुम्हे आयनाकी तरह दिखाई देगा और

साथ यह भवाटवी कैसी भयंकर है; और इसमें प्राणीओंकी कैसी स्थिति होती है, सो सब स्वरुप तेरी सन्मुख साक्षात्कार होगा सो विचारना. अज्ञानके आवरणसे आवर्त भया हुआ और मिथ्यात्वका उदयसें अचेतन जैसा बना जीव अपना जीवनकी सुधारणाका सत्यमार्ग खोज सकता नहि इस वास्ते वह चतुर्गतिरूप विकट संसारमें परि-भ्रमण किये करता है. कर्मके दृढ बंधनसे पराधीन भया हुआ प्राणीकों जो घोर दुःख भोगने पड़ते है; सो तो अनंतकालसे चले आते है. कर्माधीन संसारी जीवने अनंत पुद्गल परावर्तन किया है. उसका स्वरुप प्रथम बता चुके है; और कोईवार शुभ कर्मका उदय होय तो पुण्यकी प्रबलतासे विमानवासी बनजाता है. परन्तु वहांभी इसका वास स्थिर नहि है. स्थिति पूर्ण होनेसे तुरंत वहांसे चलायमान होना पड़ता है. वहांसे चलित होके इस विश्वमंडलमें भटकता फिरता है कभी तो पाप कर्मका प्रबल उदयसें नरक भूमिमें क्षुधा, तृषा, ताप, ठंडी और तर्जनादि असह्य दुःख भोगने पडते है. जो दुःखोका श्रवण करतेभी कम्प होता है. कदाचित् तिर्यंच योनिमेंभी पराधीनतादि बहुत कष्ट सहन करना पडता है. हे चेतन ! दूसरी गतियोंकी बाततो दूर रही परंतु, चिंतामणी समान गिनेजाते मनुष्य जीवनकातो तु खास विचार कर कितनेतो पशु समान अज्ञान अवस्थामेंही अपना जीवन समाप्त करते है, कितने जीवोंकों तो जन्मते ही मातापिताका

वियोग होता है कितनेको तो क्षुधा तृषा, और तिरस्कारादि पिडापूर्वक जीवनपर्यंत दासत्व करते है, और कितने तो विविध प्रकारका रोगोसे पीडित रहते है. वे सभी मनुष्योंकी स्थितिका अवलोकन कर जिससे सत्य वस्तुका भान होगा यह ससारमा ऐसि कौन जाति है और ऐसी कौन योनि है की जिस जाति और योनिमें तु जन्मा नहि, इतनाही नहि बल्कि जिसको तु प्रेमका स्थानरूप भोग विलासकी भूमिरूप स्त्री समझता है सो भी कइ मरतवा तेरी माताभी हो चुकी है, और माता स्त्री हो चुकी है, पिता पुत्र और पुत्र पिता इस प्रकार एक २ जीवकी साथ अनेक सबध हो चुके है ता अब भी आत्माको नहि समझावेगा तो तुम्हे अनतकाल तक भ्रमण करनेके वास्ते नये २ सवध करके सयोग वियोगके अनत दु ख सहना होगा, परतु यदि यह अनुपम भावनाको तेरे हृदयमें स्थान देगा और वीतरागके वचनमें शुद्ध श्रद्धा उत्पन्न करेगा तो यह ससारके विकट और विषय भाव तुम्हे हैरान करेगे नहि, और सच्चा आत्मबल प्रकट होगा, और तेरे आत्माकी अपूर्व ज्योति प्रकट होगी

चोथी एकत्व भावना

मित्र पुत्र कलत्रादि कृतेकर्मकरोत्ययम् ।
यत्तस्यफलमेकाकी भुक्तेश्वभ्रादिपुस्वयम् ॥

प्राणी अपना पुत्र स्त्री मित्रादिके वास्ते जो कुछ कर्म करता है. सो कर्मफल नरकादि गतिमें अपना अकेलाही भोगता है. मित्र पुत्र और स्त्री आदि कोइभी कर्मका फल भोगनेमें सहाय नहिं होते. यह जीव अच्छे बुरे कर्म करके जो धन कमाता है. यह द्रव्य भोगनेमें इसके मित्र स्त्री पुत्रादि केवल सहायक होते है. परंतु इसने किये हुवे कर्मसे उत्पन्न भये हुवे दुःखकी जो श्रेणीको सहन करनेमें कोइ सहायक होते नहि. यह दुःखोंकी श्रेणीकों तो कर्म करनेवालाको ही भोगनी पड़ती है. सभी जीव जन्म मरणका प्रत्यक्ष अनुभव करते है, और देखतेभी है, तोभि इन्होके हृदयमें यह बात जमती नहि, की जन्म और मरणका अनुभव अकेले ही भोगना होता है. सभी प्राणी अकेलाही जन्मता मरता यह बात जगत्में प्रसिद्ध है. तथापि अज्ञानसे अंध बनके एकत्व भावना दृढ करता नहि. हरएक प्राणी मनुष्य जन्म जैसा चिंतामणि रत्नका अलभ्य लाभ लेनेका अधिकारी होनेपर प्रमादादि दुर्गुणोंके वश होके अपना एकत्वका शुद्ध स्वरूप संपादन नहि कर सकता. सो कैसी भूल है? यह जीव अकेला आया है. अकेला जायगा, और उपार्जित शुभाशुभ कर्मोका फल अकेलाही भोगेगा. आजतक तुम्हे दुःखमें सहाय करनेवाला कोइ भया नहि. इस प्रकार एकत्व भावना तेरे हृदयमें भावित करके विवेक दीपक प्रकट करना इसके प्रकाशसे तेरा हृदयका अंधकार दूर होगा. और तुम्हे खातिर होगा कि

इस ससारका सबध स्वार्थमय है और सच्चा सहायकतो धर्महीं है ऐसा प्रतिभास होगा

पाचवी अन्यत्व भावना.

श्लोक—पुत्र मित्र कलत्राणि वस्तूनि च धनानि च
सर्वथाऽन्यस्वभावानि भावयत्व प्रतिक्षणम् ॥

अर्थः— हे आत्मा! इस जगतमें पुत्र मित्र स्त्री और दुसरी चीजें और द्रव्य विगेरा पौद्गलिक पदार्थों सभी प्रकारके भिन्न २ स्वभाववाले है एक स्वभाववाले नहि ऐसी भावना तेरे हृदयमें क्षण २ भावित करना, हे चेतन! तु शुद्ध स्वरूपी है तुमे परपुद्गलमें प्रवेश किया है, परमें प्रवेश करनेसे तुजे आधि व्याधि उपाधिरूप अनेक कष्ट प्राप्त होते हैं, वह प्रवेशके आवेशसे तेरेमें ममत्वका अकुर प्रकट होता है वो अकुर तुझे अपने जीवनमें शल्यरूप होता है. इसवास्ते तेरेको अपना जीवनको यदि निरुपाधिक और आनदमय बनाना होय तो तु इसके अदर अन्यत्व भावनाका पूर्ण प्रकाश डाल, शरीर वो आत्मा नहि है और आत्मा सो शरीर नहि है. आत्मासे शरीर भिन्न है, आत्मा चेतन है शरीर जड है इसका सच्चा सबध आत्मासे नहि है पूर्व कर्मके योगसे इस ससारमें जो कुछ मिल जाय इसमें ममत्व न रखनेके लिये अन्यत्व भावनाकी तरेकु

खास जरूरत है. जो कुछ मिलजाता है सो अन्य है. आत्मकीय नहि है एसी भावना करना सो अन्यत्व भावना है. इस जमतमें जो वहुतसे वहुत दुःखी है. और हम दुःखी है. २ एसी जो वूमभारनेवाले है. वेसभी इसमेंसें छुटनेकी कोशीष नहि करते है वे सव यह अन्यत्व भावनाकों नहि जानते है ऐसा जानना. आत्मासे सभी वस्तु भिन्न है, आत्माकी नहि है, इसरीतिसे आत्मा और पुद्‌गलोंका संवधकों मनुष्य विवेकसे विचारे तो उसका आत्मा अन्यत्व भावनाका अभ्यासी हो जायगा, और ममताके गृहमेंसें मुक्त होके शीघ्र अपूर्व आत्मकल्याण करता है.

छठवी अशुचि भावना.

जव अन्यत्व भावना सिद्ध भइ तव आत्मा और देहका संवंध भिन्न मालुम पडता है. देह अशुचि है, आत्मा शुचि-पवित्र है, ऐसा ख्याल ल्यानेकी आवश्यकता होनेसे छठवी अशुचि भावनाका क्रम वरावर है. हे चेतन! जिसके उपर तुम्हे अत्यंत राग है जिसका पोषण करनेके लिये तु सर्वदा तैयार रहता है. यह तेरी काया अशुचि है अशुचिके भंडार जैसी और क्षणमें नष्ट होनेवाली और पवित्र वस्तुकों अपवित्र वनानेवाली क्षणमात्रमें भस्म होने वाली है ऐसी कायाकी स्थिति देखकर ही सनत्कुमार चक्रवर्तीने अपना मोह छोड

दिया था, इस महान् पुरुषका चरित्र वैराग्यसे भरा, बहुत असरकारक उत्तम बोध देनेवाला शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है उनकी काया बहुत सुंदरथी, तथापि पूर्वकृत कर्मके उदयसें वही काया रोगमय बनजानेसे इन्द्रके शुद्ध अन्तःकरणमे तीव्र वैराग्य प्राप्त भया और तुरतही चारित्र्य लेनेको तत्पर भये, छ खडकी प्रभुता क्षणवारमे छोडकर माहात्माने चलदिया, धन्य है ऐसे पवित्र महात्माओंकोंकी जिसका नाम लेतेही पापका पुंज नष्ट होता है. इस प्रकार हे चेतन! तुभी यह छठवी अशुचि भावेनाको तेरे पवित्र हृदयमे उत्पन्न कर जिसके दिव्य प्रभावमे अज्ञान अधर्म और स्वार्थमय तेरी देह विषयक ममता दूर हो जायगी और तु कल्याण स्थान बनेगा, और आत्माका सुतत्व तेरे हृष्टिमे प्रकाशित होगा इस वास्ते अशुचि भावनाका विचार करना की यह शरीर रस, रुधिर, मास मेद, अस्थि मज्जा, इन सात धातुसे भरा है, सो कदापि पवित्र नहि होता पुरुषके नवद्वार और स्त्रीका बारह द्वारो सदा अशुचिसे वहत है तो इसके उपरसे ममत्व भाव छोड कर आत्माको निर्मल बनाना यही मनुष्य जीवनका साफल्य है

सातवी आश्रव भावना

जेसें समुद्रमे चलते जहाजमे छिद्र पडनेसे इसके भीतर पानी भराता है वैसेंही जीवभी मन वचन कायसे शुभाशुभ अध्यवसायरूप (योगरूप) छिद्र पडनेसे शुभाशुभ कर्मको ग्रहण कर-

ता है कर्म वंधनका हेतुओंसे जो कर्मका ग्रहण करना सोही आश्रव कहलाता है. आत्मका स्वभाव शुद्ध है परन्तु कर्मका लेपसे अशुद्ध वनता है क्रोधादि कषाय, विषय, प्रमाद, मिथ्यात्व मन वचन कायाका योग और अविरतिसे सभी आश्रवों जीवोंकों जन्म मरण भय देनेवाली और पापके समुहकों वढाने वाली है. ऐसे दुःखके स्थान भूत सतावन आश्रवोंकों त्याग करनेके लीये हे चेतन! तत्पर रहना जव सर्वथा मन वचन और कायसे उसका त्याग होगा तव ही तरे आत्माका अविनाशी सुखकी तुम्हे प्राप्ति होगी. वास्ते- आश्रवका वयालीस भेदहे इसका अंतरसे वीचार करना चाहिये, और उसकों रोकनेका प्रयत्न करना चाहीये

आठवी संवर भावना.

आत्म स्वरूपकों निर्मल वनाने वाली संवर भावना जानना उपर दिखाई आश्रव भावनाके साथ इस भावनाका संवंध है, आश्रव शब्दका अर्थ कर्मका आना है जव संवर शब्दका अर्थ इससे उलटा है. वास्ते यही आश्रवका निरोध करनेसे संवर होता है. पापकों आनेके लिये नालाके समान जो सतावन अश्रव है वो सभी द्वारकों रोकना याने नये आते कर्मोंकों रोकना इसकों संवर कहते है, इस विषयका जो शुभ विचार इसे संवर भावना जानो, जैसे समुद्रमें रहे नावकों छिद्र होवे तो नावमें पानी भर जानेसे डुव जाता है, परंतु वो छिद्र बंध कर दिया

जावे तब इसकी भीतर पानी नहि आता, और नावभी नहि डुबता वैसे पापके नाले बंध करनेसे नये कर्म आते रुक जाते है. पांच समिति, तीन गुप्ति, दशविध यति धर्म, बारह भावना, सत्तरह प्रकारके संयम, बाईस परिषह जितनेके लिये वे सभी साधन नये कर्मको आते रोककर संवरकी प्राप्ति कराते है, यह संवर भावनाकी प्रवृत्ति आत्मस्वरूपकी निर्मलता बनानेकों बहुत उपयोगी है वास्ते हे चेतन! लक्षमें लेकर उपर कही हुई संवर भावनाको आचारमें रखनेकों उद्यमी होजाओ

नवमी निर्जराभावना.

आत्माकों लगे कर्म जर्जरीभूत बनाना सो निर्जरा कही जाती है तपस्याके योगसे विशेष प्रकारसे हो सकती है इस वास्ते आत्मस्वरूपकों निर्मल करनेके लिये निर्जराभावनामें तपस्या करनेकी आवश्यकता है. इस तपस्याका छ बाह्य और छ. आभ्यन्तर ऐसे बारह भेद है इन बारह भेद के नामः—

छ भेद बाह्य तपके

१ अनशन–उपवास छठ विगेरा करना सो
२ उनोदरिका–[याने] दो चार व आठ कवल कमती खाना
३ वृत्ति संक्षेप–(याने) चौदह नियम धारण करना इत्यादि
४ रसत्याग–छ विगय अथवा छ मेंसे कोइभी विगयका त्यागना
५ कायक्लेश–वीरासनादि आसनोंसे विधिपूर्वक बैठना, कौसग

करना और केशोकाल्लुंचन करना इत्यादि
६ संलीनता-संवरना, संकोचना, याने अशुद्ध मार्गमें प्रवर्तित इन्द्रियोंका संवरना, पापसे आत्माको पीछा हठाना इत्यादि



यह छः भेद बाह्यतपके जानना.

छः भेद आभ्यन्तर तपके

१ पायच्छित-(याने)गुर्वादिक के पास पापकी शुद्धिके लीये आलोचना लेना इत्यादि
२ विनय-(याने) गुणवंतकी भक्ति और बहुमान करना ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, मन, वचन, काया और उपचार यह सात प्रकारसे.
३ वयावच्च-[याने] आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, स्थविर इत्यादिकोंको आहार, वस्त्र, वसति, औषध इत्यादिसे बहुमान करना
४ स्वाध्याय-वाचना, प्रच्छना परावर्तना, अनुपेक्षा, धर्मकथा, यह पांच प्रकार समझना
५ झाणं-ध्यान मनकी एकाग्रता करके शुभ अध्यवसायमें रहना
६ कायोत्सर्ग-कायादिके व्यापारका त्याग याने बैठे २ या तो खडे खडे ध्यानमें निश्चल रहना.

उपर कहे छः भेद आभ्यन्तर तपके जानना



उपर कहे बारह प्रकारका तपका विशेष स्वरूप नव तत्वकी किताबमें ३५-३६ वी. गाथामें विशेष अर्थसें बतलाया है वहांसे जान लेना चाहिये. यह बारह प्रकारके तपको निदान रहित शुद्ध अन्तःकरणपूर्वक आदर करनेसे दृढ प्रहारी अर्जुनमाली इत्यादिकी तरह इस भवके किये हुये पापो भस्मीभूत करके आत्मा केवल ज्ञान प्राप्त करके शाश्वत सुखका अखंड आनंद अनुभवता है. इस कारणसे वैराग्य भावको उत्पन्न करनेवाली और कर्मजालको तोडनेवाली निर्जराभावना भवी जीवोंको अवश्य भावनी चाहीये और अवश्य आचरणमें रखना चाहिये,

दशवी लोक स्वरूपभावना

चौदह राजलोक अनादि कालसे शाश्वत है. आदि अंतसे रहित है कोइ दिन इनका नाश होनेवाला नहि और उसको कोइ बनाता नहि और अविनाशी है जीवादि षट्पदार्थोंसे भरे है जैसे कोइ कटिके उपर दो हाथ रखके पैर पसारके खडा रहे वैसे इन चौदह राजलोकका स्वरूप जानना इस पुरुषके कटिके अधो भागमें अधो लोक, मध्यभागमें तिर्च्छा लोक, और उपरके भागमें ऊर्ध्व लोक है षड्द्रव्यात्मक लोककी बहार अनंत आकाश है उन्हे अलोक कहते है बाकीके भागको लोक कहते है. उसमें षड् द्रव्य व्याप्त है. उसमें मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योगकी प्रबलतासे जीव परद्रव्यको अपना मानके भ्रमण

कर रहे है. जब वीतरागके वचनसे शुद्धमार्गका अनुसरण करेगा तबही लोकके अग्रभागमें पहुंच कर शाश्वत सुखका अनुभव जीव करेगा.

ग्यारहवी बोधीदुर्लभभावना.

यह जीवकों अनादि कालसे संसारमें भ्रमण करते २ मानव भवादि सामग्री प्राप्त करनेके बाद धर्मका श्रवण प्राप्त होनेपरभी आजतक सम्यत्तवकी प्राप्ति भई नहि. जिससे संसार-भटकता रहा. जो एक वारभी बोधिरत्न प्राप्त भया होता तो इतना समय भ्रमण न करना पड़ता. संसारकी तमाम पौद्गलिक वस्तु (चिजों) तुम्हे मिली होगी परन्तु सम्यत्तव रत्न बहुत दुर्लभ हो गया. जे जीवो सिद्ध भये, होते है और होंगे वे सब सम्यक्त्वके महात्म्यसेही भये है. यह सम्यक्त्व रत्न प्राप्त करनेके वास्ते मनुष्य गति सर्वोत्तम साधन है. वास्ते महामूल्य ऐसी शुभ सामग्री प्राप्त करके सम्यक्त्व रत्न प्राप्त करनेके लीये हे आत्मा! अच्छी तरह यत्न करना जिससे तेरी यह मानव भवकी यात्रा सफल होगी इस विषयका विशेष विचार सम्यक्त्वकी प्राप्तिमें पीछे वर्णन किया है. सो देख लेना.

बारहवी धर्म दुर्लभ भावना.

यह जीवकों जब बोधीबिजकी प्राप्ति होति तब ही धर्म आराधन करनेकी बराबर रुचि होती है जबतक मिथ्यात्वरूप

अधकार आत्माको आवृत कर रहा है तब तक जीवकों शुद्ध मार्ग दृष्टिगोचर नहि होता इसवास्ते सम्यक्त्व प्राप्त करनेके बाद धर्मका आराधन बराबर किया जाता है यह धर्मभावना जीवकों बहुत कठीन है ससारकी वासनासे त्रासित भये आत्माकों विषय कषाय स्त्री पुत्र और धनादिकमें जैसी प्रीति होती है वैसी जो धर्म प्रति होय तो यह ससारमें समग्र दुखोंका नाश करनेके लिये आत्मा समर्थ होता है ऐसा उत्तम धर्मके लिये प्रत्येक भव्यजीवको आदर करना चाहीये जो जीव ऐसा उत्तम धर्मसे विमुख रहते है वे जीव अपना मानव जीवनका दुरुपयोग करता है महात्मापुरुष पुकार करके कहते है की हे भव्यजीव! तु प्रमाद और मोहके वश होके धर्मका अनादर मत कर जो अनादर करेगा तो ससारका नसा तुजे उन्मार्गमें खींचकर ले जायगा जिससे भव समुद्रको तारनेवाला जैन-धर्मकों तु भूल जायगा और उलटा तेरे हृदयमें ससार सुखकी वासनायें अधिक प्रबल होगी जब तक यह जीव धर्मके लिये आदर नहि करता तब तक उसको सुखकी प्राप्ति होनेवाली नहि विना बीज बोय धान्य पेदा कैसे होय? यह ससारमेंचक्र-वर्त्तित्व इन्द्रत्व और आखिर तीर्थंकरत्व धर्मका प्रभावसेही प्राप्त हो सकता है धर्मके प्रभावसे कोईभी पदार्थ दुर्लभ नहि है. ऐसे उत्तम धर्मका आराधन करनेकों हे जीव! जलद तयार होना. उपर बतलाई बारह भावनायों हृदयमें दृढ करनेवाला

जीव कोइ दिनभी दुःखी होता नहि. परंतु शीघ्र भव समुद्रको तरजाता है. और अजर अमर पदकों सुखसे प्राप्तकरशकता है, चोरी करने वालोंकोंभी शुभ निमित्त मिलनेसे शुभ भावनामें आरूढ होनेसे आत्माका खजाना प्राप्त भया है. मुक्तिपदकों प्राप्त भये है. चोरी करनेवाले चार चोरका दृष्टांत नीचे देते है.

शुभभावना विषयक चार चोरकी कथा.

क्षितिप्रतिष्ठित नगरका रहनेवाला कोई श्रावक अपने निर्वाहके लिये भील्ल लोगोंकी पल्लिमें आ वसाथा. पुण्य योगसे वहां रहते २ वह करोडाधीश बन गया. एक दिन उन भीलके वृद्ध पुरुषों उस श्रावककी ऋद्धि देखकर विचार करने लगेकी "अपनेकों लोभमें डालकर कपटसे इनने इतना धन इकठ्ठा किया है. इस वास्ते रात्रिमें उनके घरमें डाका पाड़के उनका सब द्रव्य ले लेना चाहीये. यदि नहि तो यह कपटी बनिया सभी द्रव्य लेके अपना नगरमें चला जायगा." ऐसा विचार करके वे डाका पाड़नेकों तयार भया. वह बनियाभी प्रतिदिन सात आठ सामा-यिक करताथा सो उस दिन मध्यरात्रि वीते बाद आप तथा आपनी स्त्री दोनो सामायिक ले कर बैठे थे. इतनेमें वे चार चोर डाका पाडनेके लिये आये. आयके देखते है तो देखा की गृहका स्वामी जागता है तो विचारने लगे की चोरी कैसे करेंगे इस लिये थोडी देर राह देखें इतनेमें वह श्रावकने चोरोंकु

देखकर सोचा की "द्रव्य तो बहुत भवमें मिलेगा, इस भवमें भी द्रव्य कई वार आया कई वार गया परन्तु सामायिकमें प्राप्त किये ज्ञानादि द्रव्यकों क्रोधादि चोर लूट लेगा तो फिर क्या करुगा? वास्ते भाव द्रव्य बचानाही अच्छा है भाव द्रव्य होगा तो सभी वस्तु सुलभ है" इस प्रकार विचार करके यह श्रावक फिर २ के सामयिक करने लगा उसमें वारवार नवकार मत्र पढने लगा. ओ सुनकर चोरोंभिसे ऊहापोह करते जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ इससे अनेक भवके पहिले जो धर्मानुष्ठान कियाथा और जो पढाथा वो सब ख्यालमें आया इससे उन चोरोंकों भी शुभ विचार प्रकटे अपनी भूल दृष्टिमार्गमें आई. जिससे विचारने लगे की "परधनकी इच्छा वाले अपनेकों धिक्कार है चोरी करनेसे बाह्य पौद्गल्कि द्रव्य मिलता है. परन्तु भाव धन ज्ञानादि आत्माकी सच्ची लक्ष्मी चली जाती है सो यह जीव ख्यालमें नहि रखता अहो! इन श्रावककों धन्य है जो अपनेकों देखते परभी स्व लक्ष्य छोडता नहि" इस प्रकार परगुणकी प्रशसा करते और आत्माकी लघुता भावते २ मनको स्थिर करते उन चोरोने सम्यक्त्व प्राप्त किया और चोरी विगेरेका प्रत्याख्यान किया इससे देशविरतित्व वहा ही प्राप्त भया और वैराग्यकी वृद्धि होनेसे खड्ग विगेरा दूर रख के तीव्र शुभ अध्यवसायसे सर्व विरतित्व भी प्राप्त भया बाद इसके क्रमश. शुभ भावनासे चढते २ आठवा नववा गुणठाणे

चढ़कर क्षपकश्रेणी प्राप्त करके सकल घाती कर्मको दग्ध करके, उसी स्थलमें केवल ज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त भये. सूर्यका उदय भया तब उन्होंने द्रव्यलोच किया और समीपमें रहे देवताओने मुनिवेष दीया. सो गृहण किया. तब वो गृहस्थ श्रावकको खबर होनेसे उन केवलीओंको नमन करके वारंवार उन्होंकी स्तुति करने लगा. चारों केवलज्ञान प्राप्त भये महामुनिवरोंने अन्यत्र विहार किया. क्रमशः मोक्षमें विराजमान भये जन्म जरा मरणादिक संसारके सर्व दुःखोंका नाश किया. अहो! शुभभावनाका कैसा परिणाम आया? परगुणकी प्रशंसा और स्वकृत दुष्कृत की निंदा कितना कार्य करती है? सो इस दृष्टांतसे ही हे चेतन! विचारके तुभी उसकार्य करनेकों सावध हो जा.

इति चार चोरोंकी कथा.

उपर बतलाये श्रावकके सामायिकसे चोरोंका कार्य भया अपनेभी सामायिक करनेके समय मन, वाणी और कायाकों स्वच्छंद खुले रखकर यथार्थतासे इसके स्वरूपको पहिचानते नहि. सामायिकमें रह के राज्यकथा, देशकथा, भक्तकथा, स्त्रीकथा यह चार कथाओंकों देशनिकाल करना चाहिये. शुभ भावना बढ़ानी चाहिये. बहुत सामायिक करनेपर भी अशुभ भावसे परावर्तन होता क्यों नहि. नफा नुकसानका भी खबर रखना चाहीये. वेपारमे जब घाटा (त्रोटा) होता है, पैसा टका

चला जाय तो हे चेतन! तेरे मनमें जरूर आघात होता है रातमें निंद भी नहि आती. दूसरे वर्षमें लाभ कैसे होय ऐसी योजना की जाती है. ऐसे ही एक सामयिकका शास्त्रमें कितना फल कहा है सो विचार कर ध्यानने क्रोड ओनसाठलाख पचीस हजार नवसो पचीस पल्योपम से अधिक देवगतिका आयुष्य बंधाता है पुण्यानुबंधी पुण्यकी प्राप्ति होती है, पीछेसे भी शुभ गति प्राप्त होती है इत्यादिक सामायिकका फलका प्रमादादि दोषसे नुकसान होता है. बराबर सामायिक न होनेसे जो इतना घाटा हो जाय तो इसके लिये आत्माको आघात पहुचे या नहि? और जो आघात पहुचे तो व्यापारकी तरह सामायिकमें भी नुकसान न होय? वैसेही उपयोग पूर्वक दोष रहित सामायिक करके विकथाओंको दूर करके आत्मजाग्रति करके शुभ भावनाके उपर आरूढ होना चाहीये.

शुभ भावनाको प्राप्त करनेके वास्ते इस पंचमकालमें तो जिन प्रतिमा और जिन आगम विना दूसरा कुछ इस जीवको तरनेका साधन नहि है वास्ते हे आत्मा! जिनप्रतिमा कई मूल सिद्धांतमें तीर्थंकर गणधरोंने बतलाई है. तु इसका अवलंबन कर जिनप्रतिमाको देख प्रभुका गुण तुजे बहुत याद आवेगा परमात्माके गुण याद आनेसे तुजे वैसे गुन प्राप्त करनेकी भावना जाग्रत होगी जिससे अनंतकालके अनेक कर्म भस्मीभूत होंगे सम्यक्त्व रत्नकी प्राप्ति होगी क्रमशः मोक्ष सुखभी प्राप्त

कर सकेगा. परमात्माके दर्शन करते वख्त क्या विचारना? किस प्रकारके दर्शन करना? सो प्रकार अब समझाते है.

जिन प्रतिमाके दर्शन किस प्रकार करना

परमात्माके दर्शन करनेके वास्ते शुद्ध वस्त्रादि. पहीनेके जाना. देरासरजीमें प्रवेश करते ही निसिही विगेरा दशत्रिक संभालना, पांच अभिगम संभालना, परमात्माके सामने दृष्टि रखना, इधर उधर ताकना नहि. परमात्माके सन्मुख मुख रखके चैत्यवंदन करना. इत्यादि विधि जो देववंदन भाष्यमें कही है उस प्रकार करना दर्शन करते समय परमात्माकी सन्मुख दृष्टि रखकर हृदयमें नीचे कहे वचन धारण करना.

"जिनप्रतिमाका मुखारविंद देखके हे चेतन! विचार कर यह मुख कैसा सुंदर और शांत स्वभाव है. भव्य जीवोंको आनंद देनेवाला है. जिस मुखसे कोईका अवर्णवाद मृषावाद, हिंसाकारी वचन, निंदाका वचन बोलाही नहि. उसमें रही जिह्वाने रस विषयका सेवन किया ही नहि. परन्तु यह मुख धर्मउपदेश देकर अनेक भव्यजीवों जोके संसारमें भूले भटकते है उन्होंको तारने के लिये समर्थ बने है. वास्ते इस मुखकों धन्य हैं. ऐसा मेरा मुख कब बनेगा? यह नासिकाने सुरभि गंध दुर्गंधरूप घ्राणेन्द्रियका विषयोंको सेवन किया नहि. इन चक्षुरिन्द्रियने पांचवर्णरूप विषयोंको सेवन नहि किया. कोईभी स्त्रीके उपर

उपरका काम विकारकी दृष्टिसे देखा नहि वैसेही काईकी तरफ द्वेष दृष्टिसे भी देखा नहि है. मात्र वस्तु स्वभाव और कर्मकी विचित्रता विचारके समभावमे रहे है उन नेत्रोंकों धन्य है मेरे नेत्र ऐसे कब होंगें इन कानोंने विचित्र प्रकार के राग रागिनी सुनकर उस विषयका सेवन नहि किया है परन्तु प्रिय वा अप्रिय जैसे शब्द कानमें आया जैसा समभावसे सुने है वैसे कान मेरे कब होंगे? इस शरीरने जीवहिंसा और अदत्त ग्रहण किया नहि. परन्तु शरीरसे जीवरक्षा करके ग्रामानुग्राम विहार कर के भव्यजीवोंकों ससार के दु खसे मुक्त किये है और इस शरीरसे उग्र तप जप और घोर परिसह उपसर्गोंको सहन करके आत्मिकखजाना रूप केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्त करके लोकालोकका स्वरूप एक समयमें अवलोकन करके कई जीवोंकों धर्मोपदेश करके दुर्गतिमें जाते बचाये है अर्जुनमाली जैसे घोर पापीओंकों पापसे मुक्त कर के सिद्ध सुखको प्राप्त करवाया है धन्य है यह प्रभुके शरीरकों इस प्रकार प्रभुप्रतिमाकों देखनेसे साक्षात् प्रभुके गुन याद आते है और इस प्रकार प्रभुके गुन याद आनेसे जीव पापरहित होकर आत्मश्रेय जलदी प्राप्त कर सकता है.

परमात्मा महावीरका गुण

प्रभु महावीर परमात्मा—परम योगीश्वर आजसे पचीससो वर्ष पहिले इन भारतवर्षकों अपना चरण कमलसे पवित्र कर

रहे थे. वे अहिंसाका तो पिताही थे. उनका ऐश्वर्य, परमात्मत्व, बल और प्रभुता सब परोपकार के लियेही थे परावार पराक्रम होने परभी क्षमा के सागर थे. लोकालोक के तीनो काल के भावोंकों एक समयमें देखनेवाले थे. त्रिभुवनका साम्राज्य होनेपरभी केवल निर्मोह और निराभिमान थे. दातारमें शिरो-मणी, सहिष्णुतामें असाधारण, जितेन्द्रियमें महान्, अपरा-धीओके उपर उपकार करनेवाले थे. जगत के जीवोंका कल्याण कैसे होय? सर्व जीव पापसे मुक्त कैसे होय? अविनाशि सुख प्राप्त करनेके लिये तत्व रसिक कैसे बने? इस वास्ते इन्होंको अहर्निश लक्ष्य बिंदु था. धीरतामें वीरतामें तीन लोकमें समर्थ थे. उन्होंका चारित्र्य अलौकिक था. संयमबल-आत्मबल अवर्ण-नीय था. जिसके प्रभावसे करोडो देवतायों उनकी सेवामें हाजर रह कर उनका चरणमें लोटते थे. उनके प्रभावसे परस्पर वैर-भाव वाले जीव भी परस्पर वैरभाव भूल कर मित्र भावसे वरतते थे. जीव मात्रकों त्रास देनेवाली जड़ वस्तुओं भी अपने स्वभाव भूल जाती थी. सुवर्ण, चांदी और रत्नादिकसे रचित समवसरणमें बैठकर देशना देनेपरभी, और सुवर्ण के कमल के उपर चलने वाले होनेपरभी निःस्पृह और निर्मोह थे. ऐसे परोपकारी प्रभु के लक्षांशमेंभी समानता करनेवाली कोई एकभी व्यक्ति अब तक पैदा भई नहि और भविष्यमेंभी यह कलीकाल-रूप पांचवे आरेमें पैदा होगी नहि. ऐसा अत्यंत चमत्कारिक

तथा अतिशयोंसे अलकृत अद्भूत जीवन और जगत् के जीवोंका पापोंको भस्म करनेमें समर्थ महान् पुण्यका पुज परमात्मा महावीर देवने अपने पीछले मनुष्य भवमें असाधारण पवित्र जीवन विता के महा दुष्कर तपस्या करके वडी पवित्रता प्राप्त कियाथा, परमात्मा महावीर देव अपने पचीसमें भवमें नदन ऋपि भये उस समय सयम ग्रहण करके यावज्जीव ग्यारह लाख अस्सी हजार छसौ पैतालीस मासखमण करके तीर्थंकर नाम कर्म निकाचित करके, छव्वीसवा भवमें दशवा देवलोकका सुखका अनुभव करके सत्ताईसवे भवमें परमात्मपद प्राप्त करके अमृतसेभी मधुर धर्म देशना देकर जगत् के जीवोंको दुर्गतिमें पडते बचाये थे

हे परमात्मा! हे वीर! ऐसा आपका अद्भूत चारित्य कौन जीवको मुग्ध न बनावे? अच्छि तौरसे विचार करनेसे मालुम पडते है के हे परमात्मा! हमने आपको नजरसे देखे नहि इतना ही नहि परन्तु जगतमें ईश्वर के जरीये पूजाते अन्य कोई देवोंकोभी मत्यक्ष नहि देखे है अथवा आप हमारे बधु है और अन्य देव हमारे शत्रु है ऐसा भी नहि हम लोग आपके पवित्र शासनमें पैदा भये है इस वास्ते आपका वचनाका पक्षपात करना ऐसा भी हमको लेशमात्रभी मोह नहि हम आपका और अन्यदेवोंका चरित्रोंको तपास करते है और हृदयमें उतारते है

और अंतः प्रविष्ट हो कर विचार करते है तव आपकाही चरित्र परस्पर विरोधरहित और ईश्वरत्वके गुनोंकी प्रतीति करानेवाला मालुम होता है. क्योंकी सर्वज्ञपना-रागद्वेषरहितपना त्रैलोक्य पूज्यता और यथार्थ उपदेशकपना आदि पवित्र गुन जिनमें होय वही देव सर्व पूज्य पुरुषोमें शिरोमणी कहा जाय. और ऐसे सर्व गुन हे वीरप्रभु! आपमें विद्यमान होनेसे हम आपके उपर मुग्ध हुये है और आपका पवित्र शासनका आश्रय कर रहे है. हमारी नस २में और रोम २में यही पवित्र भावनाका धोध वह रहा है. की जिसके प्रभावसे चक्रवर्तिकी ऋद्धि तो क्या परन्तु त्रिभुवनका साम्राज्य भी आपका शासन के अभावमें आपकी आज्ञाका खंडनसें प्राप्त होता हो तौभी दूर फैंक देनेकों तयार है. भलेही दरिद्र रहें घर २ भीख मांगके उदर पूरणा करना पड़े परन्तु आपकी आज्ञाका वहु मान पूर्वक पालन होता होय तो वे एकवार नहि करोड़वार हमे कवुल है. महान् शासन रक्षकों श्रीमान्हरिभद्रसुरी श्रीमान्हेमचंद्राचार्य जैसे प्रखर विद्वानो आपका पवित्र शासनकों प्राप्त करनेमें अपना अहोभाग्य समझते थे. हे परमात्मा! हे परमयोगीश्वर! ज्यादा क्या कहें आपका लोकोन्तर अतिशयोंसे भरपूर जीवनकों सुनकर उसकों समजपूर्वक श्रद्धानमें रखकर हम उसके आनंदमें लीन वन गये है. हे तरण तारण! हे प्रभो! एकवार आपके भक्तोंकी तरह मिष्ट दृष्टिसे देखो, हमारे अपराधोंकी माफी देओ और हमारे हृदय-

रूप शुद्ध सिंहासन के उपर अरूढ हो जाओ हे परमात्मा! आपके जैसे पवित्र सयम राग, आपके जैसा योगबल और आपके जैसा समभाव हमारेमें प्राप्त कराओ. हम जब तक इस ससारमें है तब तक आपका चरणकमलकी सेवा भवोभवमें मागते है उसी सेवनसे हम अपने आत्माको उच्च कोटी प्राप्त करानेमें भाग्यशाली होंगे. सरोवर के पास गये परभी तृषा न शान्त हो, लक्ष्मीवान् के पास जानेपरभी दरिद्रता न मिटे तो सरोवर और लक्ष्मीवान्की शोभाही क्या है? आपके जैसे त्रिभुवन नायक शिरछत्र होनेपरभी हम कगाल रहे और आप अनत सुखके भोक्ता और परमयोगीश्वर हो उसमें आपकी शोभा क्या है? हम तो पगु हो कर मेरु पर्वत के उपर चडनेकी इच्छा और निर्भागी होकर राज्य प्राप्ति करनेका हमारा लोभ और विना योग्यतासे दुष्प्राप्त वस्तु मागनेकी बेशरम याचनासे भलेही हास्यास्पद गिने जाय परतु मेघ जैसे वृष्टि करता भला उच्च नीच स्थान देखता नहि परोपकारी पात्रापात्रकी दरकार करते नहि, तो फिर आपके जैसा त्रिभुवननायक दाता शिरोमणि मिलनेपरभी हम असतुष्ट रहें यह कैसे बन सकता? कदापि न बने, हम विना लिये छोडेंगे नहि अब या पीछे आपके विना यह तीनो लोकमें हमारा दारिद्र्य दूर करने वाला कोई नहि है इस वास्ते हे परमात्मा! एकवार तो इस सेवककी तरह दृष्टि कर के ससार समुद्रसे शीघ्र पार उतारो आपकी

मुद्रा देखतेही हजारों लाखों जीवों अनंत भवका निस्तार प्राप्त करनेकों भाग्यशाली भये है आपकी प्रतिमाभी जगतका दारिद्र्यकों दूर करनेवाली है. पापका समूहकों भस्मीभूत करनेवाली है.इसीसे सुविहित पुरुषोंसे आद(द्रि)त है औरभी स्तुति द्वारा कर्म क्षय करके आत्मकल्याण कर गये है. वह प्रभु स्तुतिका श्लोक इस प्रकारे :—

ऐंद्रश्रेणिनता प्रतापभवनं भव्यांगिनेंत्रामृतं ।
सिद्धांतोपनिषद्विचारचतुरैः प्रीत्या प्रमाणिकृता ॥
मूर्तिः स्फुर्तिमती सदा विजयते जैनेश्वरी विस्फुरन्
मोहोन्माद घनप्रमादमदिरामत्तैरनालोकिता ॥१॥

जिनेश्वरकी प्रतिमा सदा जयवंती वर्तती है. यह प्रतिमा कैसी है! इन्द्रका वर्गसे नमन की हुई तथा प्रतापका घर और भव्य प्राणीओंका नेत्रकों अमृत समान तथा सिद्धान्तका रहस्यकों जाननेवाली, विचक्षणोने प्रेमपूर्वक प्रमाणभूत जानी हुई औरभी प्रभावशालिनी ऐसी परमात्माकी मूर्तिकों महामोहका उन्मादसे प्रमादरूप मदिरासे मदोन्मत्त भये जीवों देख नहि सकते.

धन्या दृष्टिरियं यया विमलया दृष्टो भवान् प्रत्यहं ।
धन्याऽसौ रसना यया स्तुतिपथं नीतो जगद्वत्सलः ॥
धन्यं कर्णयुगं वचोमृतरसो पीतो मुदा येन ते ।
धन्यं हृत् सततं च येन विशदस्त्वन्नाममन्त्रो धृतः॥२॥

उस दृष्टिका धन्य है की जो निर्मल दृष्टिसे हमेशा आपका दर्शन कीया. उस जिह्वाकों धन्य है की जिसने जगद्वत्सल हे परमात्मा! आपका स्तवन किया उस कर्णको धन्य है की जिसने आपका वचनामृतका रस आनदसे पिया और उस हृदयकोंभी धन्य है की जिसने आपका नामरूप निर्मलमत्रकों सदा हृदयमें धारण किया २

किं पीयूषमयी कृपारसमयी कर्पूरपारीमयी ।
किं वा नन्दमयी महोदयमयी सद्ध्यानलीलामयी ॥
तत्त्वज्ञानमयी सुदर्शनमयी निस्तन्द्रचन्द्रप्रभा-
स्फारस्फारमयी पुनातु सतत मूर्तिस्त्वदीया सताम्॥३॥

हे प्रभु! आपकी मूर्ति क्या अमृतमय है? अथवा कृपारसमय है? अथवा कर्पूरमय है? अथवा क्या अनदमय है महोदयमय है? अथवा ध्यानकी लीलामय है? क्या तत्वज्ञानमय है? सुदर्शनमय है? अथवा उज्वल चन्द्रप्रभाका उद्योतरूप है? ऐसे प्रकारकी आपकी मूर्ति सज्जनोंका सदा पवित्र करो ३

श्रीमद्गुर्जरदेशभूषणमणिं सर्वज्ञताधारकम् ।
मिथ्याज्ञानतमःपलायनविधावुद्यत्प्रभं तायिनम् ॥
पार्श्वस्थायुकपार्श्वयक्षपतिना ससेव्यपार्श्वद्वयम् ।
श्री शखेश्वरपार्श्वनाथमहमाऽऽनन्देन वन्दे सदा ॥४॥

भावकों प्राप्त कीया ऐसा मुझे तारनेमें अभी तक क्यो विलंब कर रहा हो !

आपन्नशरणे दीने, करुणामृतसागर ।
न युक्तमीदृशं कर्तुं, जने नाथ भवादृशाम् ॥९॥

हे करुणा रुप अमृतके समुद्र ! हे नाथ आपका शरणकों प्राप्त भया हुआ और दीन ऐसा जनमें आपके समान त्रिभुवनके नाथकों इस प्रकार करना उचित नहि. अर्थात् अब मुझे भव-समुद्रसे तारनेमें विलंब करना ठीक नहि.

भीमेऽहं भवकांतारे, मृगशावकसन्निभः ।
विमुक्तो भवता नाथ, किमेकाकी दयालुना ॥

भयंकर भवाटवीमें मृग शिशुकी तरह भटकते एसे मुझ अकेलेकों आप समान दयालु हे नाथ! मुझे क्यों छोड दिया अर्थात् अब मुझे आपकी पास रखीये

इतश्चेतश्च निक्षिप्ता—चक्षुस्तरलतारकः ।
निरालंबो भयेनैव विनश्येऽहं त्वया विना ॥११॥

हे नाथ ! आपके विना भयसे इधर उधर डालेजो चक्षु उससे चंचल भई है तारा जिसकी ऐसा औरभी आलंबन

रहित म नष्ठ भया अर्थात् अनेक जन्म मरण प्राप्त करके यहुत दु.खी भया हु ११

> अननवीर्यसभार-जगदालम्बदायक ।
> विधेहि निर्भय नाथ, मामुत्तार्य भवाटवीम्॥१२॥

हे अनत वीर्यके समूहवाले! ओ जगतके जीवोंको आलवन देने वाले! मुझ इस भवाटवीमेंसे पार उतारके हे नाथ! भयरहित करो॥ ९२ ॥

> न भास्करादृते नाथ, कमलाकरबोधनम् ।
> यथातथा जगन्नेत्र, त्वदृते नास्ति निर्वृति ॥१३॥

हे नाथ! हे जगत् के जीवों के नेत्र समान! हे परमात्मा! जैसे सूर्य विना कमलका समूह विकस्वर हो नहि सकता वैसेही आपके विना मेरा आत्मा विकस्वर न होनेसे मुझे निर्वृत्तिका अभावही रहना है १३

> किमेष कर्मणा दोषः, किं ममैव दुरात्मन ।
> किंवाऽस्य हतकालस्य, किं वा मे नास्ति भव्यता॥१४॥

हेपरमात्मा! क्या यह तो मेरे कर्मोंका दोष है? अथवा क्या यह दुष्ट मेरा आत्माका दोष है! की यह तुच्छ हत्यारा ऐसा कालका दोष है? अथवा मेरी भवितव्यताका ही पाक नहि भया है? कि अबतक इस ससारमेंसे मेरा पार क्या नहि आता? १४

संसारमारवपथे पतितेन नाथ।
सीमंतीनीमरुमरीचिविमोहितेन ॥
दृष्टः कृपानिधिमयस्त्वमथो कुरुष्व।
तृष्णापनोदवशतो जिन निर्वृतिं मे ॥ १८.

हे नाथ! ससाररूपी मारवाड़ के मार्गमें भूला हुआ और स्त्रीरूप मृगजलसे मोहित भया ऐसा मैंने हे कृपा के सागर! आपका दर्शन किया अब मेरी तृष्णाकों दूर करके मुझे शान्ति होय ऐसा कीजिये.

भूपीभूय समन्वशात् समुचितां यो लोकनीतिं युगा
रंभे यः प्रथमं च साधुचरितं श्रेष्ठं समाराधयत् ॥
भुत्वा तीर्थपतिश्च मोक्षपदवीविद्योतनं यो व्यधात्।
विश्वेशः परमेश्वरो विजयते श्रीआदिनाथः स कः॥

जिन्होने युगके आरंभमें राजा बनके समुचित लोकनीतिका शिक्षण दिया है. जिन्होने सबसे पहिला साधुचारित्रका श्रेष्ठ मार्गका आराधन किया है. और जिन्होने तीर्थंकर होकर सबसे प्रथम मोक्ष मार्गका प्रकाशन किया है ऐसे विश्वेश्वर भगवान् आदिनाथ जयवंत है? १६

यो वीक्ष्य दुःखिभुवनं करुणार्द्रचित्ती—
भूतो यथार्थसुखमार्गविबोधनाय ॥

तीव्र तपश्चरितवान अभवश्च पूर्ण
श्रेय श्रिय दिशतु स प्रभुवर्धमानः ॥१७॥

दुःखी जगत्कों देख के करुणार्द्र हृदय बन के जिन्होने सच्चा सुखका मार्ग दिखाने के वास्ते तीव्र तपश्चर्या करके पूर्णता प्राप्तकी ऐसे प्रभु वर्धमान स्वामी आपकों कल्याण लक्ष्मी दिजो

अनतदु खाबुधिपातकाना
रागादिदोषद्विषता शमाय ॥
न य विनाऽऽलबनमस्ति किंचित्
स वीतराग शरण प्रपद्य ॥ १८ ॥

अनत दुःख सागरमें डालने वाले रागद्वेषादि दुश्मनोंको शान्त करनेके लिये जिसके विना और दूसरा कोई आलबन लेने योग्य नहि है इस वास्ते उसी वीतराग देवकों शरण जाना चाहिये १८

इस प्रकार प्रभु प्रतिमाके समीप रह के भावनापूर्वक स्तुति करनेसे परमात्मा अपनेकों याद आता है जिससे जीवोमें कोई अपूर्व जागृति होती है पच्चीससौ वर्ष पहिले भये महावीर प्रभु अबी भव्य जीवके हृदयमें अपनी मूर्तिद्वारा अवलोकन करनेवालेको साक्षात् होते है

जीवो जिनप्रतिमाका आलबनसे शीघ्र ससार समुद्र तर

सकते है तो फीर साक्षात महावीरप्रभु थे उस समयका क्या कहना?

इस प्रकार उच्च कोटीके गुणोंसे भरपूर परमात्मा महावीरदेवका चरण कमलका आराधन करके उन्होंकी आज्ञा शिरपर वहन करके उस समयमें यह भरतक्षेत्र के अनेक जीव अपना कल्याण करते थे. और आधुनिक समयमेंभी महाविदेह क्षेत्रमें विहरते विहरमाण तीर्थंकरोंकी देशना श्रवण करके अनेक भव्यजीवों अपना आत्माका कल्याण कर रहे है. आज अपने इस भरतक्षेत्रमें साक्षात् प्रभुके अभावमें उन्होंका नाम श्रवणसे और उपर कहे उन्होंका स्थापनानिक्षेपासे तेजोमय अरु शांत मूर्तिसे हजारो वल्की लाखोंजीव अपना कल्याण कर रहे है. तो हे चेतन! तुभी जिनप्रतिमाका दर्शन करके, परमात्माका गुनोंकों याद करके तेरेमें अच्छे गुनोंकी छाप पाड़ जिनप्रतिमा जिनवर समान ही जान. जिनप्रतिमामें लेशमात्रभी शंका मत कर. जिनप्रतिमा वहुत सूत्रोमें परमात्मा महावीर देवनेही कही है. उस जिनप्रतिमाका वहुत सिद्धांतोमें अधिकार विद्यमान होनेपरभी कई एक अज्ञानी कमवुद्धि जीव सूत्रोंका सच्चा अर्थकों न समझ के विपरीत अर्थ करके जिनप्रतिमाकों न मानते भूले पडे भटकते है. इसके वारेमें

एक गूर्जर कविका कथन है की—

दुहाः—लुटे धन ओर धर्मको मनके महा मलीन,

लिखे वके झुठ सदा जाणे चतुर प्रवीण -१

सहज वस्तुको निंदता वधे पातक घोर,
जिनमूर्तिको निंदना हुवे ससार अघोर -२

दया मूढके योगसे मत निंदो जिनराज,
मूरति भव समुद्रसें पार उतारण जहाज -३

निइ आकृति जिस वस्तुकि वामेताका हे बोध,
सो स्थापन निक्षपका करो सिद्धातसे सोध.-४

शिष्य प्रश्न -साहीब, अपने कहा सो सच्चा हे मगर ए बेठे हुवे श्रावक आपने कहा उससे उल्टे वाता कर रहे है तव उसकु कुछ समजाइए तव गुरुमहाराजने कहा की क्या भाई तुमेरा क्या कहना है.

ढुढक श्रावक -हम लोक सच्चे सम्यक्त्ववाले है उससे जड मुर्तिको नहि मानते क्योंकी मूर्ति पूजा नतो युक्तिसे सिद्ध होती है ओर नाहि हमेरे सूत्रामें तीर्थंकर महाराजका मूर्ति पूजाका विपर्य कथन है

गुरु.-प्रथम में आपको युक्तिसे मूर्ति सिद्ध कर के वतलाता हू इस ससारमें जितने मतानुयायी व्यक्ति है वे सब कहते है की इश्वर परमात्माको ध्यान इस असार ससारका पार करनेवाले है जो इश्वर परमात्माकी साकारकी योजना किया

हो तव हम तुमकुं पुच्छते है की तुम लोक खंडके बने हुवे हस्ती अश्व बेल-गौवा आदि खिलौना (खावानुं) तुम लोक खाते हो के नहि खाते हो.

ढुंढकः-साहीब माफ कीजीए हम साफ साफ कहते है की वो खीलौना हमलोक नहि खाते क्युंकी जीन्हा जीवोकी सदृश आकृती वाले खिलौना खानेमें हम लोक पाप मानता है. मगर जबसे मूर्ति पूजा नहि मानना इस प्रकरणकी विपदा हमेरी ग्रीवामें चीमडने लगी उस समयसे हम लोककुं यही कहना पडता है कि हां हमलोक खा लेते है.

गुरुवरः-वाहजी वाह! ठीक मनुष्यो के भयसे अपने आपना कर्तव्य छोड दीया. जब मोक्षका अद्वितीय साधन कारणरूप मूर्तिको जड मानकर छोडते हो तब तुमेरी साथ चर्चा भी कैसी. मगर तुमेरी पर हम लोकोकुं दया आती है. उसीके खातर ओर एक प्रश्न पुछता हुं के आपलोग नोकार-वाली तो गीनते होंगे.

ढुंढकः-जीहां.

गुरुवरः-वो मालाका कितने मणका होते है.

ढुंढकः-एकसो आठ

गुरुवर –न्युनाधिक क्यों नहि होते एकसो आठ सख्या क्यों नियत हे

दुढक –पच परमेष्ठीका १०८ गुण होते है इस लीए मणके भी १०८ रख्खे गये है

गुरुः–अच्छा आप कुछ इसमें समजे !

ढुढक.–नहिजी

गुरु –तुम तनक ध्यानसे सूनीए में आपकु समजाता हु पच परमेष्टीका गुण १०८ होनेसे मालाका मणका भी १०८ होनेसे मालाका मणका १०८ बना कर उनमे उन महात्माका गुणोंकी स्थापना (मूर्ति) क्यो नहिं मानी जायगी जरुर माननी पडेगी.

ढुढक.–यह बाततो ठीक है भला कोइ ओरभी युक्ति है'

गुरु –लो, ध्यान दीजीए तुम यह कहे की तुम लोगो के गुरु ओर गुरुणी के चित्र होते है? वा नहि?

ढुढकः–हा साहीब उनके तो सेंकडो ही चित्र मिल शकते है परतु हम लोक उनके केवल दर्शनही करते है फलफुलादिक चढाकर कचा पानीसे स्नान कराकर हिंसा नहि करते

गुरुः-अच्छाजी. यदि तुम लोक हिंसा नहि करने तो तुमेरा गुरु करते (कराते) होंगे.

ढुंढकः-वह कैसे?

गुरुः-जिस समय चित्र लिया जाता है. तब तुम लोक क्या नहि जानते कि कच्चे पानीसे वे चित्र धोना पडता है जिससे असंख्य जीवोका नाश होता है. आपका गुरु जान बुझ कर चित्र खिंचवाते है तो वे स्वयं जानकर क्यु हिंसा करवाते है? इस लीए आपके गुरु हिंसासे अलग नहि हो शकते है, ओर हिंसा समजकर इश्वर परमात्माकी मूर्तिकी पुजासे हट जाना वो तुम लोकोकी वडी भारी मूर्खता है. ओर चित्र खिच-वानेसे, मूर्तिकास्वीकार करना प्रत्यक्ष प्रतीत होता है. वडे शोककी वात है की आप लोक इश्वर परमात्माकी मूर्तियां नहि बनवाते ओर नाहि उसके सन्मुख अपना मस्तक नमाते हो किन्तु गुरुजीकी वे चित्ररूप मूर्तिके सन्मुख अपना शीर झुकाते हो. इन वातोंसे आपके गुरुओमेंभी अभिमान पाया जाता है. जोकी अपने चित्र खिंचवा कर "उनके सन्मुख जब आप लोक शिर झुकाते है" तब आपको मना नहि करते ओर मूर्ति पुजा नहि वतलाते, किन्तु मूर्ति पूजा करनेवालाकुं आडे तेडे सामना लाकर उलटपालट समजाकर मूर्ति पूजा तो दुर रही मगर मूर्तिका दर्शन करने भी चुकाते है तो क्या इश्वर के साथ ही

सकता है? और क्या वे तुमेरा गुरुओ तीर्थंकर महाराज जो कि जगद्गुरु कहलाते हे उनसे भी बडे है? यदि तुम लोक पक्षपात छोडकर ध्यान देंगे तो मूर्ति पूजासे कदाचित् भी दुर नहि हो शक्ते भला एक बात में आपसें और पुछता हु की जीस स्थानमें स्त्री की मूर्ति व चित्र हो वहापर साधु अगर ब्रह्मचारी रहे या न रहे?

दुढक.—कदाचित् भी वहा न रहे क्योंकी सूत्रोंमे लिखा है कि जीस स्थान पर स्त्रीकी मूर्ति व चित्र हो वहापर साधु न ठहरे इस बातकु हम लोग भी मानते है

गुरु.—जब आप तनक ध्यानतो दीजीजे की सूत्रोंम निषेध क्यो लिखा है " विना प्रयोजन मन्दोऽपि न प्रवर्तते " अर्थात् मूर्ख भी विना प्रयोजन कोइ काम नहि करता तो फिर सूत्रोंमे तो सर्वज्ञोका ज्ञान है क्यों निषेध किया है!

दुढक—सूत्रोंमे इस लिये निषेध किया है की वारवार स्त्रीकी मूर्ति व चित्रकु देखनेसे बुरे भाव उत्पन्न होते है

गुरु—तो फीर क्या वीतराग परमात्माकी मूर्ति देखनेसे शुद्ध भाव नहि उत्पन्न क्यों नहि होंगे? अवश्य ही शुद्ध भाव उत्पन्न होंगे इस लीए सूत्रोंम नीषेध किया है की जीस दीवार पर स्त्रीकी मूर्तिरुप चित्र हो उनकु साधु वा ब्रह्मचारी न देखे

जैसे सुर्य को देखकर अपनी दृष्टि पीछे हटालीजाती है इस प्रकार ही मुनि अपनी दृष्टि पीछे खेंच ले. क्योंकी दीवाल पर स्त्रीकी मुर्ति को देखकर साक्षात् उस उस स्त्रीका स्मरण होता है कि जीसकी वह मूर्ति है. अब जरा ध्यानसे देखो के जब तुच्छ स्त्रीकी मुर्तिको देख कर साक्षात् स्त्रीका भान होता है तो क्या तीर्थंकरभगवानकी मुर्तिको देखकर उनका स्मरण नहि आएगा? अवश्य ही स्मरण आएगा ओर तुम लोक अपने गुरु-ओंके चित्रोंका सन्मान तो करते है. यदि उनका चित्रोका कोइ अपमान करे तो उसकु बहुत ही अयोग्य मानते है. तो फिर क्या परमात्माकी ही मुर्ति से द्वेष है? यदि तुम यह कहेंगे कि हम अपने गुरुकी मुर्तिका सन्मान नहि करते है तो आपका यह कथन भी मिथ्या है. क्योंकी यह बात तो हम उस समय माने, कि जब आपके गुरुकी मूर्ति किसी एसे स्थानपर गीरी पडी हो, जोकि अपवित्रस्थानपर हो ओर आप न उठाए फिर तो हमभी माने कि निस्सन्देह, आप लोक सन्मान नहि करते. तुम लोक तो विरुद्ध उसको सीसेमे जडाकर अपने नीवास स्थानमें अपने शीरके उपर लटकाता है. जेसे सती पार्वतीजी आदि आर्याकी ओर उदयचन्दजी सोहनलालजी आदि कैइक साधुकी अपने गुरुओं के चित्र क्युं बनवाते हो? क्योंकी तुमेरी धार्मीक युक्तिसे मुर्तिको सन्मान करना ओर शीर झुकाना विरुद्ध है. क्योंकि वह गुरुका चित्रभी तो स्याही और पत्रके

विना और कोइ वस्तु नहिं है. जैसे आप तीर्थंकर महाराजकी मुर्तिओंको जड कहतें है इस प्रकार वेभी तो जड है? इस लीये आपके गुरुओंको भी योग्य नहि कि वे चित्र खिंचवाए क्योंकी चित्र बनानेमें असरय जीवोका नाश होता है. आप लोग मूर्तिसें कुच्छ लाभ नहि समझते होतो फिर आपके गुरु हिंसा समझकर रात्रीको जल तक भी नहि रखते. परन्तु चित्रकार के मसालेसे असख्य जीवोकी हिंसा के पाप के भागी होते है सो यह बात विचारास्पद है औरभी अनेक युक्तिओ है कि मूर्तिपूजा सिद्ध होती है. तब हठको छोडकर सन्मार्गमें आजाइए

ढुढक'–हा साहीब, युक्तिसे तो निस्सन्देह मूर्तिको मानना पुजना सिद्ध हो गया मगर सूत्र पाठके विना हम नहि मान शकते,

गुरु –यदि सूत्रोंसे मूर्तिपूजा सिद्ध हो जाए तो आप मानजायेंगे

ढुढक –हा. साहीब. अवश्य मानना पडेगा

गुरु –लो तनक ध्यान दीजीए आवश्य सूत्रका निर्युक्तिमें लिखा है की भरत चक्रवर्तीने अष्टापद पर्वत पर जिनमदीर बनवाए ओर चौवीस तीर्थंकरकी मूर्ति विराजमान की

ढुढकः–हा साहीब जरा ध्यान दीजीए की हमलोग– निर्युक्ति–भाष्य–चूर्णी–टीका इत्यादि नहि मानते हमलोग ता सूत्रका मूलपाठ ही स्वीकार है

गुरुः-तुम लोक गभराते क्यों हो. लो सुन लीजीए. श्री भगवतीसूत्रमें साफ साफ लीखा है की निर्युक्ति को मानना चाहिए. जो नहि मानता वह सूत्रके अर्थका शत्रु है. यदि इस बातमें सन्देह हो तो श्री भगवतीसूत्रका पाठ सुन लो पाठ यह है.

"निज्जुति मन्तव्या सुत्तत्थो खलु पढमो बीओ निज्जुत्ति मिस्सओ भणीओ तइओय निर्विसेसो एस विही होइ अणुओगो ॥

इस पाठमें साफ लीखा है की प्रथम सूत्रार्थका कथन करना. फिर निर्युक्ति के साथ द्वितीयवार अर्थ करना ओर तीसरीवार निर्विशेप अर्थात् पुरा अर्थ करना. जब ख्याल करना चाहीये कि इस पाठसे निर्युक्ति मानना साफ प्रतीत होता है.

ढुंढकः-भरत महाराजने धर्म जानकर नहि मंदीर वीगेरे बनवाया है मगर आपके मोहसे मंदीर और मूर्तिया बनवाइ.

गुरुः-आपका यह कथन मिथ्या है. क्योंकी भरत महाराजजीने श्री रुषभदेवजीकी नहि प्रत्युत तेइस तीर्थंकर महाराजकी औरवि मूर्तियां बनवाइथी और तुम लोगोंने तो निर्युक्ति-भाष्य-चूर्णी आर टीका यह जो पांच अंग है उनमेंसे केवल एक सूत्रको ही माना शेष छोड दीया. इस कारणसेही आप जैनश्वेतांबर धर्मके अनुयायी नही है. यथा वैदिक धर्ममें स्वामी

दयानदजीने वेद के मुल पाठको माना टीका और भाष्य को नहि माना और नया मत प्रकाशीत कीया और मुसलमान मतमें जिन्होने कुरानकु माना और हदीसको न मान। वह राफिज मत कहलाया वैसे ही आप लोगोंने भी ठीक वातको न मनाकर उल्टी वातको माना और ढुढिए कहलाए सूत्रका पाठ तो एक नहि मगर अनेक है लो सुनीये जीनप्रतिमाका अधिकार—

श्री ज्ञाता सूत्रमें द्रौपदीने जिनमदिरमें जाके जिनप्रतिमाकी पूजा करके 'नमुत्थुण' कहा है जिसका इस प्रकार प्रत्यक्ष पाठ है.

तेण्ण सा दोवइरायवरकन्ना जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ मज्जणघर अणुपवेसइ नाया कयनलिकम्मा कयकोउअमगलपायच्छित्ता सुद्धपावेसाइ वत्थाइ परिहियाहि मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ जेणे व जिणघरे तेणेव उवागच्छइ जिणघर अणुपविसइ अणुपविसायित्ता आलोए जिणपडिमाण पणाम करेइ लोमहत्थय परामुसइ एव जहा सुरियाभो, जिणपडिमाउ अचेइ तहेव भाणियन्व। जाव धुव डहइ धुव डहयित्ता वाम जाणु अचेइ अचेइत्ता डाहिजाणु धरणितलसि निहट्टु तिखुत्तो मुद्धाण धरणितलसि निवेसइ निवेसइत्ता ईसि पच्चुणमइ करयल जाव कट्टु एव

वयासी नमुत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जावसंपत्ताणं वंदइ नमंसइ जिणघराओ पडिनिखमइ.

अर्थः—तब वह द्रौपदी राजकन्या जहां स्नान मज्जन करनेका घर है वहां आवें, मज्जन घरमें जाय, स्नान करके किया है बलिकर्म याने पूजाका कार्य जिसने अर्थात् घर देरासरमें पूजा करके कौतुक याने तिलकादि, मंगल—दधिअक्षतादि और प्रायश्चित्त—याने दुःस्वप्नादिका घात किया है जिसने ऐसी शुद्ध उज्वल जिनमंदिरके योग्य स्वच्छ वस्त्र पहिनके स्नानघरमेंसे निकले, जहां जिनघर है वहां आवे, जिनघरमें जाय, जिनप्रतिमाकों देखतेही प्रणाम करे, तब पिछे मोरपिच्छ ग्रहण करें, ग्रहण करके जिस प्रकार सूर्याभ देवताने रायपसेणी सूत्रमें जिनप्रतिमाकों पूजनका अधिकार है वैसेही सब विधि जानना. इस सूर्याभका अधिकार जबतक धूप करे तबतकका सब अधिकार जानना पीछे नमुत्थुणं इत्यादि जानो. इससे स्पष्ट होता है की द्रौपदीने जिनप्रतिमा पूजी है. रायपसेणी सूत्रमें सूर्याभदेवतासे जिनप्रतिमा पूजनेका अधिकार है. और द्रौपदीने नमुत्थुणं कहा है. जिनप्रतिमाके आगे स्वस्तिक किया है. इस वास्ते उसकों श्रावका जानना. श्राविका विना दूसरी स्त्री यह विधि कैसे जाने? इस वास्ते निश्चय होता है की समक्ति दृष्टि द्रौपदीने जिनप्रतिमा पूजी है. और नंदी सूत्रमें महाकल्प सूत्रका नाम है.

उसमें लिखा है की'—जो मुनि और पौषध वाले श्रावक जिनप्रतिमाका दर्शन न करे तो प्रत्यश्चित लगें ' यह पाठ .—

से भवय तहारूव समण वा माहण वा चेइअघरे गच्छेज्जा? हता गोयमा! दिणे दिणे गच्छेज्जा से भयव जत्थ दिणे णो गच्छेज्जा तओ किं पायच्छित्त हवेज्जा? गोयमा पमाय पडुच तहारूव समण वा माहण वा जा जिणघर न गच्छेज्जा तओ छट्ठ अहवा दुवालसम पायच्छित हवेज्जा से भयव समणोवासगस्स पोसहशालाए पोसहिए पोसहयभयारी किं जिणहर गच्छेजा? हता गोयमा! गच्छेज्जा. से भयव केणट्ठेण गच्छेज्जा? गोयमा! नाणदसणचरणट्ठयाए गच्छेज्जा, जे केइ पोसहसालाए पोसहवभयारी जओ जिणहरे न गच्छेज्जा तओ पायच्छित्त हवेज्जा! गोयमा! जहा साहु तहा भाणियव छट्ठ अहवा दुवालसम पायच्छित्त हवेज्जा ॥

अर्थ-'हे भगवन्! कोई जीवकों दु खी न करनेवाले साधु जिनमदिरमें जाय या नहि?' 'हे गौतम हमेशा प्रतिदिन जाय ' 'हे भगवन्! जो रोज न जाय तो मुनिको प्रायश्चित्त लगे या नहि?' हे गौतम! जो प्रमादका अवलबन करके और इस प्रकारके साधु जिनमदिरमें प्रतिदिन न जाय तो उस साधुकों छट्ठ या दो उपवास अथवा पाच उपवासका प्रायश्चित्त लगे वगेरे सब कुच्छ उपरसे देख लेना.

हे सज्जनो! विचार करो. उपर कहे पाठमें खुद भगवानने ही प्रतिदिन प्रतिमाका दर्शन करनेकी आज्ञा फरमाई है जो जीव जिनमूर्तिका दर्शन नहि करते वे जीव परमात्माकी आज्ञाके विरोधी बनते है. यहता स्पष्ट समझमें आता है. क्योंकी नन्दी सूत्रमें महा कल्पसूत्रका नाम है. सो नंदीसूत्र जिनप्रतिमाकों नहि माननेवाले भी मानते है. वास्ते नन्दीसूत्रमें कहा महाकल्प सूत्र भी प्रमाणभूत होनेसे जिनप्रतिमाभी प्रमाणभूत हो चुकी.

और जिनप्रतिमाका दर्शन न करे तो साधुकों जितना प्रायश्चित्त कहा उतना प्रायश्चित्त पोपहमें रहा श्रावकभी प्रमाद वश होके दर्शन करनेकों न जाय तो उस श्रावककोंभी लगे. वास्ते जिनप्रतिमाका दर्शन अवश्य निरंतर करना. और नंदी-सूत्रमें महानिशीथ सूत्रका नाम है. नंदीसूत्र ३२ सूत्रमें है. उसमें कहा महानिशीथ सूत्रमें कहा है की 'जिनमंदिर करानेवाला समक्तिदृष्टि जीव बारहवा देवलोकमें जाय' इस सूत्रका प्रमा-णसेभी जीनप्रतिमाकी सिद्धि हो गई.

उपर कहे है इसके सिवायभी दूसरे कई सूत्रोंमें जिनप्र-तिमाका अधिकार है. यह पुस्तक बड़ा होनेके कारणसे वे पाठ इधर न लीखकर उन २ सूत्रोंका नाम मात्र बताते है.

१ जीवाभिगमसूत्रमें विजयदेवने जिनप्रतिमा पूजी है यह अधिकार है.

२ भगवती सूत्रका वीसवा शतकमें जघा चारणने जिन-प्रतिमाका वदन करनेका अधिकार है

३ उपासकदशाग सूत्रमें कहा है की आणद श्रावकने नियम कियाकी जिनवर और जिनविंव विना दूसरे कोईको वदन न करु और पूजु नहि ईसी प्रकार दूसरे नव श्रावकके लिये जानो

४ कल्पसूत्रमें, सिद्धर्थ राजाने जिनप्रतिमा पूजनका कहा है

५ श्री भगवतीसूत्रमेंभी तुगियानगरीका श्रावकोंने जिन-प्रतिमापूजनका अधिकार है.

६ उववाई सूत्रमें वहोतेरे जिनमदिरोंका अधिकार है

७ उसीसूत्रमें अवड श्रावकने जिनप्रतिमाका वदन किया और पूजन किया ऐसा अधिकार है

८ श्री जबुद्वीपपन्नतिसूत्रमें यमक देवताओनें जिनपूजा की है ऐसा कहे है

९ श्री नदीसूत्रमें विशाला नगरीमें श्रीमुनिसुव्रतस्वामीका महाप्रभाविक थुभ कहा है

१० श्री अनुयोगद्धार सूत्रमें स्थापना माननी कही है

११ श्री आवश्यक सूत्रमें अलग २ अनेक अधिकार है. श्री भरतचक्रवर्तिने जिनमंदिर वनवायेका अधिकार है. वग्गुर श्रावकने श्री मल्लीनाजीका देरासर बनवाया है. पुष्पसे जिनपूजा करनेवालाका संसारक्षय हो जाय ऐसा कहा है. और प्रभावती श्राविकाने जिनमंदिर वतवाया है. तथा जिनप्रतिमाके सामने नाटक किया है. श्री श्रेणिक राजा निरंतर एकसो आठ सोनेका जव नया बनवाके परमात्मा सन्मुख स्वस्तिक करता था. सर्वलोकमें रही जिनप्रतिमाका आराधन निमित्त साधु तथा श्रावक काउसग्ग करें ऐसा कहा है. औरभी जिन प्रतिमाके अलग २ अधिकार है.

१२ श्री व्यवहारसूत्रमें प्रथम उद्देशेमें जिनप्रतिमाके आगे आलोयणा करना कहा है.

१३ दशपूर्वधरकेश्रावक संप्रति राजाने सवालक्ष जिनमंदिर करवाये है और सवा करोड जिनबिंब भराये है जिसमेंसे हजारो जिनमंदिर तथा जिनप्रतिमामें विद्यमान है. शत्रुंजय, गिरनार आदि तीर्थोंमें और बहुतसे नगरोंमें कई जगह संप्रतिराजाने बनवाये जिनमंदिर दृष्टिमें पड़ते है. औरभी दूसरे अनेक हजारो वर्षोंसे बनवाये जिनमंदिर आज विद्यमान है. आबुजी उपर विमलचन्द्र तथा वस्तुपाल तेजपालके करोडो रुपया खर्चा करके बनाये जिनमंदिर विद्यमान है. जिसकी

शोभा देखनेसे अच्छे २ विद्वानभी आश्चर्य पाते है इस प्रकार वहोतेरे सूत्रोंमें खूब विस्तारसे जिनप्रतिमाका अधिकार बहुत आनदकारी विद्यमान होनेसे जिनप्रतिमा वदनीय पूजनीय है प्रतिमाके दर्शन करतेही पापका पुज होय सो भस्मीभूत होता है. इसवास्ते उसमें लेशमात्रभी शका रखना नहि. अनतकालसे भवचक्रमें भ्रमण करते २ मानव भवादि उत्तम सामग्री मिली है. उसमेंभी जिनप्रतिमामें शका रखेगा अथवा मानेगा नहि तो फिर भी अनत काल भ्रमण करना पडेगा सूत्रका एक अक्षरका उत्थापन करनेवालेकों अनत ससारी कहे है तो फीर जगह २ सूत्रोंमें कहा हुआ जिनप्रतिमाका वदन पूजन करनेका अधिकारकों उत्थापन करनेवालेको कितना ससार वढजाय सो तीव्र दृष्टिसे सूक्ष्मबुद्धिसे विचारना कदाग्रह छोड देना प्रथमसे स्थिर किया सिद्धान्त हम कैसे छोडे? ऐसा मिथ्या कदाग्रहमें पडे रहनेसे आत्माकों भवचक्रमें नरकादि दुर्गतिओंका असह्य दु ख सहन करना पडेगा कदाग्रह छोडनेमेंतो लेशमात्रभी दु ख होता नहि. वल्की आनद प्राप्त होता है आत्मामें नई जाग्रति आती है. भवभ्रमण नष्ट होता है. देखीये जिनप्रतिमाका दर्शन करनेसेही कितने लाभ होते हैं? कैसे २ जीव बोधी बीज प्राप्त करके आत्मकल्याण कर गये है.

१ अभय कुमारने भेजी हुई ऋषभदेवस्वामिकी प्रतिमा

देखके आर्द्रकुमार प्रतिबोध पाया और सम्यक्त्व रत्न प्राप्त करके क्रमशः मुनित्व अंगिकार करके आत्मकल्याण कर गये.

२ दशवैकालिक सूत्रके कर्ता श्री शय्यंभवसूरि श्री शांतिनाथकी प्रतिमा देखके प्रतिबोध भये.

'सिज्जं भवगयहरजिणपड़िमादंसणेण पड़िबुद्धो, इत्यादि

३ श्री जिनप्रतिमाकी भक्तिसे श्रीशांतिनाथजीका जीवने तीर्थंकर गोत्र बांधा है.

४ जिनभक्ति करनेसे जीव तीर्थंकर गोत्र बंधा ता है. यह कथन श्री ज्ञातासूत्रमें है. जिन प्रतिमाकी पूजा सो तीर्थंकरोकी ही पूजा है. और उससे वीश स्थानकमेंसे प्रथम स्थानका आराधन होता है.

५ जिनप्रतिमाकों पूजनसे संसारका क्षय हो जाता है ऐसा श्री आवश्यक सूत्रमें कहा है.

६ जिनप्रतिमाकों पूजनेसे मोक्षफलकी प्राप्ति होती है ऐसा श्रीरायपसेणी सूत्रमें कहा है.

७ गणधरमहाराजके सतरह पुत्रने सतरह भेदमेंसे एक प्रकारकी जिनपूजा की है. और यह जिनपूजासे उसी भवमें मोक्षमें गये है. यह अधिकार सतरह भेदी पूजाके चरित्रमें है. यह सतरह भेदी पूजा श्री रायपसेणी सूत्रमें कही है.

८ नागकेतु श्री जिनेश्वरकी पूजा करते २ शुद्ध भावनासे केवलज्ञान प्राप्त किया था

९ दुर्गता नारी परमात्माकी फुलकी पूजा करती हुई केवलज्ञानको प्राप्त कर चुकी थी

श्री दशवैकालिक सूत्रका आठवे अध्ययनमें कहा है

की.-भींत उपर स्त्रीकी मूर्ति लिखी होय सो मुनिओने देखना नहि. क्योंकी उसको देखनेसे विकार उत्पन्न होनेका संभव है '

चित्तभित्त न निज्झाए, नारिवासुअलंकिय ।
भक्खरमिवदट्ठूण, दिट्ठिं पडिसमाहरे ॥ १ ॥

अर्थ —चित्रामणकी भींत स्त्रीसे अलंकृत होय तो उसको देखना नहि क्योंकी सोभी विकारका हेतुभूत है जैसे सूर्यके सामने देखकर दृष्टिको वापस ले लेते है वैसेही चित्रित स्त्रीको देखते ही दृष्टिको खींच लेना

देखो' विचार करो' जैसे चित्रामणकी स्त्री देखनेसे कामविकार उत्पन्न होता है वैसेही शांत रससे भरपुर परमात्माकी मूर्ति देखतेही जीवको वैराग्य उत्पन्न होय इसमें क्या आश्चर्य? इस वास्ते जिनप्रतिमामें जराभी संशय रखना नहि.

सूत्रोमें जिनप्रतिमाके विषयमें पद्य.

(राग—नाथ कैसे गजकोबंध छुडायो)

पूजो प्रेमे जिनपडिमा जयकारी
ए तो अविचळ सुख देनारी....पूजो०

प्रभुपडिमा पूजननी साखो, बहु छे सूत्र मोझारी;
रायपसेणीमां सुर सूर्याभे पूजी छे पडिमा प्यारी ...पूजो०

ज्ञाता अंगे रंगे उमंगे, द्रौपदी समकित धारी;
जिनवर पूजी लीधो ल्हावो, जगमां छे बलिहारि....पूजो०

जंघाचारण ने विद्याचारणनी, पूजन वात विस्तारी;
भगवतीमां प्रभु वीरे भाखी, बलिहारी जइए वारी....पूजो०

जीवाभिगममां विजयदेवता, पडिमा पूजे मनोहारी;
तेम भवी जिनवर पूजी भावे, 'भक्ति' करो वारंवारी ...पूजो०

इस प्रकार सूत्र सिद्धांतमें कही जिनप्रतिमाका दर्शन, के पूजन, भक्ति करके कई भव्य जीव सम्यगदर्शन पाके क्रमशः केवल ज्ञानकी लक्ष्मी प्राप्त करके मुक्ति में विराजमान भये है. जन्ममरण के क्लेशसे दूर भये है. इस प्रकार जीवोंकों कर्म हटानेके वास्ते यह पंचमकालमें साक्षात् जिनेश्वरभगवानका विरह है. परन्तु जिनप्रतिमां प्रबल साधन होनेपरभी शास्त्रमें

जगह २ श्री जिनेश्वर देवने बताये हुवेपरभी कितने विचारे तुमेरे जैसे महामोहनीय कर्मके जोरसे प्रवल मिथ्यात्वका उदयसें जिनप्रतिमाको मानते नहि है पुजते नहि इसके वास्ते उपाध्यायजी यशोविजयजी महाराज कहते है की —

एणीपेरे बहु सूत्रे भण्यु जीरे, जिनपूजा गृहीकृत्य—,
जे नवी माने ते सहीजी रे, करशे बहु भव नृत्य
सुणो जिन' तुज विण कवण आधार

कई सूत्र सिद्धान्तमें जिनपूजाका कृत्य गृहस्थों के वास्ते कहा है तथापि जो नहि मानेगा सो भवचक्रमें जन्ममरणका फेरासे नृत्य करेगा ' वास्ते हे' भव्यजनो तुम लोग लवलेशमात्रभी जिनप्रतिमामें शंका मत करना और हमेशा परमात्माका विधिपूर्वक दर्शन पूजन करके सम्यक्त्व रत्नकी प्राप्ती करलेना तुझे यह अपूर्व अवसर मिला है वास्ते जैसे दूसरे जीव प्रभुप्रतिमाका आलंबनसे के सम्यक्त्व प्राप्त करके आत्मकल्याण कर गये है वैसेही तुम लोकभी कर सकेगा वास्ते निश्चल चित्तसे जिनप्रतिमाका दर्शन पूजा—भक्ति करना क्योंकि श्री महानिशीथ आदि महाप्रभाविक सूत्रपाठोसे मूर्तिपूजा सिद्ध हो चुकी है.

ढुंढकः—आपने जो कुछ कहा वो सब हमने तनकध्यानसे

सुना मगर एक बात तो ए है की हम महानिशीथकुं मानते नही.

गुरुः-श्री नंदीमुत्रको आप मानता हो या नहि.

ढुंढकः-हां साहिब हम जरुर मानते है?

गुरुः-जब उसी नंदीमूत्रमे महानिशीथका नाम लीखा है. बडे शोकका स्थान है की जिस नंदीमूत्रको आप लोग मानते हो उनके मुल पाठमे श्री महानिशीथका नाम लिखा है तो फीर आप उसको क्यों नही मानते?

ढुंढकः-हम लोग बत्रीस सूत्रको मानते है. इस लिये उनकुं नही मानते

गुरुः-अरे भाइ नन्दीमूत्रका मूल पाठमें उसका नाम है या नही?

ढुंढकः-जीहां श्री नन्दीमूत्रके मूल पाठमें तो अवश्य है.

गुरुः-तो फिर तुमलोक जब नंदीमूत्रको मानते है. और उस सूत्रका मूल पाठमें महानिशीथसूत्र और महाकल्प मूत्रका नाम लिखा है परभी तुम लोक वो सूत्रकुं नही माने ए बडा शोचकी बात है.

ढुंढकः-साहिब आपने तो उत्तम उत्तम प्रमाण दीये परंतु चैत्य शब्द पर सन्देह है. क्योंकी उसका अर्थ मूर्ति, या भगवानकी प्रतिमा नही हो शकता

गुरुः-तब ओर क्या हो शक्ता है.

ढुढकः-इस चैत्य शब्दका अर्थ साधु होता है

गुरु.-कीसी कोषमें भी चैत्य शब्दका अर्थ साधु नहि किया है कोषमें तो 'चैत्य जिनोकस्तद्बिम्ब चैत्य जिन सभातरु ' अथवा जिनमदीर और श्री जिनप्रतिमाको चैत्य कहा है और चौतरा बध वृक्षका नाम चैत्य कहा है तुमने जो चैत्य शब्दका अर्थ साधु किया है वह कीसी प्रकारसे भी ठीक नही है क्योंकी सूत्रोमें तो कीसी स्थानपरभी साधु शब्दको चैत्य कह कर नहि बुलाया है सूत्रोमें तो 'निग्गथाणवा निग्गथिणवा' 'साहुवा साहुणीवा' 'भिक्खुवा भिक्खुणी वा' एसे लिखा है मगर चैत्य वा चैत्यानी वा' एसे तो किसी स्थानमेंभी नहि लिखा हे यदी चैत्य शब्दका अर्थ साधु हो तो चैत्य शब्दका अर्थ स्त्रीलिंगमें नहि बोला जाता है तो फिर साध्वीकु क्या कहना चाहिए श्री महावीरस्वामीजीका १४००० चैत्य नही कहे और श्रीऋषभदेवजी महाराजके ८४०००) साधु कहे मगर साधुकी जगह चैत्य ८४०००) नहि कहे है इसी प्रकारसे सूत्रोंमें कइ स्थानोपर आचार्यो के साथ इतने साधु है. एसा तो कहा है परतु कीसी स्थानमें इतने चैत्य है ऐसा नहि कहा फक्त तुम लोगने अपनी इच्छासे ही चैत्य शब्दका अर्थ साधु किया है सो अत्यत ही मिथ्या है जहा जहा चैत्य शब्दका अर्थ साधु करते हो सो

यदियथार्थअर्थ के जाननेवाले विद्वानो देखेंगे तब उनको मालुम हो जायगा की आपका किया हुआ अर्थ विभक्ति सहित वाक्य योजनामें किसी रीतिसेभी नही मीलता है. और जब सर्वत्र 'देवयं चेईयं' का अर्थ साधु और तीर्थंकर मानते हो तो श्री भगवती सूत्रमें डाढों के वर्णनमे भगवानने श्रीगौतमस्वामीजीको कथन किया है कि जिन दाढा देवताओको पूजने योग्य है. 'देवयं चेईयं पज्जुवासामि' इस स्थानमें चेईयं शब्दका अर्थ क्या करेंगे? यदि साधु अर्थ करेंगे तो यह दृष्टांत दाढो के साथ नहि आशकता यदि तीर्थंकर अर्थ करेंगे तो दाढें श्रीतीर्थंकर देवके तुल्य सेवा पुजा करने योग्य हो गइ जब तीर्थंकर देवका दाढा सेवा पुजाके योग्य हो गइ तो फिर तीर्थंकर भगवानकी मूर्ति क्यों पुजने योग्य नही हो शक्ती? अवश्यही पुजने योग्य है. अतः चैत्य शब्दका अर्थ जो हमने कीया है वह ठीक है और पूर्वाचार्योंने यह अर्थ किया है.

ढुंढकः—चैत्य शब्दका अर्थ ज्ञानभी हो शकता है. मूर्ति, या प्रतिमा नहि हो सकता.

गुरुः—यह आपका कथनभी सर्व प्रकारसे मिथ्या है, क्योंकी सूत्रोमें ज्ञानको किसी स्थानमेंभी चैत्य नही कहा है श्री नन्दीजी सूत्रमें तथा जिसजिस सूत्रमें ज्ञानका वर्णन है वहां सर्व स्थानोमें

ज्ञान अर्थ वाचक नाण शब्द लीखा है और सूत्रोमें जिसजिस स्थानोमें ज्ञानि मुनी महाराजका वर्णन है वहापर 'मईनाणी' 'सुअनाणी' 'ओहिनाणी' 'मनपज्जवनाणी' 'केवलनाणी' एसे तो कहा है परन्तु 'मईचैत्या' 'सुअचैत्या' आदि आदि किसी स्थानमें भी नही कहा है. और जिस जिस स्थानमें भगवन्तको और साधुको 'अवधिज्ञान मन पर्यवज्ञान, परम अवधिज्ञान और केवलज्ञान उत्पन्न होनेका वर्णन है. वहापर ज्ञान उत्पन्न हुवा ऐसा तो कहा है परतु अवधि चैत्य, मन पर्यव चैत्य केवल चैत्य आदि ऐसा किसी स्थानमें नही कहा है और सम्यग्‌दृष्टि श्रावक आदिको जातिस्मरणज्ञान और अवधिज्ञान उत्पन्न हुवा एसा तो कहा है परतु अवधिचैत्य वा जातिस्मरण चैत्य उत्पन्न हुवा एसे किसी स्थानमें भी नही कहा है इससे सिद्ध होता है कि सूत्रोंमें किसी स्थानमेंभी ज्ञानको चैत्य नहि कहा है इस लिये आपका कहना प्रत्येक प्रकारसे मिथ्या है और सुनीए चमरेन्द्र के वर्णनमें 'अरिहन्तेवा, चेइआइयेवा और अणगारियेवा ऐसा पाठ लिखा हुवा है इस पाठसेभी स्पष्ट 'चेइय' शब्दका अर्थ 'प्रतिमा' ही सिद्ध होता है. क्योंकी इस पाठमें साधुभी पृथक् और अर्हन्तभी पृथक् लीखे हुए है. और 'चेइय' अथवा श्री जिनप्रतिमाकाभी पृथक् वर्णन है इस लिए इस स्थानमें और कोइ अर्थ नही हो शक्ता तुम लोक जो तीनोहि स्थानमें केवल 'अर्हतः' ऐसा अर्थ करते है सो यह आपकी मुर्खता है.

आप स्वयंही विचार लेवे क्योंकी कोइ साधारण मनुष्यभी शब्दार्थ के जानने वाले कदापि नहि कह शकता है कि तीनो स्थानोमें केवल अर्हंतः ही अर्थ हो शकता है.

ढुंढकः-यदि उक्त वृतान्तमें चैत्य शब्दसे जिनप्रतिमाका अभिप्राय होवे और चमरेन्द्र प्रतिमाका शरण लेकर सुधर्म देव-लोक तक गया होवे तो फीर अधोलोक तिर्यक् लोक और द्वीपोंमें शाश्वती जिनप्रतिमाथी और उर्ध्वलोकमें मेरुपर्वत उपर और सुधर्मदेवलोकमें और सिद्धायतनमें समीपही शाश्वती जीन-प्रतिमा थी तो जीस समय शक्रेन्द्रने चमरेन्द्र पर वज्रपात कियाथा उस समय वह जिनप्रतिमाका शरणे क्यों न गया? और महावीरस्वामीका शरणे क्यों गया ?

गुरुः-यहभी चालाकी केवल भोले लोगोकोही धोखा देनेके लिये है. परंतु दत्त चित्त होकर सुनीये इसका उत्तर प्रत्यक्ष है की जिस कीसीका जो शरण लेकर जाता है और फिर जब वह आता है तो उसीके समीप ही आता है चमरेन्द्र श्री महावीरस्वामीका शरण लेकर गयाथा जब शक्रेन्द्रने इसपर वज्रपात किया तो चमरेन्द्र श्री महावीरस्वामीका शरणे ही आया, यदि आपका ऐसा ख्याल होवेकी मार्गमें समीप ही शाश्वती प्रतिमा और सिद्धायन न थे तो चमरेन्द्र उनके समीप क्यों न गया? सो यह ख्यालमेंभी केवल आपनी अज्ञानता ही

है क्या मार्गमें श्री सीमधरस्वामी और दुसर विहरमान जिन विद्यमान नहा थे? उनका शरण चमरेन्द्र क्यों न गया? फिर तो तुमेरी मति क अनुसार विहरमान तीर्थकर शरण लेनेके योग्य न हुए वाइजी वाह! आपको ऐसी बुद्धि पर शोक होते है

ढुंढक –वन आदिको 'चैत्य' कहा जा सकता है

गुरु'–जीस वनमें यक्ष आदिका मन्दिर होता है उस वनको सूत्रोंमें 'चैत्य' कहा है दुसर कीसी वनको भी सूत्रोंमे 'चैत्य' नही कहा है इस लिये आपका यह कथनभी मिथ्या है

ढुढक.–यक्षको भी चैत्य कहा है?

गुरु.–आपका यह कहना भी असत्य है. क्योकी जैन सूत्रोंमें किसी भी स्थानमें यक्षको 'चैत्य' नहि कहा है यदि कहा है तो आप सूत्र पाठ दिखलावे ऐसेही वात वनानेसे नहीं माना जाता. और जो आप लोग मूर्ति नहि मानते है तो आप लोगोंको कोइ पुस्तक न पढना चाहिए क्योंकी पुस्तकोंमे भी केवल ज्ञान स्थापना है ज्ञान एक अरूपी पदार्थ आत्माका अद्वितीय गुण है, (क) (ख) (ग) अथवा (अ आ इ ई) (व प व. त) आदि आदि अक्षरोंकी स्थापना वनाइ हुइ है. इस लिये उनको भी जैन शास्त्रोंमें अक्षर श्रुत माना है इस वातोको तुम लोग भी मानते है. अब वनक ध्यान दीजीए की

पत्र और मसीरूप जड पदार्थोंको अक्षर ज्ञान माना तो भगवानकी मूर्तिको भगवान क्यों नहि माना जाए? और यथासन्मान और पूजा भक्ति शास्त्रकी की जाती है वैसे ही भगवान्‌की मूर्तिकी पूजा क्यों नहि करते हो!

ढुंढकः—अक्षरको हम श्रुतज्ञान नहि मानते है. प्रत्युत उससे जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसका नाम श्रुतज्ञान है.

गुरुः—हमाराभी तो यह कहना है की हमभी मूर्तिको भगवान नहि मानते है. प्रत्युत उससे जिस पदार्थका (व्यक्तिका) ज्ञान उत्पन्न होता है उसकोंही हम भगवान मानते है. अब आपको ध्यान देना चाहिए की तुम लोग शास्त्रके पढनेवाले मूर्ति पूजासे कैसे दुर हो शक्ता है. क्योंकी समस्त शास्त्र ही जड स्वरूप है. और ज्ञानकी स्थापना है. यदि प्रत्येक भाषामें अक्षरोकी बनावट पृथक् पृथक् भी क्यों नहो. परन्तु अक्षरोका आकारको तो फिरभी ज्ञानका कारण स्वीकार करनाही पडेगा. चाहे उर्दु, नागरी, अरबी, इसाइ आदि किसी भाषा के क्यों नहो. एसेही मूर्तियां भी पृथक् पृथक् श्रीरुषभदेवजी, महावीर स्वामीजी आदिकी हुइ है. इन मूर्तियोको भी जीनेश्वरकी यह मूर्तियां है. उनको ज्ञानका कारण स्वीकार करनाही पडेगा. क्योंकी हमने इश्वर परमात्मा नही देखा है. इस लिये उस मूर्ति के विना इश्वर प्रतिमा के स्वरुपका बोध हमको कदाचित्

नहि हो शक्ता, जो लोग मूर्तिको नहि मानते है वे लाग इश्वर परमात्माका ध्यान कदाचित् नहि कर शकते है

डुढक –हम लोग अपने हृदयम परमात्माकी मूर्तिकी स्थापना कर लेते है

गुरु.–वाहजी? वाह? कैसी तुमेरी आनादी है अरे भाइ? जब तुम हृदयमें कल्पना कर लेते है तो बाहिर क्यों नहि करते? यह तो केवल कहनेकी बाता है कि हम मूर्तिके बिना ध्यान कर शकते है मूर्ति बडा भारी प्रभाव रखती है यदि मूर्ति कुछ प्रभाव नही रखती तो तुम लोगोको परमात्माकी मूर्ति देखकर द्वेष भाव क्यों प्रगट होता है इससे सिद्ध होता है कि मूर्ति बडा भारी प्रभाव रखती है द्वेपीओको द्वेपभाव और रागीओको रागभाव आता है यदि आपको मूर्ति देखकर द्वेप-भाव आता है वो हमको आनद आता है जब परमात्माकी मूर्ति हमको इस ससारमे आनद देती है तो परलोकमेभी हमको आनद दायक होगी तुम लोग इस ससारमे परमात्माकी मूर्तिको देखकर अप्रसन्न होते है तो परलोकमेंभी अप्रसन्न रहोंगे जो लोग इस ससारमें धर्म करनेसे प्रसन्न है वे वो लोक परलोकमेंभी अवश्य प्रसन्न और सुखी होंगे और जो लोग इस जगतमें धर्म करनेसे रुष्ट रहते है वे परलोकमेभी अवश्य दुखी होंगे इस से सिद्ध होता है की परमात्माकी मूर्ति दोनो लोकमें

आराधनासे लाभदायक है और न माननें वालेको विराधनासे दुःखदायक है.

ढुंढकः–बस साहिब. नतिजा हो चुका क्योंकी एसे करनेसे फिर तो भगवानका वीतरागपणा सिद्ध न हुवा आराधन वालेको सुख मीले और विराधना वालेको दुःख मीले तब वीतराग पता कहां रहा?

गुरुः–परमात्माकी मूर्ति तो एक प्रकारका आलंबन (साधन) हैं. वस्तुतः तारनेवाली तो हमारी आन्तरीक भावनाही है. जो मनुष्य परमात्माकी मूर्तिको देखकर परमात्मा भाव लीऍंगे और इनका इतिहासका ब्यान पर ध्यान देयेंगे और शुभ भावनाको विचारेंगे तो वह अवश्य ही अच्छा फल पाऍंगे. और जो परमात्माकी मूर्तिको देखकर द्वेष करेंगा और अशुभ भावना करेंगा वह अवश्य ही बुरा फल पाएगा, उससे वीतराग पणामे क्या दोष है वो जरा बतलाइए.

ढुंढकः–अच्छा साहिब आपने कहा उसमें एक शंका होती है की जडरुप मूर्तिको देखकर उसमे अच्छे बुरे भाव कैसे पैदा होता है वो जरा स्पष्ट समजाइए.

गुरुः–जरा तनक ध्यान देके सुनीये चित्रमें चित्रित हुइ कोइ जगमशहुर स्त्रीकी मूर्ति वो वस्त्र आभूषण वगेरेसे अलंकृत

हुइ मूर्तिको देखकर कामी पुरुषोंको कामका जागृति करने-वाला भाव पेदा होता है और सिद्धानवादि उनकु देखकर उनका रुपादिककी असारता वर्णन करेंगे. वैरागी आत्मा उनकु देखनेका वी भाव नहि करेंगे और शृगारीक पुरुषो उनका शृगारका वर्णन करेंगे ऐसे भिन्न भिन्न व्यक्तिका भिन्न भिन्न भाव उत्पन्न करनेमें वो जडस्त्रीकी मूर्ति कारणरुप हुइ, या, नहि अर्थात् हुइ, तब वैसी तीर्थंकर देवोंकी शात और परम आल्हान्हीक मूर्तिको देखकर उत्तम सुगतीमें जानेवाले कल्या-णकारी जीवोंकु आल्हाद देनेवाली क्यों न होवे और वो मूर्तिको देखकर जीसकु द्वेष होता है उसकी उपर सुगति और सुख भी द्वेष करके उस जीवोंसे दुरही जाता है क्योंकी मूर्ति पूजकको वो मूर्ति देखकर शुभ भाव उत्पन्न होता है और शुभभाव पुण्य-बध और सुगतिका निमित्तभुत है और मात्र जिन मूर्तिका द्वेषीकु वे मूर्ति देखकर द्वेष उत्पन्न होता है और द्वेषसे क्रोधा-दिक कपायोंकी उत्पत्ति होती है और कपायोंसे सद्गति और सुखका नाश और दुर्गति और दु खकी प्राप्ति होती है.

ढुढक'--साहीब आपका कथनसे हमको बराबर ख्याल पडता है की हम लोक (ढुढक) मात्र कदाग्रहसे जिनेश्वरोंकी मूर्तिको नहि मानते हैं वो वात सिद्ध हुइ क्योंकी हम ढुढक मतवाला गुरुका मूर्तिका उसकी समाधिका अच्छी तरह

मानते हे और पूज्य दृष्टिसे मानभरी दृष्टिसे देखते हे और चंदनादिकसे पूजते भी हे. और लोकिक सुखका अर्थी होकर यक्षादिककी मूर्तिको जलादिकसे प्रक्षालन करके और सुगंधि द्रव्यसे पूजके कुसुमादिक भी चढाते हैं उसके लीये अब हम कुछभी आपकी पासे उत्तर नहि दे शक्ता मगर मुसलमिन भाइयों क्युं मुर्तिको नहि मानते वो समजाइए.

गुरुः–सुनीये मुर्ति नहि माननेवाले इस जगतमें कोइ नहि नीकळेंगे. क्योंकी हरेक प्रकारका आकार करके उसमें इश्वरका गुणका आरोपन करके पूज्य दृष्टिसे सेवा भक्ति विगेरे करना उसका नाम मुर्ति पूजा हैं. तो देखो मुसल्मीन भाइओ कवरको मानते हे की नही. उसकी उपर फुल वीगेरे चढाते हैं की नहि उसकी उपर पूज्यभावसे मानभर दृष्टिसे देखते हे या नहि, और ताजीए बनाकर उनकुं मानते पूजते हे की नहि और इसाइ वाले इसुकी मुर्ति बनवाते हैं और इसुका क्रोस बनवाके उनकुं मानते पूजते हैं और आर्य समाज दयानंदकी मूर्ति बनवाते मानते पूजते हे. और शीख भाइओ गुरु नानक, गुरु गोवींद आदिकी मुर्तिको मानते हैं. ऐसे ए सबलोक मूर्तिको अवश्यही मानते हे.

इति श्री जिनप्रतिमाका और उसकी पूजा भक्तिका अधिकार समाप्त.

जैसे इस पचमकालमें जिनप्रतिमाका भवी जीवोंको आधार है तैरनेका (तिरनेका) साधन है वैसेही तीर्थंकर गणधरोंने कहा हुआ जिन आगम भी जीवोंको ससारसे तैरनेका प्रवल साधन है आगममें कहे हुए धर्मका आराधन करनेवाले भव्य जीव आत्माकी परमात्म दशा प्राप्त करते है. जो वीरप्रभुके बताये हुवे तत्त्वको जीव श्रवण करें तो उसके हृदयमें नवीन अद्भूत विचार प्रकटे वास्ते हे चेतन! सर्वज्ञ प्रभुने कहा हुआ धर्मको उत्तम शरण रूप मानके मन, वचन और काया-त्रिकरण शुद्धि पूर्वक उसका आराधन कर' अवसर हाथमें आया है उसको खोना मत तु अनत कालसे अनाथ है तो धर्मका प्रभावसेही सनाथ होजायगा अनतकालसे ससारमें भ्रमण करते २ माता, पिता, भगिनी, स्त्री इत्यादि कुटुवादि तुजे शरणभूत भये नहि है परलोकमें जाते समय उन्होंका तुम्हे आधार नहि भया. वास्ते शरण रहित ऐसा तु धर्मका प्रभावसेही शरणवाला होवेगा. देखो श्री उत्तराध्ययनसूत्रके वीसमा अध्यायमें बताया है कि अनाथी मुनिका गृहस्थपनामें रोगसे पीडित होनेसे कोई शरण न भया जिससे उन्होंने अशरणादि शुभ भावना रूप विचार करके आत्माको धर्मकी साथ जोड दिया जिससे सनाथ और शरण वाले भये उस दृष्टांतको बराबर मनन करना उन्होंकी निस्पृहता विगेर देखके श्रेणीक राजाको भी धर्मकी प्राप्ति भये

अनाथी मुनिका दृष्टांत

एक समय अश्व गजादि की अधिकतावाले और वैडुर्यादि अनेक रत्नोंवाले मगध देशके अधिपति श्रेणिकराजा अश्वको खेलाने के वास्ते मंडिकुक्षि नामके वनमें जा पहुंचे वनकी शोभा अति मनमोहकथी, अनेक प्रकारके वृक्षोंसे वन बहोत शोभायमान था. अनेक प्रकारके उस पक्षी वनमें रहते थे. उन्ह पक्षिओंका भिन्न २ शब्द सुननेमें आते थे. नानाप्रकार के झरने वह रहे थे. यह वन नंदनवनकी तुल्य था. वहां एक वृक्षके नीचे महा समाधिवंत शरीरसे सुकुमार ऐसा एक मुनिकों श्रेणिकराजाने देखा उसका अद्भूतरूप देखके राजा मनमें अत्यंत आनंदित भया और उपमा रहित रूपसे विस्मय पाके चित्तमें उसकी प्रशंसा करन लगे. अहो! कैसा मनोहर रूप है? अहो! यह मुनि कैसे आश्चर्य कारक क्षमाके धारण करने वाले है? अहो इस मुनिके शरीरमें वैराग्य कितना भरा है? अहो! इस मुनिमें निर्लोभता कितनी प्रकाशित हो रही है? इत्यादिक अनेक प्रकारसे चिंतन करके, खुश होके, स्तुति करके, धीरेसे चलके प्रदक्षिणा करके उस मुनिकों वंदन करके अति समीप नहि अति दूर नहि इस प्रकार वैठा. पीछे दो हाथ जोड़कर विनय पूर्वक मुनिमहाराजसे पुछा हे महाराज! आप प्रशंसा करने लायक तरुण है. भोगविलासके वास्ते आपकी वयं अनुकूल है. संसारमें नाना प्रकारके सुख है. इन ऋषीकों

त्याग कर मुनिपनामें अतीव उद्यम करते हों इसका क्या कारण? यह कृपा करके मुझे कहीये

इस प्रकार राजाके वचन सूनकर मुनिराजने कहा,— हे राजन्! मैं अनाथ था हे महाराज! मुझे अपूर्व वस्तु प्राप्त करानेवाला और योगक्षेम चलानेवाला मेरे उपर अनुकंपा करनेवाला, परम सुखके दाता कोई मित्र न भया इस कारणसे मैं अनाथ था 'इस प्रकारके मुनिका वचन सुनके श्रेणिकोकों हास्य आया. और श्रेणिकने कहा की —'आप महा ऋद्धिमान्कों नाथ क्यो न होय' यदि आपका कोई नाथ न होय तो मैं आपका नाथ हु आप इस संसारके भोग भोगें मित्रादि सहित दुर्लभ ऐसा आपका मनुष्य भव सफल करो.' अनाथी मुनिने कहा,—'हे श्रेणिक' मगधाधिप! तु आपही अनाथ है तो मेरा नाथ कैसे हो सकेगा? निर्धन होय सो दूसरेकों धनवान् कैसे बना सके? बुद्धि रहित बुद्धिदान कैसे कर सके? वन्ध्या स्त्री संतान कैसे देंगे? जब तुमही अनाथ हो तो मेरा नाथ कैसे हो शकेगा?' मुनिके वचनसे राजा विस्मित हुआ और व्याकुल भया कभी जो वचन सुना नहि था ऐसा वचन एक यतिके मुखसे सुनकर शंका ग्रस्त हो कर बोलाकी:—मैं अनेक प्रकारके अश्वोंका मालिक हु. अनेक प्रकारके मदोन्मत्त हाथीका मालिक हु. अनेक प्रकारकी सेना मेरे आधीन है नगर, गाम,

अंतःपुर और चतुष्पद विगेरेकी मेरे यहां कोई कमी नहि है. मनुष्यको हो सके इस प्रकारके सभी भोग मुझे प्राप्त भये है. सेवक जन मेरी आज्ञामें खड़े है. सभी प्रकारकी सामग्री मेरे यहां है सभी मन इच्छित वस्तु पास है, इस प्रकारकी ठकुराय होनेपरभी मैं अनाथ कैसा? हे भगवन्! कदाचित् आप दिल्लगी तो नहि करतें होंगे?

मुनि बोले (हे राजन् मैने कहा हुवा जो वाक्यार्थकी बराबर स्पष्ट (उपपत्तिको) तु समझा नहि. तु खुद अनाथ है. परंतु उस विषयमें तेरी अज्ञता है. अब मैं जो कुच्छ कहता हुं. वह अव्यग्र और सावधान चित्तसें श्रवण कर, और सुनके पीछे सत्यासत्यका निर्णय करना. मैने जिस प्रकारका अनाथी पनासे मुनिपना अंगिकार किया है. सो प्रथममें तुजे कहता हुं.

'दूसरे सभी नगरोंसे अति विशेष सुशोभित कोसंबी नाम एक सुंदर नगरी है वहां ऋद्धिसे परिपूर्ण धनसंचय नामके मेरे पिताजी रहते थे. प्रथम तो यौवनकालमें अनुपम ऐसी मेरी आंखोमें वेदना उत्पन्न भई. और दुःखोंको देनेवाला दाहज्वर संपूर्ण शरीरमें पैदा भया. शस्त्रसेंभी तीक्षण ऐसा वह रोग वैरीकी तरह मेरे उपर कोपायमान भया. मेरा मस्तक आंखकी वेदनासे बहोत पिड़ाने लगा. इन्द्रका वज्रका प्रहार समान दूसरेकोंभी अत्यंत भय देनेवाली अत्यंत दारुण वेदनासें मैं

बहुत शोकार्त भया शारीरिक विद्यामें विद्वान् मंत्र मूलीके जानकार, सुज्ञ वैद्यराज मेरी उस वेदनाकों हटानेके वास्ते आये, अनेक प्रकारके औषधोपचार किया तथापि वे सभी व्यर्थ गये धन्वंतरी समान वे वैद्य मुझे उन वेदनासें मुक्त कर नहि सके हे राजन्! यही मेरा अनाथपना था मेरी आखकी व्याधि हटानेके वास्ते मेरे पिताजीने पुष्कल धन देना स्वीकार किया परन्तु उससेभी मेरी वेदना हटी नहि यही मेरा अनाथिपना था मेरी माता पुत्र शोकसे अत्यंत दु खिनी भई तथापि माता भी मुझे दु खसें छुडवा न सकी हे महाराजा! यही मेरा अथाथिपना था एकही उदरसें पैदा भये मेरे छोटे बडे भाई भी अपनेसे हो सके ऐसा प्रयत्न करने लगे तथापि मेरी वेदना हटी नहि, हे राजन्! यही मेरा अनाथपना था, और मेरी छोटी वडी भगिनीयासे भी मेरा दु.ख हटा नहि हे महाराजा यही मेरा अनाथी पना था. मेरी पतिव्रता स्त्री मेरे उपर प्रेम रखती थी अनुराग रखतीथी सोभी आखमें पूर्ण अश्रु भरके मेरा हृदयका सिंचन करती हुई आर्द्र बनती थी. क्षण भरभी मेरेसे दूर न होतीथी अन्य स्थलमें जाती भी नहि थी. हे राजन्! ऐसी स्त्री भी मेरे रोगकों हटा न सकी. हे राजन् यही मेरा अनाथपना था इस प्रकार कोईका परिश्रमसे यह रोग शात न भया. मैने उस वख्त अकेला ही असह्य वेदना भोगी फिर मैं यह दु.खसे भरा ससारसें खिन्न भया इससे विचारने

लगा कीः–'मैं यदि इस घोर यातनासे मुक्त हो जाउंगा तब पारमेश्वरी प्रव्रज्याकों अंगिकार करुंगा.? ऐसा विचार करते २ मैं सो गया. रात्रि चली गई इतनेमें हे महाराज! मेरी वेदनाभी शान्त हो गई और मैं निरोग भया. प्रातःकालमें माता पिता और स्वजनादिकों पूछ के महाक्षमावाला और इन्द्रियोंका निग्रह करने वाला. आरंभादिसे रहित साधुत्व मैंने स्वीकार लिया. तबसे मैं अपने आत्माका नाथ भया. अब सब प्रकारके जीवोंका नाथ हुं.

अनाथी मुनिने इस इस प्रकारकी अशरण भावना श्रेणिक राजाके मनके उपर दृढ ठमाकर अब दूसरा उपदेश उसकों अनुकूल देता है. हे राजन्! यह अपना आत्माही दुःखसे भरी वैतरणीका यातनाको बनाने वाला है. अपना आत्माही शाल्मली वृक्षका दुःखकों पैदा करनेवाला है. अपना आत्माही मनोवांच्छित इष्ट वस्तु रूप दुग्धकों देनेवाली कामधेनु गौके जैसा सुखकों उत्पन्न करनेवाला है. अपना आत्माही नंदनवनकी तरह आनंदकारी है अपना आत्माही कर्म करने वाला है. अपना आत्माही उन कर्मोंकों हटानेवाला है. अपना आत्माही दुःखोकों उत्पन्न करनेवाला है. अपना आत्माही सुखकों उत्पन्न करने वाला है अपना आत्मा ही मित्र और अपना आत्मा ही वैरी है. अपना आत्माही सभी कार्य करने वाला है.'' इसी तरह अनेक

प्रकारसे अनाथी मुनिने वह श्रेणिकराजाकी प्रति संसारमे जीवोंका अनाथपना कह बतलाया जिससे वह श्रेणिक राजा अति प्रसन्न भया. और हाथ जोडके बोला. की:–'हे भगवान् आपने मुझे बराबर उपदेश दीया है आपने यथास्थित अनाथपना कहा है, हे महाऋपि! आप सनाथ है. आप सबधव है और आप सधर्म है, आप सभी अनाथ के नाथ है हे पवित्र संयति! मैं आपका क्षमाप्रार्थी हु आपकी हित शिक्षाकों चाहता हु. धर्मध्यानमें विघ्न करने वाला भोगविलास संबंधी आमन्त्रण मैने आपकों किया था इस विषयमें मेरा जो अपराध है उसको क्षमा चाहता हु. इस प्रकार स्तुति करके श्रेणिकराजा परमानंदकों प्राप्त कर धर्ममें रागी भये और मुनिकों प्रदक्षिणा करके, उनके चरणोंका वदन करके स्वस्थान सिधाये और अनाथी मुनि निरतिचार चारित्रसें मुक्त भये.

इति अनाथी मुनि कथा



अहो भव्यो! महा तपोधन, महामुनि महा- प्रभावशाली, महा यशवत, महानिग्रंथ अनाथी मुनिने मगध देशका राजाकों अपने शुद्ध चारित्र्यसे जो बोध दिया है सो सचमुच अशरण भावनाकों सिद्ध कर बनाता है महामुनि अनाथी ने जो २ वेदनायें सहन की उसके समान। अथवा इससे भी अधिक

उपर बताये नामवार तीर्थंकर आनेबाली चोविसेमें होनेवाले है. वैसे दूसरे केवली गणधरो विगेरे अनेक जीव पुरुषार्थ करके रत्नत्रयीका आराधन करके केवलज्ञान पाके अजरामर पदका भोक्ता होंगे वैसे ही हे चेतन! तुंभी तीर्थंकर महाराजका हितोपदेश तेरा हृदयमें दृढक रके संसार उपरसे राग हटाकर रत्नत्रयीका आराधन करेगा. तो मुक्ति सुखकों जल्द प्राप्त करेगा.

हे जीव! तु अनादि कालसे यह चोराशी लक्ष योनिमें अज्ञानतासे भटकता फिरता है और काम क्रोध मोह मायादि अंतरंग शत्रुओंसे एसा फसाया है की तुम्हे सारासारकी वे अंतरंग शत्रु ख्याल होने नहि देते. जिससे अनेक लोगोकों त्रास दे रहा है. उसका अनिष्ट फल तुम्हे भोगना पड़ेगा. इसका भी तु विचार नहि करता है. तेरे माथे पर काल चक्र भ्रमण कर रहा है. सो तुम्हे कब पकडेगा सोभी लक्षमें लेता नहि. और पुत्र कलत्र लक्ष्मी इत्यादि अपना मानकर वैठा है तथापि वे कुछ तेरा नहि हं इसका विचारभी तुम्हे नहि आता, इस शरीरके उपर मोह रखके धर्म क्रियामें पीछे रहता है. शरीरकों खूब समालता है. आत्माकों समालता नहि है. परन्तु यह शरीर तेरा नहि है इसकों जानता नहि और न जाननेका कोशीष करता है. इस भव भ्रमणका अंत ज्ञान दर्शन चारित्र्यरूप रत्नत्रयीके बिना आनेबाला नहि उस रत्नत्रयका प्राप्तिके लिये तेरा लेशमात्र भी यत्न नहि है तो इस भव भ्रमणका अंत कैसे आवेगा? सो तु

सोच छे. और भी तु सदा पापसे पेट भरता है कुविचारमें लीन होजाता है समयपर देव गुरु और धर्मकी भी निंदा करके व्यर्थ मानवभव हारजानेके कारणोंको तैयार करता है प्रमादवश होके आत्मचिंतन एक क्षण भी नहि करता तो कदापि कुत्ते, बिल्लि, शियाल, सर्प विगेरे तिर्यञ्चोंका तथा नारकीओका भव तेरे भाग्यमें आ गया तो तुम्हे ऐसे क्षुद्र भवमेंसे छुडानेवाला धर्म विना कौन होगा? वैसे क्षुद्र भव न आवे वैसे उपाय तुम्हे क्यों नहि मिलते उपाय नहि करेगा तब तक तेरी स्थिरता न होगी जैसे भोजन विना किये भूख नहि मिटती, जलपान विना किये तृषा नहि मिटती, सूर्य विना अंधकार न मिटे, वैसेही धर्म विना कभी भी दु ख न मिटे इस बातको कभी भूलो मत उस धर्मको बतानेवाले सद्गुरुके चरणोंमें जाना चाहिये उनके वचनों सुनना चाहिये सद्गुरुके समागम विना और उनके बताये हुये मार्गमें विनाचले तेरा रास्ता नहि उसके सिवाय तेरी भवभ्रमणाका अंत नहि. वीरप्रभूकी वाणीका स्वाद सद्गुरुके संगसे जो करेगा तोही सच्चे सुखका अनुभव कर सकेगा फिर भी तु जानता ही है की.—जैसा करे वैसा पावे, तौभी दूसरेकी निंदा करके पापसे पेट भरने तैयार होता है और आत्मनिंदा तो करता नहि तो फिर ससार समुद्र कैसे तरेगा वास्ते इसका खूब विचार करके अन्यकी निंदा करनेकी टेव अवश्य निकाल देना. और वारंवार आत्माको हितशिक्षा देनेको तयार रहना

प्रभातमें सुबोहमे ऊठके धर्मभावनाके उच्च-विचार जैसे शांत चित्तसे होते है वैसे शुभ विचार दूसरे समयमें होना प्रायः मुश्किल है. वास्ते सुबह घंटा दो घंटाका समय आत्मभावनामें निकाल के सामयिक प्रतिक्रमण, पुस्तक वांचन विगेरेसे समय सफल कर और प्रमादकों छोडके नीचे लिखी हुई बातें ध्यानमें लेकर खूब मनन कर.

हितोपदेश.

जिस प्रकार भूख लगे तो खानेके वास्ते तृषा लगे तो पीनेके वास्ते, पैसा कमानेके वास्ते, पुत्रपुत्रीओंकों सभालनेके वास्ते, संसारके मजजुरीरूप कार्योंमें तो कोईकों कुछ पुछना पड़ता नहि. जल्द प्रवृत्ति होती है; तो फिर यह आत्मा अनादिकालसे संसाररूप बंधनमें पड़ा है. तो उसकों छुडानेके वास्ते लेशभी उद्यम क्यों नहि करता? हे चेतन! जरा लेशमात्र चक्षु खोल. जब कभी भी सुकार्यमें पुरुषार्थ विना किये संसाररूप कैदसे छुट नहि सकेगा. वास्ते आत्महित करनेकों तैयार होजा. सद्गुरुका संयोग प्राप्त कर. उन्होंकी सेवा करके आगममें प्रकाशित किये हुए तीर्थंकर गणधरोंने बताया धर्मकों पहिचान ले. जानके विचार कर. स्वधन और परधनकों पहिचान, मोहके नशासे असत्य वस्तुकों सत्य समझके भ्रमसे भूला हुआ सांसारिक सुखकों सत्य सुख समझके क्यों अकुलाता है? वीतराग परमात्मकथित सत्य तत्त्वसे अजान रहके अपना आयु व्यर्थ

क्यों गुमाके अधोगति क्यों प्राप्त करता है? सुखकी आशासे बाह्य वस्तुकी प्राप्तिके वास्ते यत्न कर रहा है परतु हे मोहान्ध आत्मा? तु इतनाभी शोचता नहि की सत्य सुख तो आत्मामें रहा है पौद्गलिक वस्तु तो नष्ट होनेवाली है इसके भरोसे आत्मसुख मत खो. कोईभी जड पदार्थमें सुख नहि है शरीरमें जो सुख होता तो मृत शरीरमें भी सुख प्राप्ति होना चाहीये परन्तु होती तो नहि वास्ते यह सिद्ध होता है की –"सुख आत्माका गुण है" कर्मका आवरणसे ससारी जीवोंका सुख तरोभूत रहता है और सिद्धोंमें कर्मका नाश होनेसे वही सुख आविर्भूत होता है तात्विक सुखतो आत्मामें ही रमता है परन्तु तु खदायी विभाव दशाकों तु अनादि कालसे अपने गळे लगाके फिरता है उसकों छोड स्वभाव दशामें प्राप्त कर परन्तु अभी तुझे रस लोलुपता अधिक है समभावसे आशसा रहित तपश्चर्या करता नहि. उपवास, आयबिल, एकासणा, आखिर उणोदरी व्रत भी समभावसे करता नहि नवीन २ चिजें खानेकी इच्छा किया करता है परन्तु इच्छा निरोध करता नहि. जिस वस्तुकी इच्छा भई इसकों तु रोकता नहि ससारके अनेक कार्योंका तु चिंतन करता रहता है कभी काम-रागमें, कभी स्नेह रागमें, कभी दृष्टि रागमें, कभी कुदेवमें–जिसमें देवपनाका गधभी नहि उसमें, कभी कुगुरुमें–जिसमें गुरुपनाका अभाव है उसमें, कभी कुधर्ममें–जिस धर्मसे अनेक

जीवोंका नाश होता है ऐसे असत्य धर्ममें, कभी मनोदंडमें, कभी वचन दंडमें—न बोलने लायक वचन बोलके, कभी काय दंडमें, कभी हास्य रति अरति भय, शोक, दुगंछामें, कभी कृष्णादि तीन अशुभ लेस्यामें, कभी रसगारव, ऋद्धिगारव, शातागारवमें लीन होके संसारकी वृद्धिके कारणोंका तु चिन्तवन करता है. तो हे चेतन! तु किस प्रकारसे स्वभाव दशा प्राप्त करके संसार समुद्रका पार पावेगा? यह तुम्हारे आत्माके शत्रु है या मित्र? शास्त्रकार तो उनकु आत्माके कट्टर शत्रु कहते है. तो क्या ऐसी जबरजस्त मोहराजाकी सेनाकों पीछी न हटावेगा? तेरा सत्यानाश करनेवाली यह सेना है. हे चेतन! और तेरे उपर अठारह पापस्थानोंका कितना जोरसोरसे हुमला है. तेरी जिंदगीका अब तकका विचार करले की कौनसा दिवस मेरा चोक्खा गया है. जिस दिन एकभी पापस्थानका सेवन न किया हो? ऐसा दिन शायत नभी निकले. तो क्या यह भी एक आत्माकी निर्बलता—हीन सत्वता नहि तो और क्या है? सीर्फ सुबह व संध्याकों जब पडिक्कमण करता है तब पहिले प्रणातिपात, दूसरे मृषावाद इत्यादिक पापस्थानोंका नाममात्र बोल जाता है परन्तु वे सब शब्दमेंही रह जाता है. सुबह या सांज वे सब बोलके दूसरे रोज यदि इन्होंसे बचजावे-अर्थात् पापस्थानके न सेवे तो कैसा आनंद होय? थोडा अनुभव तो करना अमुक दिवसमें एकभी पापस्थानकका समागम करना नहि है

ऐसा निश्चय करके उसकी उपर और थोडासाभी लक्ष देना तो जरूर उसकों कुछ अंशसे दूर कर सकेगा. शब्दका उच्चारण करनेके बाद उसके उपर विचार करके शुभमें प्रवृत्ति और अशुभसें निवृत्ति करनेसे ही आत्माकों लाभ होता है सर्प अथवा सिंहकों देखकर सर्प, सर्प, सिंह, सिंह, ऐसे शब्द बोलें परन्तु पीछे न हटजाय तो सर्प अथवा सिंह प्राणका नाश करे. वैसेही पापस्थानक बोलकेभी उन्होंसे पीछे न हटे तो वे पापस्थानक भाव प्राण जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य–उसका नाश करे उसमें क्या अश्चर्य? सुवर्ण या हीरादिककों देखके मुखसे सुवर्णादिक बोला करे, साक्षात् देखने परभी ग्रहण न करे, और काचके टुकडे ही ग्रहण करे सो धनवान हो सकता है क्या? नहि हो होसकता वैसे ही जीवादिक नव तत्त्वका ज्ञातृत्व होय परन्तु उसमें रहा संवरतत्त्वका आदर ही न करे, निर्जराकों न स्वीकारे, तो जानने मात्रसे प्रवृत्ति विना किस प्रकार आत्मकल्याण कर सके? देखो क्रियाष्टकमें उपाध्या श्री यशोविजयजी महाराज क्या कहते है? —

क्रियाविरहितं हंत, ज्ञानमात्रमनर्थकम् ।
गतिं विना पथज्ञोपि, नाप्नोति पुरमीप्सितम् ॥

क्रिया रहित ज्ञानमात्र निष्फल है. रास्ताका जानकार आदमी गति न करे चुपचाप बैठा रहे तो वाछित नगरमें कैसे

पहुंचे ! वैसे क्रिया रहित ज्ञान मोक्षफल दाता हो नहि सकता शास्त्रमेंभी ज्ञानक्रियासे ही मोक्ष कहा है. इस वास्ते ज्ञाता होके शुभ कार्यमें प्रवृति करना ओही मोक्षका कारण है बाकी तो हे चेतन ! दिवस रात्रि रोज जाते है आयुकों काटते है. मस्तकपर सफेत वाल आये मृत्युने आगेसे दृतकों भेजके खबर दी की तु चेत या न चेत मैंतो अब जल्द आ रहाहुं तयार होके रहना झूठ आशासे संसारमें मत पडा रहे. मधुबिंदु सम सांसारिक सुखमें मत पड और नीचे लिखी गाथाका मनन करना.

नगरां वागे माथे मोतनां. केम निश्चिंत थइने सुतो रे;
मधुबिंदु सुखनी लालचे, खाली कीचडमां केम खुतो रे.
बलिहारी जाउं ए वैराग्यनी.

इस गाथासे निश्चित करलेना की मृत्युके पटह बज रहे है. अब आत्मश्रेय करनेमें जितना विलंब करुंगा उतना गुमाउंगा. तु ऐसा मत ख्याल करकी अभी मुझे सफेत वालतो आये नहि. अभीमें छोटाहुं अभी मुझे बहुत देर है. सोपक्रम आयुवालेकों तो वाल सफेत होय चाहे काले सो देखना नहि. शास्त्रमें कहा है की सोपक्रम आयु वालेका आयु सात प्रकारसे तुटता है. देखो उपदेश रत्नाकरमें श्री मुनिसुंदरसूरि महाराजने बताये हैं:—

अज्झवसाणे[1] निमित्ते, अहारे[3] वेअणा[4] पराधाए[5]।
फासे[6] आणपाणु[7], सत्तविह जिज्झए आउ ॥१॥

१ अध्यवसाय राग भय, और स्नेह इस तीन प्रकारसे समझो उसमें रागजन्य अध्यवसाय कोइ स्त्री एक तरुणकों जल पीलातीथी, उसके उपर रागवाली होके पीछे हटी नहि उस पुरुषकों देखनेमें रगी बनी पुरुष चला गया रागके अध्यवसायसे वह स्त्री मरणके शरण भई मनुष्यभव खो वैठी यह पहिली राग अध्यवसाय

गज सुकुमालका ससुरा सोमिल विप्र गज सुकुमालकों उपसर्ग करके आताथा सामनेसे वासुदेवकों आते देखके भयसे मरगया सो दूसरा भय अध्यवसाय

तीसरा स्नेह अध्यवसाय एक बनियाकों एक तरुण स्त्री थी, उन दोनोमें गाढ स्नेह था सो वनिया देशांतरमें कमानेके वास्ते गया कमाके वापस आता है, तो उसका एक मित्रने आगेसे घर आके परीक्षाके हेसीयतसे (मशकरीसे) उनकी स्त्रीकों कहा की - तेरा पति मर गया ' यह स्त्रीको अत्यत प्रेम होनेसे उन शब्दकों सुनने ही तुरत मर गई पीछेसे उसका पति आया सोभी अपनी स्त्रीको मृत देखके स्नेहका तीव्र अध्यवसायसे मर गया यह स्नेह अध्यवसायसे इस प्रकारका तीव्र स्नेह जीवकों बहुत हैरान करता है जल्द मृत्यु करदेता है आजकल पंचमकालमें

भी इस प्रकारका स्नेह दृष्टिगोचर होता है. कई जीव इससे मृत्युगोचर भये है. जरा भी वियोग होय तो चित्तमें जाने कि मेरा सभी नष्ट हो गया है ऐसा मानकर अरे! अब मैं क्या करुंगा? मेरी रक्षा कौंन करेगा? मुझे कौंन समालेगा? इत्यादि स्वार्थमें अंध बनके झूठा विलाप करके आयुकों उपक्रम लगाके दूर रहा मृत्युकों पास बोलाकर जिंदगी रद कर डालते है. और आर्तध्यानसे मरण पाकर नरक तिर्यंचादि दुर्गतिके अधिकारी बनते है. वास्ते ऐसा स्नेहसे सभी भव्य जीवोंकों पीछे हटना चाहीये प्रथमका जो राग सो तो रूपादि देखावसे उत्पन्न भया जानोः और यह स्त्री पुत्रादिके उपर जो राग उसकों स्नेह जानो एसे जो स्नेह है सो मनुष्यकों बहुत भवमें भटकानेवाला होता है. और कितनेवार कई एक लक्ष्मीका बियोग होनेसे बहुत अकुलाते है. जानता है की मेरा सभी गया. परंतु मूर्ख इतनाभी नहि सोचता की जन्मते क्या लाया था! और मरते क्या लेजायगा ? वास्ते क्यों गभराता है. ? लक्ष्मी गई तो गई. तेरे भाग्यमें न थी. तेरा पुण्य प्रबल होता तो न जाती. पुण्य कम हुआ तो चली गई. वास्ते बराबर पुण्योपार्जन कर! इस प्रकार आत्माकों समझाके शांत करनेसे शांति होती हैं. और बहुत राग उद्वेग करनेसे मृत्युकी शरण होना पड़ता हैं. सोभी इस प्रकार रागके भीतर ही अंतर्गत होता हैं, यह तीनों प्रकारके अध्यवसाय आयुकों तोडता हैं,

२ दूसरा उपक्रम निमित्त—दड, शस्त्र, रज्जु, अग्नि, पानी, जहर, सर्प, शीत, उष्ण, अरति, भय, क्षुधा, तृषा, घसाना, पीसाना इत्यादि निमित्तोंसे आयु तुटता है

जैसे कोईका माथेमें दड लगा और सो मर गया रुद्रदेवने अग्निशिखानामकी अपनी स्त्रीकों माथेमें दड मारनेसे आ मर गई इस प्रकार कोई शस्त्र लगनेसे युद्धादिमें मर जाय. कोई गलेमें फासा लगाके मर जाय, कोई अग्निमें जलके, कोई जलमें डुबके, कोई विष खाके, कोई सर्प काटनेसे, कोई शीतसे, कोई उष्णतासे, कोई क्षुधासे तो कोई तृषासे इत्यादि निमित्त पाके मरजाते है यह निमित्त आयुकों तोडते है.

३ आहार—अतिशय आहार करनेसे अजीर्ण होता है उससे आयु तुट जाती है

४ वेदना—नेत्रादिमें शूलादि विगेराकी उत्कट वेदना होनेसे आयु तुटती हैं

५ परापात—विजली आदिके परापातसे भी आयु तुटती हैं

६ स्पर्श—शरीरमें उस प्रकारका उत्कट विषका स्पर्श होनेसे अथवा सर्पादिका दशसे आयु तुट जाती है जैसे ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती मर गया पीछे इसका पुत्रने स्त्रीरत्नके पास भोगकी प्रार्थना करते उसने कहा की मेरा स्पर्श तु सहन न

कर सकेगा. जो तुजे खातिर कराती हुं.! ऐसा कहके एक घोड़ाको कमर तक उस स्त्रीने स्पर्श किया तो वीर्यका क्षयसे वह अश्व तुरंत ही मर गया. चक्रवर्तीकी स्त्री काम विकारसे दूसरेको स्पर्श करे तो दूसरा सहन न कर सके और मर जाय. जिससे स्पर्श भी आयुको तोड़नेवाला है.

७ श्वासोश्वास–और प्रकारसे लेनेसे या ज्यादा लेनेसे आयु तोड़ देता है.

यह सातों निमित्त सोपक्रम आयु वालाकी आयु तोड़नेवाले है. इधर कोई शंका करेकीः—आयु तो क्या तुटता होगा? जितने वर्षका बंधा होय उतनेका भोगें ज्यादा कम कोई करने वाला नहि. उसके उत्तरमें लोकप्रकाश विगेरा शास्त्रमें कहा है कीः—जैसे कपड़ा पानीसे भींगोके खूब गीला किया होय पीछे गड़ी करके उसी कपड़ाको ऐसा ही एक तरफ रक्खा जाय तो सोभी सुख जाता है परंतु बहुत समयसे सुख जाय परन्तु जो उसी कपेडको निचो कर पानी निकालदें और घाममें (गरमीमें) सुखादें तो जल्द सुख जाय. वैसे ही जो आयुको उपक्रम न लगे तो जितने वर्षकी बंधा है उतना वर्षको पूर्ण करके मरण पावें और उपर बताये सात उपक्रमोंमेंसे कोई भी उपक्रम लगे तो पांच मीनीट भी पूरी न होवे और मरणके शरण होना पड़े यह विना सोपक्रमआयुवालाको जानना. निरुपक्रमआयुवाले युगलिक,

देवता, नारकी, चरमशरीरी, तीर्थंकरो विगेरा जिसको सिद्धांतमें निरुपक्रमी आयुवाले कहे हैं वे अपना आयु पूर्ण करके ही कालधर्म पावे जैसे नारकी जीवोंके तिल २ जितने टुकडे परमाधामी करते हैं तौभी वे मरते नहि अथागइ वेदना भोगते हैं वैसे ही निरुपक्रमी आयु वाले के वास्ते जानना देखो — पातालसुंदरीने जयतसेन राजाको मारडालनेके वास्ते जहर दीया तथापि भोयरामेंसे बहार निकला की तुरत वमन भया जहर निकल गया. चरम शरीरी होनेसे निरूपक्रम आयु न टुटी

भीमसेनको दुर्योधनने विष दीयाथा तौभी कुछ न भया कडु राजाको देवीने पर्वतमें पटकाथा तौभी चरम शरीरी होनेसे मरण न भया

आयु जितना बधा है इसमें एक मिनट बढे नहि परन्तु घटेतो सही यह चोक्स जानो. तो फिर ऐसा क्षणभंगुर आयुके उपर हे आत्मा! विश्वास मत रखना? आज आनदमे वैठा है तो भी चोक्स जानना की कल सुबह तो क्या परतु दो पहर भी जब देखें तब ठीक देख शास्त्रकार सलाह देते है की —धर्म करनेमें विलंब नहि करना

ज कल्लं कायन्व, त अज्ज चिय करेह तुरमाणा ।
बहुविग्घो हु मुहुत्तो, मा अवरन्ह पडिक्खेह ॥१॥

मनुष्य सोचता है की कल धर्मकार्य करूंगा परंतु कल किसने देखी है.? कल क्या होगा.? वास्ते हे भव्य जीवो! कल करनेका आजही विना विलंब कर लो. जराभी आलस मत करो. धर्म कार्य करनेमें एक मुहूर्तभी विघ्नकर होजाता है. वास्ते पिछले प्रहरमें करनेका भी पहिले प्रहरमें कर लो. क्यों की कदापि आयु पूर्ण हो गई होय तो पिछले प्रहरमें भी किस प्रकारसें धर्म करोंगे?

कई जीव सुबहमें आनंद करते दृष्टिगोचर होते है और उसी रोज सभी ऋद्धि सिद्धि कुटुव परिवार छोड़के परलोकमें धर्म विना दुर्गतिमें सड़ना पड़ता है. देखो यशोधरका जीव अपने नवमें भवमें सुरेन्द्रदत्त संयम लेनेकी भावनासे रात्रिमें सो रहा. उसकी स्त्री नयनावली अपना स्वार्थमें अंध बनके कपटसे जहर दिया. जहर उतारने वाले वैद्य डॉक्टर आनेके पहिले ही उसी स्त्रीने गलेमें नख देके मारडाला. आर्तध्यानसे मरके तिर्यंच गतिमें मयूर भया. वहांसे मरके मृग, मत्स, बकड़ा, कुकडा इत्यादि आठ भव तक अनेक प्रकारके दुःख सहना पड़ा. सुरेन्द्रदत्तके पूर्वके नवमें भवमें माताकी दाक्षिण्यतासे आटाका मरघाकों मारके हिंसा की थी. जिससे उत्तरोत्तर आठ भव विगड़ गया. जो तुरंत ही संयम लिया होता तो तिर्यंचोंका भव न करना पडता. छेवट नवमें भवमें शुभ कर्मका उदयसे

मुनिराजको देखनेसे जातिस्मरण ज्ञान भया. पूर्वके भव साक्षात् भये बाद उसके ससारके मोहोत्पादक पदार्थमें न अकुलाया ओर शादि विना किये ही विना विलम्ब एकदम गुरुमहाराजकी पास आके सयमका स्वीकार करके यशोधमुनिरमहाराजा भया. और आत्मश्रेय किया. वास्ते धर्मके कार्यमें जराभी विल्ब करना ही नहिं. करेगे तो भवांतरमें शशिराजाकी तरह वहुत पश्चात्ताप होगा सो निश्चय लक्षमें लेना.

धर्म करनेमें विलब नहि करना

राग–व्हाला वेगे आवोरे

जागो भवी जागो रे, उघ अघोरी त्यागो रे,
अवसर आव्यो ओळखो होजी,
नहि जागो तो, जीवन चाल्यु रे जाय,
खोयु तेनो पस्तावो पाछळ थाय जागो०

साखी–पळ पळ प्राणी आउखु, ओछु थाय हमेश,
चेतो चित्तमा चोंपथी ए आगम उपदेश
धर्म क्रियामा लागो रे अवसर आव्यो०

साखी–लाख पूर्व आयु घणी, चाल्या अन्ते खास,
अल्प जीवननो आपणो, तो अरे श्यो विश्वास
भवनी भावठ भागा रे अवसर आव्यो०

साखी—धर्मे ढील करो नहि, धरो ध्यानमां एह;
तप जप व्रत करणी करी, सफळ करो आ देह.
"भक्ति" जिनवरनी मागो रे........अवसर आव्यो०

आजकल कितने ही जीव धर्म कार्यमें विलंब करके मृत्युकी शरण होते है. परन्तु वायदा करके भी जल्द कार्य साध सकते नहि. वैसे जीवोंकों कालराजा अचानक पकड़ता है तब आर्तध्यानसे मर कर यशोधरके जीवकी माफक तिर्यंचादि गतिमें रखड़ता है. पीछे जल्द उंचा चढ़ना मुश्किल होता है. प्रथम अपने कह चुके है कीः—मनुष्य भव प्राप्त करना बहुत कठिन है. सो खो (गुमा) देनेसे पीछे कहांसे मिल सकता है? वास्ते जिसने यह भव विगाड़ा उसने अनेक भव विगाडा और जिसने इस भवकों सुधार लिया उसने सभी भव सुधारे क्योंकी जीव धर्माराधनसे सम्यक्त्व दर्शन पाकर देवलोकमें जाता है. और वहां भी अनेक प्रकारके तीर्थंकरादिकी भक्ति विगेरा शुभकार्य करके मानव भव लेकर सिद्धि पदकों जल्द प्राप्त करता है. कोई तीनभव, कोई पांच, कोई सात, तो कोई आठ भवमें भी सिद्ध पदकों प्राप्त करता है. विचवाले भवमें भी दुःखकों नहि पाते. अच्छी ऋद्धिसिद्धि वाले कुटुम्बमें ही जन्म होता है. वास्ते हे चेतन! इस भवकों सफल करनेके लिये जल्द उद्यमी होजा. प्रमादकों छोड़. जो! छायांका वहाने काल तेरे पीछे फीर रहा है. इस वातकों शास्त्रकार वताते है.:—

छायामिसेण कालो, सयलजियाण छल गवेसतो।
पास कहवि न मुञ्चइ, ता धम्मे उज्जम कुणह ॥१॥

हे आत्मा! तेरा शरीरकी छाया जो देख पडती है इस छायाके बहाने काल तेरी पीछे घुमता है सकल जीवोंका छलकों वह देख रहा है छेडा छोडता नहि है वास्ते धर्ममें उद्यम कर. एकदम अचानक काल तुजे पकडेगा उस समय तेरे जितने कार्य है वे पुर्ण हो सकेगा नहि कार्य तो बाकीके बाकी ही रह जायगे और तुम्हे उस समय बहुत पश्चात्ताप होगा की –'अरे अपने सारी जिंदगीमें कुछ सुकृत कर न सके और मृत्युके पंजामें आ गये' ऐसा पश्चात्ताप उस समय न होय वैसी योजना अभीसे कर ले. दान, शील, तप, भाव, यह चार प्रकारके धर्मकों, और श्रुत धर्मकों, चारित्र्य धर्मकों आचरण कर. अवसर पाके संयम ग्रहण कर संयम न ग्रहण कर सके तो सम्यक्त्वका स्वरूप समझके सम्यक्त्व पूर्वक श्रावकके बारह व्रत सद्गुरुका संयोग पाके अंगिकार कर ले. पिछेसे धीरे २ संयमकी भी भावना होगी अभीसे अभ्यास कर. अभ्यास विना कोई भी कार्य करना बहुत कष्टकारक होता है शरीर अच्छा है तब तक ही कर सकेगा अभी न करेगा तो पिछे मूढ और गवारकी उपमाके लायक होगा देख! शास्त्रमें कहते है की —

विविधोपद्रवं देह–मायुश्च क्षणभंगुरं ।
कामाऽऽलंब्य धृतिं मूढैः, स्वश्रेयसि विलंब्यते ॥१॥

'यह देह विविध प्रकारके उपद्रवोंसे फसा है. आयुः क्षण-भंगुर है तथापि किस प्रकारकी धीरज और धृष्टताकों अवलंबन करके मूढ जीव अपना आत्महितमें विलंब कर रहे है.

यह शरीर अनेक प्रकारके उपद्रवोंसे भरा है. कभी तो भयंकर रोग, कभी मुर्छा, कभी पागलपना, इत्यादि उपद्रवोंसे भरा यह देह है. और आयु भी क्षणभंगुर है. क्षणवारमें मनुष्य मरणके शरण हो जाता है. ऐसी स्थितिमें तो दूसरे कोईभी शरण न लेकर धर्मका ही शरण लेना. वही आत्माको हितकर है. धर्म है वही जीवको दूसरे भवमें जाने समय शंवल (पाथेय) तुल्य होता है. मार्गमें जानेवाला आदमी साथमें शंवल न होनेसे दुःखी होता है उसी प्रकारका उत्तराध्यन सूत्र कहते है कीः–

अद्धाणं जो महंतं तु, अपाहिज्जो पवज्जइ ।
गच्छंतो सो दुही होइ छुहातन्हाहिं पीडिए ॥१॥

"जो मनुष्य बड़ा लंबा मार्गमें पाथेय बिना गमन करता हैं सो जाता हुआ क्षुधा और तृषासे पीड़ित होकर बहुत दुःखी होता है.

विवेचन –लंबे मार्गमे जानेके वास्ते मुज्ञ मनुष्य पाथेयकों लेकेही गमन करता है. परन्तु विना पाथेय जायतो मूर्खही कहा जाता है वैसेही परलोकमें गमन करनेवाला जीव धर्मको साथमें न ले जाय तो दुखी हो जाय और मूर्खभी कहा जाय. उसमे कुछ आश्चर्य नहि है उसी बातकों सूत्रकार कहेते है की

एव धम्म अकाउण, जो गच्छइ पर भव ।
गच्छतो सो दुही होइ, वाहिरोगेहिं पीडिए ॥२॥

'इस मकार याने विना पाथेय मार्गमें जानेवाले पुरुषकी तरह जो मनुष्य धर्म विना किये परभवमें जाता है सो व्याधि और रोगोंमें पीडित होकर दुखी होता है अब जो पाथेय लेकर जाता है इसके वास्ते कहते है की —

अद्वाण जो महत तु, सपाहिज्जो पवज्जइ ।
गच्छतो सो सुही होइ, छुहातण्हाहिं विवज्जिओ॥३॥

जे पुरुष बडे लंबे मार्गमें पाथेयके साथ गमन करता है वह पुरुष क्षुधा तृपासें रहित होके सुखी होता है

एव धम्मपि काऊण, जो गच्छइ पर भव ।
गच्छतो सो सुही होइ, अप्पकम्मे अवेयणे ॥४॥

'इसी प्रकार धर्म करके जो प्राणी परभवमें जाता है वह

प्राणी अल्प कर्मवाला होके और असाता वेदना रहित होके सुखी होता है. और विशेष प्रकारसे धर्मका प्रभाव कहते है की.

जिणधम्मोयं जीवाणं, अपुव्वो कप्पपायवो ।
सग्गापवग्गसुक्खाणं, फलाणं दायगो इमो ॥१॥

"यह जिनधर्म जीवोंको अपूर्व कल्पवृक्ष तुल्य है. कारणकी कल्पवृक्ष है सो इह लोकके सुखकों ही देता है. और जिनधर्मरूप कल्पवृक्ष है व स्वर्ग और मोक्षका सुखरूप फलोंको देनेवाला है. वास्ते जिनधर्मरूप कल्पवृक्षकों अपूर्व समझना"

धम्मो बंधू सुमित्तो अ, धम्मो य परमो गुरु ।
मुक्खमग्गे पयट्टाणं, धम्मो परमसंदणो ॥ १ ॥

"यह जगत्में जीवोंको धर्म बंधु समान है. जैसे आपत्ति कालमें भाई सहाय करता है वैसे ही आपत्तिमें आया. मनुष्यकों धर्म बराबर सहाय करता है. और धर्म हितकारक मित्र तुल्य है. जैसे सच्चा मित्र सद्बुद्धि देकर सन्मार्गमें लेजाता है वैसे धर्म प्राणकों सन्मार्गमें ले जाता है और धर्म सद्गुरु समान है. जैसे सद्गुरु महाराज उपदेश देकर प्राणीकों दुर्गतिमें जानेसे बचाते है वैसे धर्म भी प्राणीकों दुर्गतिमें नहि जाने देता. जैसे चीलातिपुत्र और दृढप्रहारी अर्जुनमाली आदी आदि घोर पापी जीवों भी चारित्र धर्मके प्रभावसे दुर्गतिमें न जाके देवलोक

और मोक्षमें विराजमान भये है वास्ते ही धर्म मोक्षमार्गमें गमन करनेवाले जीवोंको रथ समान कहा है. जैसा उत्तम रथ मार्गमें सुखसे ले जाता है और इच्छित नगरमें पहुचाता है. वैसे धर्म रूप रथ भी मोक्ष मार्गमें प्रवर्तित प्राणीको मोक्षमें सुख शान्तिसे पहुचाता है

ऐसा धर्म राजाका प्रचड प्रभाव होने परभी ससारमें रहे हुवे कई जीव धर्म करनेमें बहुत बेदरकार रहके धर्म मार्गमें प्रवृत्ति नहि करते है वैसे जीवोंसे नीचे लिखी बाते अवश्य लक्षमें लेनी चाहीये

धर्म करनेम बेदरकारी छोडके उद्यम करो?

ससारमें रहे हुवे कई मनुष्य धर्मको नतो शुभ कर्मके उदयमें आराधे नता अशुभ कर्मके उदयमें आरा धे, शुभ कर्मके उदय वाले बाह्य वस्तुको समालनेमें और नई २ और चीजें इकठी करनेका भ्रममें चिंतामणि रत्न जैसा अमुल्य समय खोते है और अशुभ कर्मके उदय वाले जीव भी बाह्य वस्तु मिलानेके कारण समय गुमाते है. तब और मनुष्य भवको सफल करनेके वास्ते उसका अमल कौन करेगा ? कब करगा? सारी जिंदगी तक बाह्य पौद्गलिक वस्तुको समालना और नया प्राप्त करना इत्यादिक ससारके कार्योमें फुरसत तो मिलतीही नहि और स्पष्ट कहते है की हमारा शुभ

कर्मका उदय होगा तब धर्म करनेकी भावना आपही आप जागृत होगी. अभी हमारे शुभ कर्मोंका उदय नहि पापका उदय है जिससे बनता नहि. ऐसा कहने वालाकों इतनाही पुछना की भाई! तुमने प्रयत्न किया? उद्यम किया? कुछभी धर्म कार्य करनेकी चिंता की है? यह सब करनेके बादभी न बन सके तो फिर माना जाय की अशुभोदय है. ये तो करना कुछ नहि और कहना की अशुभोदय है. ऐसा कुछ चलता नहि. व्यवहारमें एकवार धोखा खाते है. तो दूसरी तीसरी वेरभी प्रवृत्ति करतेही है. खानेमें पीनेमें गाडीमें बेठनेमें कमानेमें मिलना होगा तो मीलेगा ऐसा कहाजाता नहि. और उद्यम करते ही है वैसा ही यहां भी करना चाहीये. हमेशां गुरुमहाराजके पास आना. एक दिन भावना न होय तो दूसरे दिन आना. रोज भावना न होवे तो सुबोहमें सवेले उठके आत्माकों पुछे की हे आत्मा! संसारके कार्यमें तो खूब उद्यम कराता हैं तो फिर ऐसे शुभ कार्यमें जैसे सामायिक पडिक्कमणु, जिनपूजा, शास्त्रश्रवण, तत्वचिंतवन विगेरेमें तेरी प्रवृति क्या नहि होती? ऊठ! प्रवृत्ति कर! आत्मशुद्धि करनेका उपाय वीतरागका शासन ही है. इत्यादिक भावना करके उद्यम करेगा तो जरूर धर्म करनेका चित्त होगा. और धर्म करके आत्मशुद्धि जरूर कर सकेगा. परन्तु मेरा उदय नहि है उदय नहि है ऐसा मानके बेदरकारी करेगा तो आखी जिंदगी हार जायगा. और कुछभी कर सकेगा नहि. वास्ते चेत.

आत्मशुद्धि करनेके उपाय

वीतरागका शासन पाके धार्मिक कार्योंमें प्रवृत्ति करने वाला औरभी निरंतर उद्यम करनेवाला आत्मा चडते २ ग्रन्थि भेद करके सम्यक्त्वकों पाता है. ज्ञानी पुरुषो सम्यक्दृष्टि आत्माकों सनेत्र (देखने वाला) कहा है और मिथ्यादृष्टिकों अंध माना है जिससे सम्यक्दृष्टि आत्मा जगत्में रहे पदार्थोंकों जिस रूपसे है वैसे ही मानते है और इससे वह सच्चारित्रकी भावनासे रंगाहुआ रहता हैं और मोका देखके ही बैठा रहता है की —'कब इस संसार दावानलमेंसे निकलकर सर्वविरति अंगिकार करु, और मेरा आत्माकों इस संसारकी खडपटीसे बचाके शुद्ध करु और यह सम्यक्दृष्टिके सहवासमें जो कोई आता है उसकों भी सच्चा मार्ग दिखानेकी प्रेरणा करता है कृष्णमहाराजने अपनी लडकीओंकों संयम दिलवाके सुखी की आजकल भी कई उत्तम जीव अपने लडके लडकीओंकों जल्द मोक्षनगरमें पहुचानेके वास्ते त्याग धर्ममें योजते है (दीक्षा दिल-वाते) और संयममें स्थिर होनेकी सलाह देते है इसका कारण यही है की समकितदृष्टि जीव वीतरागके वचनसे जानते है की यह संसार तो दुःखका दावानल है और मोक्ष अनंत सुखका समुद्र है इस प्रकार वीतरागका वचनसे जान के संसारकों छोडनेकी ही अभिलाषा रखते है कदापि सर्वथा छुट नहिं सक्ता

तोभी देशसे भी छोड़के देशविरति बनता है. और चारित्रका परिणामी होता है. श्रीहेमचंद्रसूरिमहाराजकृत योगशास्त्रकी टीकामें कहा है कीः—

सर्वविरति लालसः खलुदेशविरति परिणामः
यति धर्मानुराग रहितानां तु गृहस्थानां—
देशविरतिरपि न सम्यक्

देश विरतिका परिणामभी निश्चय सर्वविरतिकी लालसा वाला होता है. वास्ते जिस गृहस्थोंको मुनिधर्मके उपर अनुराग नहि उन्होंको देशविरति याने अणुव्रतादि धारणरूप श्रावकत्वभी सच्चा नहि. परमात्मा महावीर देवके उपासक बननेका जो दावा रखते है वैसे जीवोंने तो नीचे दिये जाते महावीरप्रभुके वचन अपने हृदयमें बराबर धारण करने पड़ेंगे देखो परमात्माका वचन

श्लोकः—भो भो देवाणुप्पिया भिमे भवकाणणेपरिभमंता
दुह दावानलतत्ता जइवंछहसासयं ठाणं १
ताचरितनरेसर सरणंपविसेह सासय सुहट्ठा
चिरपरिचयंपिमोत्तूण कम्मपरिणाम निवसेवं २

हे देवानुप्रिय! भयकर ऐसे संसार रूप वनमें भटकते और दुःखरूप दावानलसे तप्त हो गये ऐसे तुम यदि शाश्वत्

स्थान जो मुक्ति पद उसको चाहते हैं तो शाश्वत सुखके वास्ते बहुत समयसे परिचित ऐसे भी कर्म परिणाम रूप राजाकी सेवा छोडके चारित्ररूप नरेशका शरण स्वीकारों इसके जरिये अपनी बुद्धिसे इतना तो समझ सकते हैं की जैन शास्त्रम सर्व विरति (दीक्षा) ही महान गिनी जाती है इस सासनको पाकर और महावीरप्रभुके वचनमें लीन भये हुए एसे बडी रिद्धि सिद्धिके मालिकभी इनके भोगोंमें लीन न होते हुये इसका त्याग करनेकी ही चिन्तामें मग्न रहते थे. इसके बारेमें अपने एक दृष्टांतका विचार करेंगे

श्रीउदायनमहाराजा परमात्मा श्रीमहावीरदेवके समयमें एक विशाल राज्यके स्वामी थे वैसाराजा भी वे पर्व तिथिमें सूर्ययशा राजाकी तरह पोषध करना चुक्ते नहि क्योंकी उसीमें अपना सचा हित समझते थे आजकलके पचमकालके जीवोंको पर्व तिथिका पोषध करनेमें बहुतमी बेदरकारी माल्लम पडती है. यह अच्छा नहि है उदायन राजा राज्यको नरककी बेडी समझते थे एकदिन वे महाराज रात्रिके समयमें पोषधमें भावनारूढ बनके वीतरागके वचन विचारने लगे सो इस प्रकार

जीवाण जलहि निवडिय रयणव सुदुल्लहमणुस्सत्त
तत्थवि आरियखित्त तओअ कुल जाइओ सुद्वा १
तत्तोय दुल्लह इह अहिण पचिंदिय जण सन्व

तम्मिवि निरोगत्तं तल्लाभे दीह माऊं च २
अह दुल्लह धम्ममइ तो गुरू जोगंमि धम्म सवणं च
एयंमि वि सद्दहणं तओ यं जिणदेसिया दिक्खा ३
तापत्तोए समए मणुयत्ताइण दुल्लहोलाहो
इक्क जिणंद दिक्खं दुक्खक्खय कारणं मुतुं ४
धन्ना जयम्मि जेहिं पत्तावालत्तणे वि जिण दिक्खा
जम्हाते जीवाणं न कारणं कम्म बंधस्स ५

अर्थः—समुद्रमें पड़े हुए रत्नकी तरह जीवोंकों मनुष्य जन्म अति दुर्लभ है. १ और फिरभी पंचेन्द्रियोंसे पूर्ण ऐसा रूप तो इस जगत्में दुर्लभ है. इसमें भी निरोगीपना दुर्लभ है, निरोगी पना मिलने परभी दीर्घायुष्यकी प्राप्ति दुर्लभ है २. यह सभी मिलने पर भी धर्मकी बुद्धि होना दुर्लभ है. धर्मकी मति होने परभी गुरुका योग होना कठीन है. गुरुका योग होने परभी धर्मका श्रवण होना दुर्लभ है. धर्मका श्रवण होने परभी उसके उपर श्रद्धा होना दुर्लभ है. श्रद्धा होनेपरभी श्रीजिनेश्वर देवोने फरमाई दीक्षाकी प्राप्ति होना अति दुर्लभ है. ३ मेरा सद्भाग्य है की इस समयमें दुःखके क्षयमें कारणभूत ऐसी एक जिन दीक्षाकों छोड़कर मनुष्यत्व आदिका दुर्लभ लाभ मुझे प्राप्त भया है. ४ इस जगतमें वे आत्माओंको धन्य है. की जो आत्मानें बालभावमें ही जिनदीक्षाकों प्राप्त कीये है. क्यों की वे आत्मा

जीवोंकी मति कर्म बधनके कारणभूत नहि होते इस प्रकारकी भावना करनेके बाद और बालदीक्षितोंका गुण गानेके बाद आपभी उसी सयमकी भावनामें आसक्त भये थे और विचारने लगेकी भगवान् महावीर प्रभु यदि यहा पधारें तो मैंभी जिनदीक्षाकों ग्रहण करु इसके बाद महावीर प्रभु तुरतही वहा पधारे और यह भाग्यशाली महाराजाने दीक्षा ग्रहण की और निरतिशय चारित्रका पालन करके आत्माका अखड आनद भोगनेके वास्ते मोक्षमें विराजमान भया इस प्रकार कोइ भाग्यशाली आत्मा दु खकी खानभूत ससारकों छोडके मोक्ष सुखके भागी बने है परन्तु हमारा उदय होगा तब धर्म करेंगे ऐसा कहकर बैठ नहि रहे है बारह चक्रवर्तिओंमें

१ भरतचक्रवर्ति	६ कुथनाथचक्रवर्ति
२ सगर ,,	७ अरनाथ ,,
३ मघवा ,,	८ महापद्म ,,
४ सनत्कुमार,,	९ हरिषेण ,,
५ शातिनाथ ,,	१० जय ,,

ये दश चक्रवर्तिओंने अपनी अथाह सपत्तिकों ठोकर मारके और चौसठ हजार स्त्रीयोंको तृण समान समझके छ खडकी प्रभुताका तिरस्कार करके दीक्षा ग्रहण कीये है उन्होंमें तीन तीर्थंकर चक्रवर्ति और पाच दूसरे मिलके आठतो

अनंतसुखका धाम जो मोक्ष वहां पहुंचे और तीसरे मघवा और चौथा सनत्कुमार देवलोकमें गये सोभी वहांसे चलित होके अल्पकालमेंही मोक्षमें जायंगे. और बाकीके सुभूम नामके आठवे और ब्रह्मदत्त नामक बारहवा यह दो चक्रवर्ति राज्यकी लोलुपतामें लोभांध बन जानेसे दीक्षा ग्रहण न कर सके जिससे आरंभ समारंभके कार्य करके सातवी नरकमें जहां अथाह वेदनायें है वहां गये. ज्ञानीका वचन है की, जो चक्रवर्ती संसार न छोड़े तो नरकमें ही जाय. [तत्वार्थ सूत्र अ. ६. सूत्र १६]

बह्वारम्भ परिग्रहत्वंच नारकस्यायुषः ॥

बहु आरंभ और परिग्रहपना यह नारकीके आयुष्यका आश्रव है. ज्ञानीके वचन विचारते है तो ज्यादा आरंभ परिग्रह नरककी असह्य वेदना उत्पन्न करता है, वास्ते जो २ चक्रवर्ती समझके संसारसे अलग भये. वही दुःखसे मुक्त भये. चक्रवर्तीओंको आरंभ परिग्रह अथाह होनेसे ही नरकमें उत्पन्न होते है. और संयम लेनेसे वे किये हुए आरंभ समारंभके पापसे मुक्त होके मुक्तिमें वा देवलोकमें जाते है. इससे सिद्ध होता है की, जगत्में उत्तममें उत्तम सुखका कारण आत्माकी शुद्धि करने वाला संयमही है. और कोई नहि. वास्ते जैनकुलमें जन्मपाया और प्रभु महावीरका शासन पाया आत्मा प्रभु महावीरको

माननेवाला कदापी दीक्षाका विरोध करही नही सक्ता और विरोध करे तो सो प्रभु महावीरकों नहि मानता है वैसाही समझा जाय यह स्पष्ट है भलेही बालक हो या युवान या वृद्ध परतु अनंतकालकी अथडाहटकों नाश करनेवाला जो सयम है उसकों ग्रहण करनेमें सभी अधिकारीकों प्रभु महावीरने सिद्धान्तमें कहे है भगवती सूत्र प्रमुख सिद्धान्तमें आठ वर्षमें सयम लेके कमसे कम एक वर्ष उत्कृष्टसे उत्कृष्ट क्रोड पूर्वसे कुछ न्यून सयम पालन करके केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्षमें जानेकी विना वो अनतज्ञानीओंनें बताइ है कई उत्तम जीव परलोकसे चलित होके लघुवयमेंही विरागी होकर गीतकों विलापके समान, नाटककों कायक्लेश समान, भोगोको राग समान, स्त्रीओंकों नागिनिके समान गिनके उत्तम चारित्र पात्र बनके आत्माकी शुद्धि करते है, इस विषयकी सब हकिकत उत्तराध्ययन सूत्रके चौदहवें अध्यायमें दो लघु बालकोंने छोटी उमरमेंही पूर्वभवीय आराधनाके प्रतापसे दीक्षा लीथी इसका दृष्टात मनन करें, जिससे लघुवय वाले अभीभि पूर्वभवकी आराधनासे दीक्षा ले सकते है ऐसा निश्चय अपनेकोंभी हं सक्ता है.

दो बालकोंका दृष्टात.

कोइ एक नगरमें साधु पुरुषोंकी सेवा करनेवाले दो

गोपथे सो दोनो गोपाल मुनिओंकी सेवाके प्रतापसे व्रतके आराधक बने. व्रतके आराधनसे देवलोकमें गये. कारणकी:-

व्रतं चेन्न मोक्षाय तर्हिस्वर्गाय जायते.

व्रतमे ऐसा गुनहैकी जो इसकी संपूर्ण आराधना होय तो अवश्य मोक्षकी प्राप्ति कराता है. परन्तु आराधनाकी क्षति होनेके कारण कदापि मोक्ष प्राप्त न हो सकातो देवलोकमें तो जरूर जाय. इससे ये दोनो देवोंने देवलोकसें चलित होके कोइ गृहस्थके घरमें जन्म लिया वहांभी संयमका आराधन करके प्रथम देवलोकमें गये. समकितदृष्टि देवताकों अवधिज्ञान होता है. और मिथ्यादृष्टि देवताकों विभंगज्ञान होता है. जिससे वस्तुकों बराबर देख न सके. यह दोनो उत्तम जीवोंने संयमका आराधन करके देवलोकमें गये समकितदृष्टि होनेसे अवधिज्ञानी वालोंने अपना ज्ञानसे निश्चय कियाकी हम पुरोहितके वहां उत्पन्न होंगे. वहांभी अपनेको धर्मकी प्राप्ति हो जाय इस हेतुसे मुनिका रूप करके पुरोहितके घर आये. पुरोहित और इसकी स्त्रीने प्रणाम किया. मुनिवरके पाससे धर्मदेशना सुनके पुरोहितने श्रावकधर्म अंगिकार किया. पुरोहितको पुत्र न होनेसे मुनिवरोंसे पूछा, हे पूज्यो हमें पुत्र होगा या नहि? यह प्रश्न सुनके मुनिरूप धारण करके आये हुवे देवताओंने कहाकी हे पुरोहित! तुम्हे दो पुत्र होंगे वे अच्छी बुद्धिवालें

होंगे और दोनो जगत्कों पूज्य ऐसी दीक्षाकों ग्रहण करेंगे वे दीक्षा ग्रहणकरनेके लिये तैयार होय उस समयमें तुम्हे उन्होंको अतराय नहि करना क्योंकी वे कई जीवोंको प्रतिबोध करेंगे.

इस प्रकार कहकर दोनो देवता चले गये फिर देवलोकसे चलित होके पुरोहितकी स्त्री यशाके गर्भसे उत्पन्न भये अपनी स्त्रीको सगर्भा देखके भृगुकों मुनिका वचन याद आया भृगु विचार करताहैकी मेरे जो पुत्र होंगे वेतो बाल अवस्थासेही दीक्षा लेंगे वास्ते ऐसी रचना करु की मेरे दोनो लडके जन्मभरही मुनिओंका दर्शनही न पावे मोहके प्रतापसे निश्चय करके अपना इसुकार नामका नगर छोड्के अपनी स्त्रीको लेके कोइ छोटे गावमें जा वसा मोह राजाका कितना प्रबल प्रताप है ? की जो श्रावकपना भूलकर न करनेका कार्य करता है

गावमें पुत्र युगलकों यशाने जन्म दीया अनुक्रमसे वृद्धि पाये. मातपीता शोचते है की कदापि यहाभी साधु आगये और यदि पुत्र देखेंगे तो दीक्षा ले लेंगे वास्ते मगही न होय ऐसी योजना करे पुत्रोंको मातापिता कहते है की हे पुत्रो ! मुड और दडको धारण करनेवाले और नीची दृष्टिसे चलनेवाले मुड बालकोंकों पकडके एकदम मार डालते है और

निर्दय ऐसे वे राक्षसकी तरह मार डाले हुये लड़केका मांस भक्षण करते है. वास्ते ऐसे साधुओंकी पास तुम्हे कभी जाना नहि और इन्होंका विश्वासभी करना नहि. मोहसे मूढ वने और ज्ञानचक्षु नष्ट भये है जिनके ऐसे मातापिताने उन वालकोंके हृदयमें भयंकर शल्यका प्रवेश करा दिया. इस शल्यसे दोनो वालक साधुओंसेभी डरने लगे. ऐसा अधर्मका कार्य करनेवाले मातापिताभी शत्रुभूत गिने जाते है. परंतु दोनो वालकोंका भाग्य अच्छा होनेसे कभी क्रिडाके वास्ते नगरसे वाहर गये और उसी रास्तेसे कई मुनिओंको आते देखा. मातापिताने प्रथमसेही डरानेके वास्ते कारण समजाये थे वे दोनो साधुओंसे डरके पासमें रहा वृक्षके उपर चढ़ गये. भाग्ययोगसे मुनिओंकाभी उसी वृक्षके नीचे आना भया. और वे अपनी शुद्धि क्रिया करके पृथ्विको साफ करके आहारादि जो प्रथममे लाये होंगे वो करने लगे. दोनो लड़कोने जो वृक्षके उपर वैठके आहारकी वस्तु जो स्वाभावीकथी सो देखी, और उन्होंका वर्तन चारित्र इत्यादि देखके शोचने लगे की अपने मातपिताने जो कहा है उसमेंका कुछभी विरूद्ध वर्तत इन महात्माओमें नहि है. और विचार करते है कीः—

आवामीदृशान् क्वापि श्रमणान दृष्ट पूर्विणौ।

क्या इस प्रकारके श्रमणोको हमे कभी कही देखा है.

इस प्रकार सुंदर विचारणा करते २ दोनो बालकोंको जातिस्मरण ज्ञान पैदा भया पूर्व आराधित मुनित्व स्मरणमें आया श्रमणपनाकी सुंदरता सर्व श्रेष्टता ख्यालमें आनेसे वे दोनो बालकोंने निर्णय कियाकी "मोहकी पराधीनतासे अपने मातापिताने हमकों झूठ कहकर ठगे ऐसा निर्णय करके वृक्ष उपरसे नीचे उतरके मुनिराजकों नमस्कार किया उन्होंके चरणोंमें नमन करके अपने घर आये घर जाके तुरतही अपने पिताके पास गये और कइ प्रकारके वचन कहे पिताने प्रतिवचन कहे आखिर मातापिताको समझाकर संयम स्वीकार किया आ कुमारको विरागी बने हुये देखके कुमारके मातापिता और नगरके राजाराणी विगेरा वैराग्य पाके संयमको स्वीकार करते भये. और संयममें पुरुपार्थ करके निरतिचार चारित्र पालन करके केवलज्ञान प्राप्त करके अनंत सुखका धाम जो मोक्ष वहा २ पहुचे. जो मातापिता मुनिराजकी पासभी अपने पुत्रोंको भेजनेमेंभी कट्टर विरोधि होतेथे वही मातपिता पुत्रोंको संयम लेनेकी आज्ञा देते है और अपनेभी दोनो पारमेश्वरी प्रव्रज्या अंगिकार करके आत्मकल्याण करते है इसका कारण चारित्र मोहनीय कर्मका क्षयोपशम होता हैं तबही जीव अपना आत्माकी शुद्धिके वास्ते तैयार होता हे इस दृष्टांतकी विशेष हकीकत उत्तराध्ययन सूत्रके चौदह वे अध्ययनमें खूब शास्त्रकाराने कही है परन्तु यहातो लेशमात्र दिग्दर्शनमात्र-समझना

इस दृष्टांतसे इतनातो सिद्ध होगया की पूर्वभवमें आराधना करके जन्म पाये वालकभी छोटी उम्मरमेंभी संयमके आराधक वनते है. वास्ते ऐसे उत्तम जीव पूर्वकी आराधनाके वलसे यह पंचम कालमेंभी आत्मकल्याण करनेको तैयार होय तो उसमें कोईकोभी अंतराय करके पाप वंधनमें आना कोई चालसे ठीक नहि है. जिंदगी कल पूरी हो जायगी. अकेलाही चलाजाना पड़ेगा यह सच्चा है. और ऐसे उत्तम कार्यमें अंतरा-यभूत वनके संचित किया कर्मको भवांतरमें भोगना पड़ेगा. ऐसे आगमके वचन भूलने योग्य नहि है. वीतरागका शासन पाये उत्तम मातापिता अपने वालकोको उन्नतिके शिखरपर पहुंचानेके वास्ते लघुवयमेंही संयम दिलाके सहायक वनके पुण्यानुवंधी पुण्यके भागी वनते है. तव कितने स्थूलकर्मी जीव अंतरायभूत होके कर्मवंधनमें उत्तरके संसारको वढ़ाते है यहां कोई शंका करे की यह पंचमकालमें लघुवयके वालक संयमका पालन नहि कर सकते" ऐसा वोलनेवालाको कहना की तुमारा कहना तुमारी मति अनुसार चल नहि सकता. लोकोत्तर मार्गमें ज्ञानीके वचन आगे वताने चाहीये. देखो ज्ञानीके वचन विचारो! जैनशासनमें सभीको मान्य और परम प्रमाणिक माने जाते सुविहित शिरोमणि श्रीहरिभद्रसूरीश्वरजी महाराजा पञ्चवस्तुक नामके ग्रन्थमें दीक्षाके योग्य आत्माकी वय कवतक वीतराग परमात्माओने स्वीकारी है. यह वताते लिखते है कीः—

एएसि वय पमाण अठसमा उत्तिवीअरागेहि ।
भणियजहन्नय खलु उक्कोस अणव गह्लोहि ॥१॥

श्री वीतराग परमात्माओंने दीक्षा के माय आत्माओंका जघन्य वयः प्रमाण आठ वर्ष तक कहाहै और उत्कृष्ट वय-प्रमाण जबतक अतिशय वृद्धावस्था प्राप्त न होय तब तकका रहा है अर्थात् आठ वर्षसे आरंभसे अतिशय वृद्धावस्था न आवे तबतक मनुष्यमें दीक्षाकी योग्यता है ऐसा फरमाते है. इस प्रकारके ज्ञानिओंके वचनसे ही आठ वर्षसे ही बालक दीक्षाके योग्य है यह चोकस समझके दीक्षाकी भावनावाले बालकोंके आत्मकल्याणमें अंतराय नहि होना प्रभु महावीर परमात्माका शासन अभी साडे अढारह हजार वर्षसे अधिक चलेगा. इसमें अभी कई भाग्यवंत युग प्रधान होने वाले है उसमें लघुवयके बालक भी संयम लेके कई युगप्रधान भी होंगे तो फिर बालकोंकों की बडेकों दीक्षा लेते रोकना और पाप बंधनमें उतरना सो रोकने वालेका आत्माकों बहुत नुस्सानकारक है वास्ते ऐसा न करके संयम ग्रहण करने वालेकों उत्साही बनानेके लिये हित वचन कहना की'–"हे पुत्र संयम पालनमें प्रमादकों लेशमात्र अवकाश देना नहि और गुर्वादिककी आज्ञामें रहके ज्ञानदर्शन चारित्रका आराधन बराबर करना. आत्माकी शुद्धि इस रत्नत्रयीके आराधन विना भूतकालमें कोईने नहि की

वर्तमानमें कोई करता नहि, भविष्यमें कोई करेगा नहि. वास्ते महान् पुण्यका उदयसे प्राप्त भया संयमका बराबर रक्षण करके आत्माकों उज्वल बनाना इस प्रकार हित शिक्षादेना एहिज धर्मी माता पिताका कर्तव्य समझना.और हितशिक्षा देनेवाले मातापितादिकोकों भी अचिन्त्य चिन्तामणि समान वीतरागके धर्म मार्गमेंही प्रवृत्ति करना और सर्व विरतिकी भावना हृदयमें रखना कदापि सर्व विरति न ले सके तो देश विरति अंगिकार करना यहभी कदापि न बने तो समकित दृष्टि तो जरूर बनना. जिससे क्रमशः भी आत्मशुद्धि हो सकेगी. इस प्रकार आत्मशुद्धिके उपाय समझना कई मोहान्ध जीव धर्मका स्वरूप न समझके लक्ष्मीकी लालसासे एक दूसरेका बुरा चिंतन करके इर्ष्या करके अनेक प्रकारके पाप करके नरकादि दुर्गतिके भाजन होते है. और नरकादिमें घोर वेदना सहन करते है.

लक्ष्मीनी चंचळता.

(राग-ए व्रत जगमां दीवो मेरे प्यारे.. .)

ए ऋद्धि अस्थिर प्रमाणो, हो प्राणी!
ए ऋद्धि अस्थिर प्रमाणो, मोह करो छो श्यानो हो प्राणी.
नंदे सोवननी डुंगरी करी पण, लइने गयो नहि कटको;
काया माया वादळ छांया, छे दिन चारनो चटको....हो प्राणी.

मम्मण शेठे वेठ करी भले, भेळी लक्ष्मी बहु कीधी,
अन्तसमे सहु मूकीने चाल्यो, पाइ न साथे लीधी हो प्राणी
मार्गानुसारीना गुण पात्रीशने. अतरमांही उतारो,
न्यायोपार्जित वित्त वरीने, खर्चो खाते हजारो हो प्राणी
साते क्षेत्रे वापरी पैसो, जीवन जरुर सुधारों,
प्रभु "भक्ति" वळी नित्य करीने, सफळ करो जन्मारो
हो प्राणी' ए ऋद्धि अस्थिर प्रमाणो

देखो धवल शेठने श्रीपालराजा महापुण्यशाली अहोनिश नवपदका ध्यान करनेवालाकी लक्ष्मी लेलेनेके वास्ते बुरा चिंतन किया और फिर श्रीपालको समुद्रमें फेंक देनेका प्रपच रचा और समुद्रमें डाला, सिद्धचक्रजीके ध्यानसे मीनके उपर चढकर समुद्रसे बहार निकला और आखिर पापका उदय होनेसे धवल शेठ ही सातवी मजीलसे नीचे गिरा और मरकर सातवा नरकमें गया दूसरेका बुरा चिंतन करनेसे सुखी कैसा होय? यह हकीकत श्रीपाल चरित्रमें है

औरभी एक शेठने अपने नोकरको दु खी करना बहुत उद्यम कीया परन्तु उस नोकरका पुण्य प्रबल था जिससे चडालके पास मरवा डालनेका खानगी दावपेच करनेपरभी चडालने उसकों छोड़ दिया दूसरी दफे विष देनेका बंदोबस्त किया

तो वहां विपती दूर रहा परन्तु उसी शेठकी लड़कीकी साथ सादी भई. तीसरी वार मार डालनेका प्रपंच रचा तो वहां शेठ काही पुत्र मारा गया. जितना २ शेठने उसकी विरुद्ध चिंतन किया उतना २ इसके पुण्यसे मुलटा भया. आखिरमें शेठही पुत्रका मरण शोकसे दुःखी होनेके कारण मर गया. और मरके सातवा नरकमें गया और इसीसे यह नोकरही अव शेठका जामात होनेसे सभी मिलकतका मालिक भया. सज्जनो! विचार करो, दूसरेकी ईर्ष्या करोगे तो तुम कहांसे सुखी होंगे? यह अधिकार गौतमपृच्छामें है.

आज कल कई जीव दूसरेको सुखी देखके अंतरमें जलते है और ईर्ष्या करके अपना आत्माकों पापसे भरते है मनमें विचार करते है की इतनी ज्यादी ऋद्धि सिद्धि इसकों भई और मुझे क्यों नहि? वास्तेइसकी ऋद्धिका फेराफर करवा डाल, ऐसे विचार करनेसे पापके बंधन सिवाय दूसरा कुछ हाथमें नहि आता. क्योंकी सामनेवालाका पुण्य प्रबल होगा तब तक तेरेसे कुछ होनेवाला नहि ईर्ष्या करनेवाला जीव अपना शुभ कर्मका लाभ खोके भवांतरमें दुःखी होते है. उसके उपर कुंतलदेवी रानीका दृष्टांत मनन पूर्वक विचारी ईर्ष्यासे हे चेतन दूर रहके आत्मसाधन करना.

कुंतलदेवी राणीका दृष्टांत.

इस भारत वर्षमें इन्द्रकी नगरीके समान अवनिपूर नामका

नगर है उसमें जितशत्रु नाम राजा है उस राजाको पाचशो रानीया थी वे सभी उदार और पुण्य कार्यमें वडी आदरवाली थी उन सभीमें कुतलदेवी नाम पटरानी मात्र बहारसेही भली मालुम होती थी दूसरी रानीया निष्कपटभावसे धर्मकार्यमें तत्पर रहती थी इस लिये वे तत्वत सुशोभित थी सभी रानीओंको राजाकी कृपासे कई संपत्तिया प्राप्त थी इससे राणीओने अद्-भूत चैत्य बनवाये और उन चैत्योंमें उन्होने सुवर्णादिककी सुदर जिनप्रतिमायें स्थापित करादी उत्तम जीवोंका भाव निरतर पुण्य कर्ममें वृद्धिगत होता है उन चैत्योमें वे निरतर स्नानादिक वडे उत्सव करने लगी. क्योंकी चैत्योंमें वडी पूजायें करनेमें आवे सो अपनेको और अन्यको बोधी बीजका कारण है वे सभी रानीयाके उपर वक्र हृदयवाली कुतलदेवी ईर्ष्या करतीथी इसीसे इसने सुवर्णका वडा भारी ऊचा चैत्य बनवाया उसमें पूजादिक समग्र कार्य विशेष करके करने लगी क्योंकी ईर्ष्या वाले जीव अपने उत्कर्षके लिये और औरोंके अपकर्षके लिये प्रयत्न किया करते है दूसरी सभी राणीया सरल थी वे भक्तिसे जो २ उत्सव करतीथी वे २ उत्सवोंसे मारे ईर्ष्यासे कुतलादेवी घुणा करने लगी तथापि और रानीया तो कुतलादेवीकी प्रससाही करती रही की —अहो! यह कुतलादेवीकी संपत्तिकी कौन नहि स्तुति करेगा? की जो इस प्रकार जिनेश्वरकी अद्भूत भक्ति करती है.

इस प्रकार सभी रानीयां कुंतलादेवीकी प्रशंसा करती थी परन्तु यह कुंतलादेवीका मत्सर उनका बड़ा पुण्यका नाशक भया क्योंकी जो विष है वह स्वादिष्ट अच्छे भोजनकों भी दूषित करता है. सपत्नीके चैत्योसें मनोहर वाजित्रका शब्द होता था सोभी इसके कानमें आनेसे तीव्र ज्वर उत्पादक होता था. एकंदर जो कुछ इन्होंके चैत्योमें जो २ सुंदर कार्य होते थे वे उन्हे देखके कुंतलदेवी दुःखी होती थी. इस प्रकार द्वेषका दुःखसे पीड़ाती व्याधिसे अधिक पीडाने लगी. इस जन्ममें दुष्ट कर्म उदय होनेसे आखिर दुष्ट अवस्थाकों प्राप्त भई. जिससें की उन्हे देखकर सभी कोई उसकी निंदा करा ने लगे. राजाने भी अपनेसे अलग की आखिर कालधर्म पाके ईर्ष्याके कारण कुत्ती भई. ईर्ष्यालु मनुष्य पुण्यवान् होय तोभी इसकी शुभ गति नहि होती. यह कुत्ती चैत्यके भीतर वारंवार आना जाना करने लगी. क्योंकी पूर्व जन्मके अभ्याससे किया शुभ व अशुभ कर्म वही अन्यजन्ममें प्राप्त होते है दूसरी सभी रानीयां हर्षसे अपने तथा कुंतलदेवीके चैत्योंको पूजती थी. क्योंकी सत्पुरुषोंको कोईभी कार्यमें यह मेरा और यह दूसरेका ऐसी बुद्धि होती नहि तो फिर धर्मकार्यमें तो हो ही कैसे सकती? कभी उस नगरके उद्यानमें केवलज्ञानी मुनि पधारे. यह सुनकर अंतःपुर और परिवार सहित राजाने केवलीके पास जाके प्रणाम किया. देशनाके अंतमें हर्षित वनी रानीओंने गुरुकों

पुछा की —वे पुण्यशालिनी कुतल्देवी कहा पैदा भई है? गुरुने कहा ईर्ष्यासे इसका गर्व वृद्धिगत भया था उससे कुतलदेवीने पुण्यकों मलीन किया है. बहुत विस्तृत भया हुआ मत्सरभावसे सचित कुकर्मके योगसे मरकर अपने चैत्यकी सामने कुत्ती भई है सभी धर्ममें ईर्ष्याका त्याग करना चाहीये नहि तो पुण्यका विनाश होता है इस प्रकार केवली महाराजकी देशना सुनके चतुर रानीया अत्यत वैराग्यको ग्रहण करने लगी क्योंकी भव्य प्राणी कुकर्मका फल सुनके जल्द वैराग्यकों प्राप्त होते है इसके बाद सभी रानीया चैत्यमें आके जिनेश्वरकों नमस्कार करके स्नेह करुणा और आश्चर्य सहित उस कुत्तीकों देखके उसके पास भोजन रखके वैराग्यका वचन कहने लगी 'हे भद्रे! तुने पूर्वभवमें यह चैत्य बनवाया है इसके सीवा औरभी दानादि पुण्य बहुत किया है परतु यह सभी पुण्य तेरी ईर्ष्याने धो डाला है और ईर्ष्यासेही ऐसी निंद्य गतिकों प्राप्त भई है. तु तो पूर्वभवमें राजाकी पटरानी कुतलदेवी था" ऐसे वचन सुनके यह कुत्ती सभ्रात होके विचारने लगी की —"मेरे उपर प्रेमे रखनेवाली ये स्त्रीया कौन है? क्या कहती है? यह मदिर क्या है? मैने यह कहा देखा है? इत्यादि तर्क वितर्क करते २ उनकों जातिस्मरण ज्ञान भया और तब अपना पूर्व किया पुण्य और ईर्ष्या यह सभीका ज्ञान हूआ जिससे वह अत्यत वैराग्य पाके वारवार पूर्वके निंदा ईर्ष्यादि दुष्कर्मकों निंदने लगी फिर

केवलीभगवानके पास जाके सभी कर्मकी आलोचना करके अणसण ग्रहण करके सात दिन अणसण पालण करके स्वर्गमें गई. इस प्रकार ईर्ष्याका परिणाम अत्यंत दुष्ट समझके हे आत्मा! कभी कोईके उपर ईर्ष्या करना नहि. और नाहक ऐसे खोटे मार्गमें गमन करके दुःखी होनेका प्रयत्न भी करना नहि. और लक्ष्मी प्राप्त करनेके वास्ते अनीति ईर्ष्या या कुड़ कपट करके छल कपट करके लक्ष्मी मिलाने चाहता है परन्तु इस प्रकार नहि मिलेगी. और भवांतरमें दुर्गतिके असह्य दुःख भोगने पड़ेंगे.पापके फल तो तुम्को अकेलेको ही भोगना होगा उसमें लेशमात्रभी भाग कोई लेगा नहि.

नंदराजा सोनाकी नव डुंगरीयां (छोटे २ पर्वत) छोड़के चला गया परन्तु उसमेंसे थोडासाभी सोना अपनी साथ ले जाने सका नहि. प्रथम बताया सागर श्रेष्ठी चौवीस करोड़ सोनामहोरका स्वामी होनेपरभी पापके उदयसे खाली हाथसे सातवा नरकमें गया. औरभी कई राजायें चक्रवर्तियें, वासुदेवें अथाह लक्ष्मी छोड़के परभवमें पापके जोरसे नरक तीर्यंच-गतिमें चले गये है, इसके कई दृष्टांत शास्त्रमें अपने सुनते है. तौभी लक्ष्मी हाय लक्ष्मी करते है. लक्ष्मीके वास्ते झूठ बोलना लक्ष्मीके वास्ते सामायकादिक पडिक्कमणा पोषह विगेरे न करना अनीतिकी दृष्टि करना दगाबाजी कुड़कपटका आदर

करना, प्रमाणिकताको निकाल बाहर करना, जिनवाणी सुननेका अपूर्व सुवर्ण जैसा अवसर मिलने परभी लक्ष्मीके वास्ते निष्फल करना आखिर जिंदगीको रद करना और मार्गानुसारीके गुणोंकोंभी तिलाजली देना ऐसे अनर्थकारी कार्योंसे हे चेतनराज! मनुष्यभव कैसे सुधारोगे! वास्ते मनुष्य भवको सफल करनेके वास्ते उपर बताये दोषोंको दूर करके प्रमाणिकता प्राप्त करके नीतिका आदर करो नीति पूर्वक मर्यादा सहित धन उपार्जन करके शुभ मार्गमें खर्च करके भवातरका भाथा-पाथेय बाधलो अनीतिसे इकट्ठा किया धन आनद नहि देगा परभवकों ता बिगाडही देगा इस भवमेंभी अनेक प्रकारके दोषोंसे बध जाओगे कोई विश्वासही नहि करेगा।

देखो! फक्त एक रुपयाका एक शेर रुई एक वनीयाने दो रुपयाका कहकर एक गडरीयाको दिया एक रुपया अनीतिसे पैदा किया। इस रुपयाका घेवर खानेके वास्ते मगाये घरमें दामाद आया घेवर वो वही खा गया शेठ घरमें आया घेवरकों देखा नहि दामादके खाजानेसे बहुत विचारने लगा अरे! मैंने यह क्या किया भेडीयाकों ठगके रुपया पैदा ता किया। पाप शिरपर ओढा और घेवर तो दूसराही खा गया इस प्रकार शुभ विचार होनेसे ज्ञानदशा जागी मुनिराजका समागम हुआ। आखिर वैराग्य पाके लक्ष्मी उपरसे मोह उठाके ससारका त्याग करके आत्मश्रेय किया जिस प्रकार उस शेठने

अनीति करके पीछेसे शुभ विचार आनेसे उच्च कोटीका कार्य किया, अनीतिको हटायी. वैसेही हे जीव! तु कदापी एक दो वार अनीति करचुका होय तोभी अब इसका पश्चात्ताप करके फिरसे ऐसा न करनेके वास्ते उद्यमवंत होजा. परन्तु हमेशा यदि इसी प्रकार किया करेगा तो फिर पापका वोजा कैसा हलका हो सकेगा? और कदाचित् अज्ञानतासे देवद्रव्य, ज्ञानद्रव्य यदि तेरे घरमें रह गया होय और तेरी जिंदगी पूरी हो गई और पीछेसेभी कदापि कोईने नहि चुकाया तो यह द्रव्य तेरे अनेक जन्मोंको विगाड़ देगा. वास्ते कभीभी एक पैसाभी देवद्रव्य, ज्ञानद्रव्य या और कोई धार्मिक खातेके द्रव्य रखना नहि. जरा ध्यान देनाकी श्राद्धविधिमें सागर शेठने एक रुपयाकी अस्सी कांकणी होय ऐसी एक हजार कांकणी घरमें रखनेसे इसका कैसा हाल हवाल भया? इसका दृष्टांतकों जरा सोचो जिससे तेरे ज्ञान चक्षु जरा वीकस्वर होंगे.

देवद्रव्य भक्षण करनेपर सागर शेठका दृष्टांत.

सांकेतन नगरमे सागर शेठ नामका परम दृढधर्मी श्रावक था. जिससे उसकों गांवके श्रावकोंने मिलकर कितनाही देवद्रव्य दिया और कहाकी:—'देरासरके बढ़ई सुथार, पेसराज–कडिया, और मजुरोंको इसमेंसे चुकाते रहना और इसका हिसाव हमे वतलाना. पीछेसे नगरशेठ लोभांध होके

बढाई पेसराज और मजुरोंको नगद द्रव्य न देकर देवद्रव्यमेंसे सस्ती किमतके धान्य, घी, गुड, तैल, वस्त्र विगेरे खरीद करके दे और बीचमें नफा रहे सो अपने गरमें रक्खें इस प्रकार एक हजार काकणीका नफा उसने अपने घरमें रक्खा फक्त इतनाही देव द्रव्यके उपभोगसे इसने अत्यंत घोर दुष्कर्म किया. और इस दुष्कर्मको पुण्यसे नाश विना कियेही मरण पाकर समुद्रमें जलमनुष्य भया

अब उस जल मनुष्यके मस्तकमें रहता गोलीरूप रत्नके वास्ते कई प्रपचसे उसकों पकडके समुद्रकिनारे पर रहनेवाले परमाधर्मि जैसे निर्दय लोकोने बडे वज्र जैसी कठीन चक्कीमें रखके पीसनेसे उत्पन्न होनेवाली अद्भुत वेदना भोगके मरकर तीसरी नरकमें नारकी जीव उत्पन्न भया

उसके बाद यह सागर शेठका जीव नारकीमेंसे निकलके बडे समुद्रमें पाचसो धनुष्य प्रमाण बडा शरीरवाला मत्स्य उत्पन्न भया उसको माछीमारने पकडके अंगोपांग छेदन करके महा वेदना उत्पन्न करके महादु खसे मरकर आखिर चौथा नरकमें गया. इसके बाद एक एक भव बीचमें तिर्यञ्चका करके पांचवा छठ्ठा सातवा नरकमें दो २ वार उत्पन्न भया. इसके बादभी देवद्रव्यका एक हजार काकणी जितना द्रव्य भोगा होनेसे एक हजार भव भेड उत्पन्न भया एक हजार वार खरगोश हुआ

एकहजार वार मृग भया. एकहजार वार शियाल, हजार वार बिल्ली, हजार वार उंदर, हजारवार नकुल, हजार वार पल्ली, हजार वार सर्प, हजार वार विच्छु, हजार वार विष्टाका कीट, ऐसे हजार २ भवकी संख्यासे पृथ्वीमें. जलमें, अग्निमें. वायुमें, वनस्पतिमें, शंखमें, छीपमें, इयलमें, चिवडीमें, पतंगमें, मखीमें, भ्रमरमें, मत्स्यमे, कछुआमें, भैंसमें, वैलमें, ऊंटमें, खच्चरमें, घोड़ेमें, हाथीमें, अनेक प्रकारके भव करके प्रायः सभी भवमें शस्त्रघात विगेरासे होती महावेदनायें सहन करके मरा. हे चेतन! विचार कर. एक हजार कांकणीने आत्माका सत्यानाश किया. पापका पार रहा नहि. अभी इतनेसे विरत नहि होते मनुष्य भवमेंभी उत्पन्न भया. वहां जिस जगह यह जीव उत्पन्न होय वहां कोइका धन नाश हो जाय कोइका घरमें चोरोंका प्रवेश होय, कोई जगह अग्नि वीगेरे उत्पन्न होनेसे कोई जगह उसको खडा रहनेका स्थानभी न मिले. ऐसी अनेक विडंबना भोगनेमें सागरशेठने कमी न रक्खी थी. आखिर नये २ भव करके बहुतकाल भ्रमण करनेके वाद एक ज्ञानी गुरुमहाराज मिले. उन्होंको नमन करके अपने पूर्व भवके किये कर्मका स्वरूप पूछने लगा. मुनिमहाराजने सागरशेठका भवसे आरंभ करके सर्व यथास्थित स्वरूप कह बतलाया. उसने अत्यंत पश्चात्ताप पूर्वक देवद्रव्य भक्षण करनेका प्रायश्चित मांगा मुनिराजने कहाकी तुमने जितना द्रव्य खाया इससे ज्यादा वापीस दे दे

और अब आगे देवद्रव्यका रक्षण कर वृद्धि कर इससे तेरा सभी कर्म नष्ट होगा सर्व प्रकारके सुख भोग और सपत्तिकी प्राप्ति होगी यही उपाय है और नहि है इसके बाद उसने मुनि समक्ष नियम क्रियाकी जबतक भक्षण किया देवद्रव्यसे हजार गुना अधिक वापस न देदु तबतक भोजन मात्र और वस्त्र मात्रसे अधिक कुछभी पास न रक्खु ऐसा अभिग्रह करके श्रावकके निर्मल व्रत लिये उसके बाद जहा २ व्यापार करे वहा २ बहुत लाभ मिले अनुक्रमसे धनकी वृद्धि भई हजार काकणीका जो ऋण था इसके अपक्षो लक्ष गुना द्रव्य देके देव द्रव्यके ऋणसे मुक्त भया इसके बाद जैसे २ व्यापार करे वैसे २ अत्यत वृद्धि भई अपने देशकी उत्तर गया वहा राजाने बहुत सन्मान किया इसके बाद ग्राम नगर विगेरा कई जगह अपने द्रव्यसे नवीन जिनमदिर बनवाये इसकी समाल करी देवद्रव्यकी खूब वृद्धिकी नित्य महोत्सव करके जिन शासनकी उन्नति करनी करानी इत्यादी कार्योंमे अग्रसर होकर दीन दुखी जनोंका उद्धार करके अपनी लक्ष्मीका सदुपयोग करके अर्हत् पदकी भक्तिमें लीन होके तीर्थंकर नाम उपार्जन किया इसके बाद कई शुभकार्य करके आखिर दीक्षा अगिकार करके शुद्ध चारित्र्य पालन करके सर्वार्थसिद्ध विमानमें गया और वहासे महाविदेहमें तीर्थंकर लक्ष्मी भोगके कई जीवोंका अनहद उपकार करके मोक्षमें विराजमान भया

हे आत्मा! विचार कर २ देवद्रव्य भक्षण करनेकी प्रवृत्ति करनेमें कैसा हाल होता हैं? सहजही देवद्रव्यमें देनदार वन जाते है. फिर आलोयण विना लिये देवद्रव्य विना दिये आत्माका उद्धार नहि होता. वास्ते चेतते रहना. देवद्रव्यकी वढ़ती करना किन्तु देनदार हाके अनेक भव विगाड़ना नहि चाहीये. और विगाड़ेगा तो सुधारना वडा मुश्कील है. वास्ते खूव ख्याल रखना चाहिये. देवद्रव्यका ऋण तो दूरही रहा. परन्तु देरासरजीमें जलाये दीपकसेभी अपना कार्य करनेवालाकी वहुत खरावी होती है. इसके उपर एक उटडीका दृष्टांत.

उंटडीका दृष्टांत.

इन्द्रपुर नगरमें देवसेन नामक एक गृहस्थ रहताथा उसको धनसेन नामक उंटकों समालनेवाला एक नोकर था. इस धनसेनके घरसे एक उंटनी हमेशां देवसेनके घर जाके खडी रहतीथी. धनसेन उसकों खूव पीटे तथापि देवसेनका घर छोड़े नहि. कदापि मारकुटके धनसेन उसकों अपने घर ले-जाय के चाहे जैसा वंधनसें वांधे तथापि उसकों तोड़के फिर देवसेनके घर जाके खडी रहे. कदाचित् ऐसा न भयातो धनसेनका घर कुछभी खाय नहि. और चिल्लाहट कर डाले. आखिरमें देवसेनके घरमें आजाय तवही रहे. ऐसा देखके देवसेनने उसका मूल्य देकर अपने घरके अंगनमें वांध रखी

यह उटनी देवसेनको देखके बडी प्रसन्न होतीथी. ऐसा होते २ दोनोको परस्पर प्रीती उत्पन्न भई कभी ज्ञानी गुरु मिले तब देवसेनने पूछा —'महाराजजो ! इस उटनीको मेरे साथ क्या सबंध है? जिससे यह मेरा घर छोडती ही नहि. और मुझे देखके खुशी होती है.' गुरुमहाराजने उत्तर दिया की पूर्वजन्ममें यह उटनी तेरी माता थी तुमने देरासरजीमें प्रभुके पास दीपक जलाया था. उस दीपकके उजीयालेसे इसने अपने घरके काम किये थे और एकवार धूपदानमेंसे आग लेकर चूला सुलगाया था इस कर्मबंधनसे मरण पाके उटनी भई है वास्ते तेरे उपर प्रेम रखती है शास्त्रमें कहा है कीः—

जो जिणवराण हेहु, दीप, धुव च करिअ निजकज्ञ ।
मोहेण कुणइ मुढो, तिरिअत्त सोलहइ बहुसो ॥

जो प्राणी अज्ञानवासे जिनेश्वर भगवतके पास जलाये दीपकसे की धूप पात्रमें रही हुई आगसे अपने घरके कार्य करते है वह प्राय. तिर्यंच होते हैं इतनेही वास्ते देवके दीपसे पत्रभी पढना नहि चाहीये. घरका कामभी करना नहि नहि ता इस औरतकी तरह तिर्यंच योनि प्राप्त होगी

और विमानकरादिये छत्र, चामर, कळश इत्यादि देवद्रव्य अपने घरके काममें जो मूर्खता करते तो सो परभवमें बहुत दु खी होता है वास्ते बराबर लक्षमें रखना चाहिये

औरभी ज्ञानद्रव्य और साधारण द्रव्यका नुकसान करनेसेभी भवांतरमे कइ विडंबना भोगनी पडती है. इस विषयमें श्राद्धविधिमें बताया हुआ.

कर्मसार और पुण्यसारका छोटा दृष्टांत.

जोधपुर नगरमें चौवीस करोड सौनामुहरका स्वामी धनावह नामका शेठ और धनवती नामक इसकी पत्नी रहतेथे. उनकों जोड़ले जन्मे कर्मसार और पुण्यासार नामक दो पुत्र थे.

धनावह शेठने दोनो भाइओंको बारह २ करोड़ रुपैये बांट दीये. और अपने अपनी धनवती स्त्रीके साथ आत्महितके वास्ते दीक्षा ग्रहण करके अपना आत्माका उद्धार करके देवलोकमें गये.

पीछेसे कर्मसारका द्रव्य कुव्यापार विगेरेमें नष्ट हो गया. पुण्यसारका द्रव्य चोरोंने चोरी कर लिया दोनो भाई एक समानही दरिद्र बन गये और अपने कुटुंबमेंभी अमान्य हो गये. स्त्रीयांभी भूखे मरने लगी इससे उन्होंके मातापिताने अपने घर बुला ली. उसके बाद दोनो भाई. विदेश चले गये. वहांभी जगह २ विडम्बना और दुःखके सिवाय सुख लेशभी नहि पाये पुण्यसारकों देवीका प्रभावसे चिंतामणी रत्न प्राप्त भया सोभी भाग्य हीनतासे समुद्रमें गिर गया. दुःखकी सीमा

न रही कितना समय तक ऐसेही भटकके अपने देशमें वापीस आये तो एक ज्ञानी गुरु मिले. उन्हसे अपना भाग्य पूछा मुनिराज कहते है की.—

तुम दोनो पूर्वभवमें चन्द्रपुर नगरमें जिनदत्त और जिनदास नामके परम श्रावक थे एक वरत्त गोत्रके श्रावकोने मिलके तुम्हे अच्छे श्रावक समझके जिनदत्तको ज्ञान द्रव्य और जिनदासको साधारण द्रव्य समालनेके वास्ते दिया. तुम दोनो अच्छा प्रकारसे रक्षा करते थ एक दिन जिनदत्तको अपने कार्यके वास्ते एक पुस्तक लिखानेकी जरूर त होनेसे लहीयासे लिखवा लिया परन्तु इसका पैसा देनेका दूसरा रास्ता न होनेके कारण मनमें सोचाकी—"यहभी ज्ञानही लिखायाहैना ! तो ज्ञान द्रव्यमेंसे देनेमें क्या हरकत है ? ऐसा समझके अपने पुस्तककी लिखाईका सिर्फ बारह रुपया ज्ञान खातेमेसे दे दिया जिनदासकोभी एकवार सचमुच अडचन था. तब सोचाकी—यह द्रव्य साधारण खातेमें खर्चनेका है मैंभी निर्धन श्रावक हु तो मुझे लेनेमें क्या हरकत है ? ऐसा विचार करके साधारणकी थैलीमेंसे सीर्फ बारह रुपया लेके अपने घरमें खर्च किया. ऐसा तुम दोनोने विना इजाजत ज्ञान द्रव्य और साधारण द्रव्य लिया था. जिससे कालधर्म पाके पहिले नरकमें नारकी जीव उत्पन्न भये नरकमेंसे निकलके तुम

दोनो सर्प भये और मरण धर्मसे दूसरे नरकमें गये वहांसे छुटकर गीध भये. पीछे तीसरे नरकमें गये. ऐसा एक २ भव तिर्यंच और एक २ भव नरक ऐसे सातो नरकमें घुमके पीछे एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय. चतुरिन्द्रिय, तिर्यंच. पंचेन्द्रिय. ऐसे बारह हजार भवमें खूब दुःख भोगके कई कर्मका क्षय करके तुम दोनोने मनुष्य भव लिया है. तुम दोनोने बारह २ रुपयाका उपभोग कियाथा वास्ते बारह हजार भव तक ऐसे विकट दुःख भोगे. इस भवमेंभी बारह करोड सोनैया पाके पीछेसे खोया. उसके बादभी धन पाके खोया. कईवार दासकर्म किया कर्मसारसे पूर्व भवमें ज्ञान-द्रव्यका उपभोग कियाथा इस वास्ते इसको इस भवमें मंदबुद्धिता और निर्बुद्धिताकी प्राप्ति हो गई.

उपर मुजब मुनिके वचन सुनकर दोनो जन अधिक खेद करने लगे. मुनिराजने धर्मोपदेश दीया. जिससे बोध पाके ज्ञानद्रव्य और साधारण द्रव्यके भक्षण कीये बारह २ रुपयेके बदलेमें हजार रुपया जबतक हम उन दोनो खातेमें न दे तब-तक अन्नवस्त्र विना जो कुछ कमायेंगे सभी उसमें दे देंगे. ऐसा मुनिराजके पास नियम करके श्रावक धर्म अंगिकार करके व्यापार करने लगे. उसके बाद दोनो भाईओने कीया कर्मका क्षय होनेसे व्यापारादिकमें धनकी प्राप्ति भई और

बारह २ रुपयेकी जगह बारह हजार २ सानैया देके दोनो भाई ज्ञानद्रव्य और साधारण द्रव्यके ऋणमेंसे मुक्त भये और पीछेसे बारह करोड सोनैयाकी ऋद्धिवाले भये और सुश्रावकपना पालन करते भये ज्ञानद्रव्य और साधारण द्रव्यकी वृद्धि और रक्षण करने लगे और अनुक्रमसे शुभ कार्य करके अतमें दीक्षा अंगिकार करके दोना भाई सिद्धिपदको प्राप्त भये

इस प्रकार ज्ञानद्रव्य और साधारण द्रव्यके भक्षण उपर कर्मसार और पुण्यसारका दृष्टात सुनकर-मनन करके ज्ञानद्रव्य और साधारण द्रव्यका लेशमात्र बिगाड नहि हाने देना विपरीत होनेसे जैसे उन्होंको विडबना और दु खोंकी परपरा सहनी पडा वैसही हे आत्मा ! तुम्हेभी सहनी पडेगी इस भवमें यदि यह देवद्रव्य भक्षण करेगा तो घरमेंभी सभी कुटुब विगेरे भोगेंगे परन्तु दु.खको तो तुम्हेही सहना पडेगा वास्ते ऐसा काम कभी करना नहि, तथापि ऋण रह गया होय तोभी सुज्ञतासे अंगिकार करके कोईभी प्रकारसे ऋणमेंसे जल्द मुक्त होना और व्यापारादिकमेंभी अनीतिभी करना नहि क्योंकी अनीतिसे भया पाप भवातरमें तुमको भोगना पडेगा तेरा धनतो खानेवाले खा जायगे और भोगनेवाले भोगेंगे तुम्हे एक पैसाभी कोई बचावेगा नहि और अनीतिसे किये हुवे

पापके सिवा दूसरा क्या साथ ले जायगा? वास्ते कोई प्रकारसे अनीति करना नहि. देखो मार्गानुसारी ३५ गुणोंका प्रकट करनेमें प्रथम न्यायसंपन्न विभव शास्त्रकार महाराजा बताते है. इसका मनन कर श्रीहेमचन्द्राचार्यने योगशास्त्रमें मार्गानुसारीका गुणो कहा है सो इस प्रकारः—

न्यायसंपन्नविभवः, शिष्टाचारप्रशंसकः ।
कुलशीलसमैः सार्धं, कृतोद्वाहोऽन्यगोत्रजैः ॥१॥
पापभीरु प्रसिद्धं च, देशाचारं समाचरन् ।
अवर्णवादी न क्वापि, राजादिषु विशेषतः ॥२॥
अनतिव्यक्तगुप्ते च, स्थाने सुप्रातिवेश्मिके ।
अनेकनिर्गमद्वार-विवर्जितनिकेतनः ॥३॥
कृतसंगः सदाचारै-र्मातापित्रोश्च पूजकः ।
त्यजन्नुपप्लुतं स्थान-मप्रवृत्तश्च गर्हिते ॥४॥
व्ययमायोचितं कुर्वन्, वेषं वित्तानुसारतः ।
अष्टभिर्धीगुणैर्युक्तः शृण्वानो धर्ममन्वहं ॥५॥
अजीर्णे भोजनत्यागी, काले भोक्ता च सात्म्यतः ।
अन्योन्याप्रतिबंधेन, त्रिवर्गमपि साधयन् ॥६॥
यथावदतिथौ साधौ, दीने च प्रतिपत्तिकृत् ।
सदानभिनिविष्टश्च, पक्षपाती गुणेषु च ॥७॥

अदेशाकालयोश्चर्यां, त्यजन् जानन् बलाबल ।
वृतस्थज्ञानवृद्धाना, पूजक पोष्य पोषक ॥८॥
दीर्घदर्शी विशेषज्ञ , कृतज्ञो लोकवल्लभः ।
सलज्ज. सदयः सौम्यः, परोपकृतिकर्मठ ॥९॥
अनरगारिषड्वर्ग-परिहारपरायणः ।
वशीकृतेन्द्रियग्रामो, गृहिधर्माय कल्पते ॥१०॥

१ पहिला गुण—न्यायसंपन्न विभवः—याने सभी प्रकारके व्यापारमे न्यायपूर्वक वर्तना अन्यायसे चलना नहि नोकरी करते समय मालीकने सुपद किया द्रव्यमेंसे कुछ खाना नहि. कम अकलके मनुष्यको ठगनेका प्रयत्न करना नहि न्यासबटव करने वालेनेभी मापनेवाला आदमीसे कपटसे ठगके न्याजका पैसा ज्यादा लेना नहि मालमें भेल करके बेचना नहि. सरकारी नोकरने मालीककी प्रीति संपादन करनेके कारण लोगोंके उपर कायदा विरुद्ध जुल्म करना नहि इत्यादी औरभी कार्योमें अनीति करनी नहि चाहिये क्योंकी अनीति उभय लोकमें हानि करनेवाली है

२ दूसरा गुण—शिष्टाचार प्रशंसक—याने ज्ञान और क्रियासे उत्तम आचरणवाले मनुष्योंका आचार सो शिष्टाचार कहलाता है शिष्टाचारवाले लोक (शिष्टजन) निंदाकरे ऐसा

कार्य करना नहि. राजा दंड करे ऐसा कार्य करना नहि. वेश्या तथा परस्त्रीगमन करना नहि, जुवा खेलना नहि. शिकार करना नहि. चोरी करना नहि. ज्यादी जीवहिंसा होय ऐसा व्यापार करना नहि. कोईका प्राणजाय ऐसा झूठ बोलना नहि. वनशके तबतक लेशभी झूठ बोलना नहि. मांस मदिरा सहत और मखन इत्यादि अभक्ष्य पदार्थ खाना नहि. हीन और गरीबका उद्धार करना. कोईने अपने उपर कीया गुणको भूलना नहि. दाक्षिण्य रखना. इत्यादि शिष्टाचार कहाता है. उन शिष्टाचारोंकी प्रशंसा करनेका स्वभाव रखना यह दूसरा गुण जानना.

३ तीसरा गुण—समान कुल-शील और धर्माचार-वालेकी साथ विवाह शादीका संबंध रखना परन्तु समान गोत्रीके साथ करना नहि. योगशास्त्रादीमें निषिद्ध है. स्त्री और पतिका एकही धर्म होय तो दोनोमें तकरार होनेका संभव न रहे और धर्मकार्य करनेमें परस्पर साधन होनेसे परलोक सुधर सके.

४ पापभीरू—याने सर्व प्रकारके पापसे डरना. क्योंकी पाप करनेसे यहलोकमें निंदा होय और परलोकमें नरकादि दुःख भोगना पड़े वास्ते पापसे खूब डरना.

५ देशाचार समाचरण—याने देशाचार मुताबिक वर्तना जिस देशमे रहते होय उस देशमें जो २ कार्य करना सो ऐसा करनाकी जिससे निंदा न होवे. वस्त्र, आभूपण, अशन पानादि देशकी रीतिके अनुसार करना जिस देशमें जैसे वस्त्र पहीने जाते होय, उसकों छोडके दूसरे देशकी रीतिके वस्त्र पहीनना नहि

६ अवर्णवादी न क्वापि—याने साधु, साध्वी, श्रावक श्राविका विगेर कोईका अवर्णवाद बोलना नहि दूसरेका अवर्णवाद बोलनेसे कई दोप उत्पन्न होते है और नीच गोत्र बधाता है कोईका अवर्णवाद बोलना नहि तो फिर राजा प्रधान विगेराकातो खास करके नहि बोलना क्योंकी इससे तो पैसा और प्राणका नाश होनेका संभव रहता है

७ अनत्ति व्यक्त गुप्ते—याने जिस घरमें प्रवेश निर्गमका अनेक मार्ग होय ऐसा घरमें रहना नहि. क्योंकी ऐसा घरमें रहनेसे चोरादिको आनेका और स्त्री आदिकों खराब चाल चलनेमें सुगम होता है दूसरेभी कई दोप उत्पन्न होता है औरभी चारों कोरसे ढका होय ऐसे स्थानमेंभी रहना नहि क्योंकी अग्नि विगेराके उपद्रवके समय वैसे घरमेंसे नीकलना आना मुश्किल हो जाता है. वास्ते अधिक खिडकी

वाले अथवा एकदम बंध होवे ऐसे स्थानमें रहना नहि. और अच्छे पडोशमें रहना खराब पडोशीके पासमें रहनेसे उनके दुष्ट आलाप सुननेसे और उनकी चेष्टा विगेरा देखनेसे अपनेमें गुण होय सो चले जाते है और दूसरे दोष उत्पन्न होता हैं.

८ कृतसंग सदाचारैः—याने इह लोक परलोकमें हितकारी प्रवृत्तिवाले जो मनुष्य होवे वे अच्छे आचरणवाले कहलाते है उन्होंका संग करना. अच्छे मनुष्योका संगसे अनेक प्रकारके गुणोकी प्राप्ती होती है. दुर्जनका संगसे गुण होय सोभी चले जाते है. वास्ते निर्गुणीके संगको त्याग करना. ऐसेही मिथ्यात्वीका संगभी नहि करना. उसका संग करनेसे अपनी धर्मबुद्धि नष्ट होती है. और अच्छे संगसे अच्छी बुद्धि प्राप्त होती है.

९ मातृपित्रोश्च पूजकः—याने माता पिताकी आज्ञामें रहना. उन्होंका पूजक होना नित्य प्रातःकालमें उन्होंको वंदन करना. जो वृद्ध भये होय तो उन्होंको खानेपीनेकी पहिनने ओढ़नेकी तजवीज करना. उन्होंकी उपर क्रोध नहि करना. कटु वचन कहना नहि. अयोग्य कार्यसे होनेवाले गेर फायदे विनयपूर्वक समझाना. परलोक संबंधी हितावह अनुष्ठानमें उन्होंको जोडना जिससे उन्होंका आत्माकाभी कल्याण होय. सभी प्रकारसे मातापिताकी भक्ति करनी.

१० त्यजन्नुप्लुत स्थान—याने ग्राम नगरादिस्थान जो उपद्रववाला होय उसका त्याग करना राजाओंकी परस्पर विरोध होय ऐसे ग्राम नगरादिमें रहनेवालेको ये भयका स्थान है और दुर्भिक्ष हैजा विगेरे रोगोंका उपद्रववाला स्थान-कभी त्याग करना जो ऐसा न करे तो पूर्वकृत धर्म अर्थ कामका नाश होनेका सभव है नये उत्पन्न नहि होते जिससे मनुष्य जीवन दु खद होता है

११ अप्रवृत्तिश्च गर्हिते—याने देश जाति कुलकी अपेक्षासे निंदित कार्यमें प्रवृत्ति करना नहि

१२ व्ययमायोचित कुर्वन्—याने अपनी आमदानीके मुताबिक व्यय करना और अच्छा लाभ भया होय तो कृपणता को छोडके सातक्षेत्र विगेरे शुभ मार्गमें धन खरचना

१३ वेष वित्तानुसारत —याने धनके अनुसार वस्त्रा-भूषण धारण करना, धन अपने पास न होय और धनाढ्यके जैसे वस्त्र पहीननेसे, और धनाढ्य होय और गरीब जैसे वस्त्र पहीननेसे लघुता होती है, वास्ते वित्तानुसार वेष रखना

१४ अष्टभिर्धीगुणैर्युक्त —याने बुद्धिके आठ गुणोसे युक्त होना उन आठ गुणोंका नाम —

१ शास्त्र सुननेकी इच्छा.	५ उसमें तर्क करना सो सामान्यज्ञान
२ शास्त्र सुनना	६ अपोह करना सो विशेष ज्ञान
३ उसका अर्थ जानना.	७ अर्थ विज्ञान—अर्थका ज्ञान होना.
४ उस अर्थको याद रखना	८ तत्वज्ञान—यह वस्तु इस प्रकार है ऐसा निश्चय करना.

१५ श्रृण्वानो धर्ममन्वहं—याने निरंतर धर्मका श्रवण करना, हमेशां धर्मका श्रवण करनेवालेको मनमें खेद भया होय तोभी दूर होता है. अच्छी भावना जागृत होती है. अंतमें दोनो लोकमेंभी सुखी होता है.

१६ अजीर्णे भोजनत्यागी—याने प्रथमका खाया अनाज अच्छी तरहसे हजम न भया होवे तो नवीन भोजनका त्याग करना. सर्व रोगोंका मूलभूत अजीर्ण भया होय, तथापि भोजन करे तो अजीर्णकी वृद्धि होवे. कहा है किः—(अजीर्ण प्रभवा रोगाः) रोग मात्र अजीर्णसेही होते है. वास्ते जबतक बनपड़े अजीर्णवालेने उपवासही करना, जिससे दो फायदा होता है. अजीर्ण नष्ट होय और कर्मकी निर्जरा होय.

१७ काले भोक्ता—याने भूख लगे तब खाना. अकालमें भोजन करना नहि. लोलुपताका त्याग करके क्षुधाके अनुसार खाना. अति भोजन करनेसे वमन, झाडा, मरड़ा इत्यादिक दोषका संभव रहता है. वास्ते अतिभोजन करना नहि. जो कम खाता है सो ज्यादा खा सकता है. शास्त्रमें बत्तीस

कवलका आहार कहा है सो ख्यालमें रखना

१८ अन्योन्याप्रतिबंधेन—याने धर्म अर्थ और काम यह तीनों परस्पर बाधित न होवे इस प्रकार साधना उसमें मुख्यता धर्मकी समझना. क्योंकि धर्मसेही अर्थ और काम साधित होते है धर्म साधन करनेके समयमें द्रव्योपार्जन करनेका सूझे तो धर्मसे वञ्चित होता है, और धर्म चूके तो अर्थ और कामभी चूके ही जाते, वास्ते त्रिवर्ग साधनका समय निर्णित कर रखना जिससे द्रव्य उत्पन्न करनेमें और ससारके कार्योमें विघ्न न आवे और धर्मका आराधन अच्छी प्रकारसे होय

आजकाल जितनेही जीव धर्मको छोडके पैसा सचय करनेमें जिदगी विताते है वे अपने आत्माको ठगते है और वे जीव धर्म रहित रहनेसे परलोकमें दुर्गतिमें असह्य दु खोंको सहन करते है, वास्ते ऐसा नहि करना धर्मकी मुख्यता रखना एक दिनभी धर्मआराधनके विना न जाय सो खास याद रखना।

१९ यथावदतिथौ—याने मुनिराजको दान देके विनयपूर्वक आतिथ्य करना दु खी जनको अनुकपा दान देना शालीभद्र, मूलदेव, विगेरे दानके प्रभावसे अथाह लक्ष्मीके भोक्ता भये है.

३१ सदयः—याने दुःखी जीवोंके उपर दया रखना. जैसा बन सके हिंसाका कार्य करना नहि. जैसा अपनेकों अपना प्राण प्रिय है वैसेही सभी जीवोंकों प्रिय होवे वास्ते कोई जीवकी हिंसा करना नहि.

३२ सौम्यः—याने सौम्य दृष्टि रखना. कषाययुक्त प्रकृति करना नहि. की जिससे दुसरेकों अपने उपर द्वेष होय.

३३ परोपकृतिकर्मठः—याने परोपकार करनेमें शूर होना. परोपकारक मनुष्य लोगोंकों नेत्रके अमृतका अंजन बराबर प्रिय होता है.

३४ अंतरंगारिषडवर्ग–परिहार परायणः-याने काम क्रोध, लोभ, मान, मद, हर्ष उन छःकों शिष्ट पुरुषोने अंतरंग शत्रुं कहा है. परस्त्री विषयके दुष्ट विचार करना सो काम १ दूसरेको और अपना कष्टका विचार विना किये कोप करना सो क्रोध २, योग्य पात्रमां दान नहि देना और निष्कारण परधन ग्रहण करना सो लोभ ३, कुल, बळ, ऐश्वर्य, रूप, विद्यादिकका अहंकार करना सो मद ४, दुष्ट अभिनिवेश (आग्रह) करना युक्तायुक्त न समझना सो मान, ५, निमित्त विना दुसरेकों दुःख उत्पन्न करके और जुवा, शिकार आदि अनर्थ कार्य करके चित्तमेंखुशी होना सो हर्ष, ६, यह छः अंतरंग कट्टर

शत्रु समझना इस छ से बहुत दूर रहना इनका समागम करना नहि

३५ वशीकृतेन्द्रियग्रामो–याने पाचो इन्द्रियोंको वश करना. अत्यत आसक्तिके परिहारसे स्पर्शादि पाचो इन्द्रियोंका विकारको रोकना. अभक्ष्यादि वस्तु खानेकी लालच करना नहि इन्द्रियोंका विजय उत्कृष्ट सपदा देता है. कहा है की.-

आपदा कथित पथा., इन्द्रियाणामसयमः ।
तज्जयः सपदा मार्गो, येनेष्ट तेन गम्यताम् ॥

इन्द्रियोंका अनिग्रह करना आपद् मार्ग है और इन्होंको जीतना सो सपदाका मार्ग है. जो मार्ग इष्ट होय उस मार्गसे गमन करो.

एकएक इन्द्रियके दोषसे पतग, भ्रमर, मछली, हाथी और हरण दुर्दशाको पाते है–प्राण देते है तो पाचों इन्द्रियोंके वश मनुष्यकी क्या दशा जाननी ! वास्ते बराबर पुरुषार्थसे इन्द्रियोंको जीतना, और न जीती होय तो जीतनेका प्रयत्न करना

ये उपर कहे पैंतीस गुणवाला मनुष्य गृहस्थ धर्म के आराधनके वास्ते समर्थ होता है यह महामूल्य मानव जीवन प्राप्त करके अवश्यमेव यह मार्गानुसारीके पैंतीस गुण प्राप्त

करनेका उद्यम करना. कदापि पैंतीसो गुण प्राप्त न हो सका तो उसमेसे आधेसे ज्यादा तो अवश्य प्राप्त करनाही चाहीये, उन्होमें मुख्य प्रथम गुण न्यायसे वित्तोपार्जन करना. इस गुणको तो कभी छोडना नहि. यह गुणके न होनेसे दूसरे गुण शोभते नहि. अनीतिसे प्राप्त किया द्रव्य चिरकाल टकता नहि. क्योंकी अनितीसे पाप प्रकृति जमती है. और ये पापका उदय हुआकी तुरंत सभी ऋद्धि सिद्धि खो वठना पडता हैं. उपाध्यायजी यशोविजयजी महाराज ज्ञानसार अष्टकमें कहते है कीः—

येषां भ्रूभंगमात्रेण, भज्यन्ते पर्वता अपि ।
तैरहो कर्मवैषम्ये, भुपैर्भिक्षाऽपि नाप्यते ॥१॥

'जिन राजा महाराजाकी भ्रकुटीका भंग मात्रसे पर्वतोंका चूर्ण हो जाता था, उसी राजा महाराजाओंको कर्मसे विषय दशा प्राप्त होनेसे रंककी माफिक भिक्षाभी नहि मिलती, कर्मराजका कितना प्रबल प्रताप है !

विवेचन— जिन्होंके घरामें हाथीओंका मदस्रावसे अंगनोंमें कीचड हो जाता था, जिन्होंके यहां घोडा, रथ, पायदल विगेराकी गर्जना हो रहती थी. सुवर्णादि धनकी संख्याकी गीनती हो नहि सकती वैसे धनवानोको भी कर्मराजकी पराधीनतासे पुण्यका नाश होनेसे भीख मांगके पेट भरनाभी

कठिन हो जाता है तो फिर सामान्य कोटिके जीवोंका तो कहनाही क्या? अनीति करनेसे अशुभ कर्म जमता है उससे लक्ष्मीका वियोग होवे यह स्वाभाविक है वास्ते नीतिसेही द्रव्योपार्जन करके लक्ष्मीको अच्छे क्षत्रमें व्यय करना जिससे पुण्य जमे और इस भवमें और परभवमें पुण्य प्रकृतिसे अथाह लक्ष्मी मिले. देखो वही उपाध्यायजी महाराज कर्मविपाक अष्टकमें कहते है की —

जातिचातुर्यहीनोऽपि, कर्मण्यभ्युदयावहे ॥
क्षणाद् रंकोऽपि राजा स्याद्, छत्रछन्नदिगन्तरः॥१॥

(जाति और चतुराईसे रहित होने परभी शुभ कर्मका उदय होनेसे एक क्षणमें रंक या भीखारी होय तोभी छत्रसे आच्छादित भये है दिशान्त जिससे ऐसा राजा हो जाता है)

चाहे जैसा गरीब रंक वा निर्धन होय परन्तु पुण्यप्रकृति साथमें लाया होय तो धनाढ्य हो जाय और इष्ट वस्तुकी सामग्री मिले जाय परन्तु अनीति करनेसे इष्ट वस्तु, नहि मिलती सो बराबर याद रखना कितनेएक कहते है की — 'अनीतिका यह जमाना है नीति करने चाहे तो पैसा नहि मिलता' ऐसा बोलनेवाला भूल करता है न्यायसे उपार्जन किया थोडाभी द्रव्य शुभ मार्गमें खरचनेसे अथाह पुण्य जमता है और पुण्यके प्रतापसेही लक्ष्मी मिलती है तो जब पूर्वका पुण्य

करनेका उद्यम करना. कदापि पैंतीसो गुण प्राप्त न हो सका तो उसमेसे आधेसे ज्यादा तो अवश्य प्राप्त करनाही चाहीये, उन्होमें मुख्य प्रथम गुण न्यायसे वित्तोपार्जन करना. इस गुणकों तो कभी छोडना नहि. यह गुणके न होनेसे दूसरे गुण शोभते नहि. अनीतिसे प्राप्त किया द्रव्य चिरकाल टकता नहि. क्योंकी अनितीसे पाप प्रकृति जमती है. और ये पापका उदय हुआकी तुरंत सभी ऋद्धि सिद्धि खो बठना पडता है. उपाध्यायजी यशोविजयजी महाराज ज्ञानसार अष्टकमें कहते है कीः—

येषां भ्रूभंगमात्रेण, भज्यन्ते पर्वता अपि ।
तैरहो कर्मवैषम्ये, भुपैर्भिक्षाऽपि नाप्यते ॥१॥

'जिन राजा महाराजाकी भ्रकुटीका भंग मात्रसे पर्वतोंका चूर्ण हो जाता था, उसी राजा महाराजाओंको कर्मसे विषय दशा प्राप्त होनेसे रंककी माफिक भिक्षाभी नहि मिलती, कर्मराजका कितना प्रबल प्रताप है !

विवेचन— जिन्होंके घरामें हाथीओंका मदस्त्रावमें अंगनोंमें कीचड हो जाता था, जिन्होंकें यहां घोडा, रथ, पायदल विगेराकी गर्जना हो रहती थी. सुवर्णादि धनकी संख्याकी गीनती हो नहि सकती वैसे धनवानोको भी कर्मराजकी पराधीनतासे पुण्यका नाश होनेसे भीख मांगके पेट भरनाभी

कठिन हो जाता है, तो फिर सामान्य कोटिके जीवोका तो कहनाही क्या ? अनीति करनेसे अशुभ कर्म जमता है उससे लक्ष्मीका वियोग होवे यह स्वाभाविक है वास्ते नीतिसेही द्रव्योपार्जन करके लक्ष्मीको अच्छे क्षत्रमें व्यय करना जिससे पुण्य जमे और इस भवमें और परभवमें पुण्य प्रकृतिसे अथाह लक्ष्मी मिले. देखो वही उपाध्यायजी महाराज कर्मविपाक अष्टकमें कहते है की —

जातिचातुर्यहीनोऽपि, कर्मण्यभ्युदयावहे ॥
क्षणाद् रंकोऽपि राजा स्याद्, छत्रछन्नदिगन्तर॥१॥

(जाति और चतुराईसे रहित होने परभी शुभ कर्मका उदय होनेसे एक क्षणमें रंक या भीखारी होय तोभी छत्रसे आच्छादित भये है दिशान्त जिससे ऐसा राजा हो जाता है)

चाहे जैसा गरीब रंक वा निर्धन होय परन्तु पुण्यप्रकृति साथमें लाया होय तो धनाढ्य हो जाय और इष्ट वस्तुकी सामग्री मिले जाय परन्तु अनीति करनेसे इष्ट वस्तु नहि मिलती सो बराबर याद रखना. कितनेएक कहते है की — 'अनीतिका यह जमाना है नीति करने चाहे तो पैसा नहि मिलता' ऐसा बालनेवाला भूल करता है न्यायसे उपार्जन किया थोडाभी द्रव्य शुभ मार्गमें खरचनेसे अथाह पुण्य जमता है और पुण्यके प्रतापसेही लक्ष्मी मिलती है तो जब पूर्वका पुण्य

होय तभी लक्ष्मी मिले, परन्तु अनीतिके जोरसे विशेष पाप जमनेसे परिणाममें लक्ष्मीका नाश होता है. कदापि इस भवमें नाश न भया तो परभवमें इसका कटु फल अवश्य भोगने पडते है. वास्ते जैसा बधपडे वैसा सभी प्रकारसे नीतिका आदर करो, न्यायसे वरतो, (चलो) यह गुण बहुत मजबूत है यह गुण प्राप्त करोगे तो और गुण आपही प्राप्त होंगे इस हेतुसेही हेमचन्द्राचार्यने मार्गानुसारी के पैंतीस गुणोंमें प्रथम न्यायसंपन्न विभव बताया है. वास्ते भवभीरु जीवोने अनीतिकों देश निकाल करके न्यायसंपन्नविभवकाही आदर करके प्रमाणिकता प्राप्त करना यही मनुष्य भवका सार है.

नीतिसे द्रव्योपार्जन करने परभी उसकों आरंभ समारंभके कार्योंमें खर्च करके पापके भागी बनना नहि. परंतु कुमारपाल महाराजा और वस्तुपाल तेजपालकीतरह अच्छे सुकृत कार्योंमें खर्चा करके पुण्यानुबंधी पुण्यका भागी बनना. नहि तो पीछे अत्यंत मोहसे लक्ष्मीके उपर ही फणीधर नकुल, उंदर विगेरे होना पडता है ऐसे दृष्टांत शास्त्रोंमें बहोतरे है. समरादित्य केवलीके चरित्रमें कई जीव लक्ष्मीमें मोह रखनेसे तिर्यंचादि गतिमें, गये यह अधिकार है. अदिनाथ देशनामें प्रियंगु शेठ लक्ष्मीके उपर अत्यंत मोहममत्व रखके अंतिम निगोद तक पहुंचा-रुद्रदेवकी स्त्री अग्निशिखा लक्ष्मीके मोहसे काली नागिनी भई और उसका पुत्र कुडंग काला सर्प भया इत्यादि.

कई दृष्टांत है. वास्ते प्राप्तकी लक्ष्मीसे निश्चल धर्मको प्राप्ति करना यही सारहे ! शास्त्रकार भलामन करते है कीः–

लक्ष्मीदायदाश्चत्वारो, धर्माग्निराजतस्करा ।
वृद्धपुत्रापमानेन, कुप्यन्ति बाधवास्त्रय॰ ॥१॥

(लक्ष्मीके चार भागीदार पुत्र है, उनमें प्रथम धर्म, पीछे अनुक्रमसे अग्नि, राज, और तस्कर, यह चार होने परभी वडे पुत्र धर्मका अपमान करनेसे बाकीके तीनो पुत्र कोपायमान होते है)

विवेचन—यह जीवने इकठी की हुई लक्ष्मी धर्मके प्रभावसे ही जानोइसीसे शास्त्रकार 'धर्माद् धन' धर्मसेही धन प्राप्त होता है ऐसा कह गये है धर्मसे हीन जीव गरीब, पामर, दु खी और दीन होते है. ऐसा धर्मका प्रकट प्रभाव होने परभी कृपण जीव शुभ मार्ग में लक्ष्मीको खर्च नहि कर सकते और इकठी करते है पीछेसे बची लक्ष्मीको पीछले सबधी भोगते है लक्ष्मी इकठी करनेमें लगे पापोको भवांतरमें भी इकठी करनेवालेको भोगने पड़ते है वास्ते खूब विचार करके लक्ष्मीको शुभ मार्गमें खर्च करके मनुष्यभवका लहाव लेना चुकना नहि,

देखो ! पूर्वमें हो चुके कुमारपाळ राजा, और विक्रमराजा

और संप्रतिराजा विगेरे राजा महाराजाओ और सद्गृहस्थोंने पुण्यक्षेत्रमें अगणित लक्ष्मी खर्च करके कैसे शुभ कार्य किये है इसका संक्षेपसे वर्णन लिखते है. इसको ध्यानमें लेकर हर-एक सद्गृहस्थोने प्रतिवर्ष पवित्र मार्गमें यथाशक्तिभी अपनी लक्ष्मीका खर्च करके कृतार्थ बनना चाहीये. परन्तु कृपण दोष रखके लक्ष्मीकों इकट्टी करके कर्मबंधनमें उतरना नहि.

कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्रसूरीजीके उपदेशासे प्रतिबोध पाये कुमारपाल राजाका संक्षेप वर्णन.

१ सम्यक्त्वमूल बारह व्रत अंगिकार किया.
२ त्रिकाल जिनपूजा करनेका नियम किया.
३ अष्टमी तथा चतुर्दशीका पौषध उपवास करना.
४ पारणाके दिवस दृष्टिगोचर भये हुए सेंकडो मनुष्योंको यथायोग्य वृत्ति देके संतोष देना
५ साथमें पौषध ग्रहण किया होय ऐसे सभीकों अपने आवासमे पारणा कराना.
६ साधार्मिक भाईओंका उद्धारके वास्ते एक हजार सोनामुहर हमेशां देना.
७ एक वर्षमें एक करोड सोनामुहरका दान साधर्मि भाईकों देना [इस प्रकार चौदह वर्ष तक चौदह करोड सोना-मुहर देना.]

८ साधर्मि भाईओंके पासका एकोनसे ९१ लाख द्रव्य माफ किया
९ निर्वंश मनुष्यका सभी द्रव्य राजा ग्रहण करें परन्तु यह धार्मिक राजाने ऐसा बहत्तर लाख द्रव्य माफ किया
१० सातसो लहीयाको रखके ७ लाख छत्तीस हजार आगम पुस्तक लिखवाये, उसमें हरएक आगमकी सात सात सात प्रति सुवर्णके अक्षरोसे लिखवाके और श्रीहेमचन्द्राचार्यकृत व्याकरण और चारित्रादिक ग्रन्थोंकी एक्वीस २ प्रति लिखवाई और फिर लिखित पुस्तकोंका एक्वीस ज्ञानभंडार करवाये
११ हमेशा त्रिभुवनपाल देरासरजीमें स्नात्र महोत्सव करना
१२ श्री हेमचन्द्रसूरि महाराजको द्वादशावर्त वंदन करना पीछे क्रमश सभी मुनिराजको वंदन करना
१३ प्रथम ग्रहण किये पौषधव्रतवाले श्रावकोंको प्रणाम करके मान देना.
१४ अपने अढारह देशमें अमारी धाली पीटाई
१५ न्यायकी घंटा बजवादी
१६ और चौदह देशोंमें धन और मैत्रीके बलसे जीवोंकी रक्षा करादी और वाराणसी नगरीके राजा जयचन्द्रसे अपने मंत्रीको भेजके जीवोंका पकडनेकी एक लाख अस्सी हजार जाल और अन्यभी हिंसा के शस्त्र सभी इकट्ठे करके मंत्रीके समक्ष जलवाडीये और हिंसा तदन बंध करादी

१७ चोदहसो चवालीस (१४४४) नये जिनमंदिर वनवाये और सोलहसो जीर्णोद्धार करवाया, और पाटनमें अपने पिताश्री त्रिभुवनपालके नामकी याददास्तके वास्ते तिहुयण विहार नामका वहतर देव कुर्णका सहित जिनमंदिर वंधवाया, उसमें एकसोपचीस अंगुलकी उंची अरिष्ट रत्नकी मूलनायक श्रीनेमिनाथ प्रभुकी प्रतिमा स्थापित की. और वहतर देरीओमें चौदहभार प्रमाण चौवीस रत्नकी, चौवीस सुवर्णकी, चौवीस चांदीकी, इत्यादि जिनप्रतिमायें स्थापनकी सर्व मिलान करते छयान करोड सोनामुहर खर्च करदी. जिनालयमें उदयन आम्रदेव कुवेरदत्त विगेरा अढार हजार श्रावकोंकी साथ राज नृत्यगीत नृत्य वाजित्र सहित स्नात्र महोत्सव करतेथे.

१८ सात वडी तीर्थयात्रा की, उसमें श्रीसिद्धाचल गिरिनारादि तीर्थोंकी यात्रामें १८७४ सुवर्ण रत्नमय देवालयथे. वनवाया और वहत्तर राना और अढारह हाजार कोटी ध्वज साहुकार और लाखो कई दूसरे श्रावकोंके संघ सहित यात्राकी. उसमें प्रत्येक स्थानोंमें स्नात्रमहोत्सव ध्वजारोपण श्री संघवात्सलय आदि शुभकार्य करके करोडे रुपया खरच करके जिंदगी पवित्र वनाई.

१९ पहिलेव्रतमें—मारी ऐसा शब्दभी जवानसे निकल जाय तो उपवास करना एक दिन गुरु माहाराजश्री

हेमचद्रसूरिजी महाराजके दर्शन करके विनय पूर्वक कुमारपाल राजा बैठाथा गुरुमहाराजने देशनाका आरभ कियाकी विवेकी पुरुषोंने वर्षाऋतुमें अपने स्थानमेंसे वहार जाना नहि क्योंकी वर्षाऋतुमें ज्यादा जलके कारण सेभी पृथ्वी जीवाकुल होती है. उसके उपर उन्मत महिषके माफिक विहार करनेवाला मनुष्य जीवोंका हत्या कारण है श्री नेमिनाथ महाराजका उपदेशसे श्रीकृष्णने वर्षा ऋतुमें वाहिर न जानेका नियम कियाथा यह सुनकर विवेकी कुमारपालराजाने नियम कियाकी आजसे अत्र वर्षाऋतुमें कभी कहीं वाहिर जाना नहि सर्व चैत्योंका दर्शन और गुरुमहाराजके दर्शन विना वर्षाकालमें माय नगरमेंभी निकलना नहि ऐसा अभिग्रह आजकलके गृहस्थ थोडा बहुत अशसे ध्यानमें लेवे तो आत्माको वहुत कुछ फायदा होगा

२० दूसरे व्रतमें—विस्मृत्यादिसे असत्य वचन बोलनेमें आ गया तो आयविल विगेरे तप करना

२१ तीसरे व्रतमें–निर्वंश मरे इसकाधन ग्रहण करना नहि

२२ चौथे व्रतमे–धर्मकी प्राप्ति होनेके वाद नई स्त्रीकी सादी करना नहि ऐसा अभिग्रह किया

२३ चातुर्मासमें मन वचन और कायासे शीलका पालन करना, उसमे मनसे कदाच शीलका भग होवे तो उपवास

करना वचनसे भंग होवे तो आयंबिल करना, कायासे स्पर्श रूप भंग होवे तो एकाशन करना. (मनके विशेष मजबूत रखनेके लिये मनसे भंग होनेसे उपवास रक्खा होगा ऐसा निश्चय होता है.) भोपलदेवी राणीके मरणके बाद प्रधानादि कई लोगोने पुनः पाणीग्रहणके वास्ते कहा तथापि अपना नियम बराबर पाला-पाणीग्रहण किया नहि.

२४ पांचमें व्रतमें-छः करोडका सोना, आठ करोडकी चांदी, एकहजार तोला महामूल्य मणि रत्न विगेरा बत्तीस हजार मन घी, बत्तीस हजार मन तेल, तीन लाख मुड़ा शाली चना, जुवार, मुंग विगेरा पांच लाख घोडा, एक हजार हाथी, पाचसो घर, पांचसो हाट पचास हजार रथ इत्यादि रक्खा.

२५ छट्ठे व्रतमें—वर्षाकालमें पाटण शहेरकी सीमासे बाहर जानेका निषेध किया.

२६ सातवे व्रतमें—मद्य, मांस, मधु, मक्खन, यह चार विगयका सर्वथा त्याग; और बहुबीज पञ्चोदुम्बर फल, अभक्ष्य अनंतकाय, घेवर विगेराका त्याग; देरासरजीमें विना अर्पण किये वस्त्र फल, अहार विगेराका त्याग, सचित्तमें एक पत्रका पान बीडां आठ (हमेशां रात्रिमें चारों प्रकारके आहारका त्याग. वर्षाऋतुमें एक घी विगय छुट्टी और पांचका त्याग. हरीतरकारीका निषेध. तथा रोज

एकासणा करना पर्वतिथिओंके दिन कायम ब्रह्मचर्य पालना

२७ आठवे व्रतमें—सातो व्यसनोंको अपने देशमेंसे निकाले.

२८ नववे व्रतमें—दोनो वखत सामयिक करना उस सामयिकमें श्रीहेमचंद्रसूरिमहाराजके विना और दूसरेके साथ नोलनेका निषेध हमेशा वीतरागस्तोत्रका और योगशास्त्रका बारह प्रकाशका गिनना

२९ दशवे व्रतमें—वर्षाऋतुमें कटक (सेनाका प्रयाण) नहि करना गीजनीका सुलतानका आगमन होने परभी नियमसे चलित न भया

३० ग्यारहवे व्रतमे—पौषधोपवासमें रात्रिमें कायोत्सर्ग करते समय पैरमें चिउटाने काटा, लोगोंने उसको हटनेका कोशीपकी तथा हटा नहि वास्ते यह मर जायगा इस शकसे अपने पैरकी चमडी उखाडके दूर धरडी और चिउटाको इस प्रकार बचाया

३१ बारहवा अतिथिसंविभाग व्रतमें—दु खी साधर्मिक श्रावकका अपना बहत्तर लाख द्रव्य छोड देना निरंतर सुपात्रमें दान देना

इस प्रकार यह महाभाग्यशाली कुमारपाल राजा के पुण्यमार्ग कितना लिखा जाय ? अपने अच्छी तरहसे धर्मानुष्ठा-

नसे अपने आत्माका उद्धार करके संसारको वंधन तोड़ दीया. भक्त दो, भवमेंही मोक्षमें जाय ऐसा अनुष्टान किया. और साधर्मिक भाइओंको दान देनेसे, धर्ममें सहाय करनेसे दुःखीओंका उद्धारसे अढारह देशमें अमारीघोसणा करवानेसे परोपकारभी वहुत किया जिससे मानव जिंदगी धर्मके कर्मोसे सफल करके महान् पुण्यानुवंधी पुण्य प्राप्त किया. आखीर अंत समयमें राजर्षि कुमारपालने हेमचन्द्र मुनिश्वरके बुलाया. उन्होने अंतिम आराधनाका आरंभ किया सो इस प्रकारः—

कुमारपाल राजको अंतिम क्षमापना

सूर्यके बिंव समान तेजस्वी श्रीजिनेन्द भगवानकी मूर्ति अपने सामने स्थापित करके विधिपूर्वक पूजन करके वारंवार नमस्कार किया. श्रीजिनेन्द्र भगवानको साक्षीभूत करके श्रीमान् कुमारपाल भूपतिने पाप प्रक्षालनको इच्छासे शुद्ध मनसे मुनि के सामने कहा को जन्मसे आरंभकर आजतक स्थावर और त्रस प्राणीओंका जो कुछ मैने वध किया होवे तो उसकी मैं वारंवार क्षमा मागताहुं, स्वार्थके पदार्थसे स्थुल या सूक्ष्म जो कुछ अनृत वचन वोलनेमें आया होय उसका मैं मन वचन कायासे मिथ्यादुष्कृत मांगता हुं. नीति किंवा अनितिके अन्यका धनादि द्रव्य जो मैने दीये विना लिया होय उसका मै शुद्ध बुद्धिसे त्याग करता हुं. अपनी या पर स्त्री के साथ

जो मैने मैथुन किया होय किंवा द्रव्य भोगोंकी चिंतना की होय इसका मैं वारवार निंदा करता हु धन, धान्य, क्षेत्र, गृह, सुवर्ण, दास और अश्वादिकमें अधिक वढी हुई तृष्णाका मैं एकाग्रह मनसे त्याग करता हु जन्मसे आरभ करके आजतक जो मैने रात्रिमें भोजनादि किया होय, वैसेही अभक्ष्यका भक्षण किया होय उन सर्व गर्हितोंकी मैं निंदा करता हु और दिग्गविरत्यादिक और सामयिकादिमें मैने जो अतिचार किया होय उसका मैं फिरसे न करनेके लिये त्याग करता हु फिर पृथ्वीकायादिका स्वरूपसे स्थावरोंमें वास करते जीवोंका मेरेसे जो कुछ अपराध भया होय उन सभी जीवोंकी मैं क्षमा मागता हु. त्रसपनामें और तिर्यंच, नरक, नर देवताओंके भवमें रहके मैने जिन जिवोंको दु ख दिया होय वे सभी प्राणी मेरे उपर क्षमावान होय दुर्वाक्यादिक कहनेसे सबके जो कोई प्राणीओंको मैने पीडाकी होय उन्होंकी में हाथ जोडके त्रिकरण शुद्धि-मन वचन कायासे क्षमा मागता हु सर्व जीव जातिमें भ्रमण करता मैने मन वचन कायासे जो कुछ पाप किया होय सो मुझे मिथ्यादुष्कृत हो. दाक्षिण्यतासे अथवा लाभसे अन्यकों मैने जो मृषा उपदेश किया हो यह सब मेरा पाप मिथ्या होय प्रमादादिकका योगसे धर्मकार्यमें जो वल मैने छिपाके रक्खा होय इस सबधी मिथ्यादुष्कृत हो चरणादिकका स्पर्शसे प्रतिमा पुस्तकादिककी जो आशातना भई होय सो सर्व

आशातनाका नाश पावो.

अनशन व्रत—इस प्रकार क्षमापनासे सर्वथा विशुद्ध है आत्म जिसका ऐसा श्रीकुमारपालराजर्षिने अनशनव्रत ग्रहण किया न्याय मार्गसे धनसंपादन करके सातों क्षेत्रमें जो कुछ मैने वोया होवे उस पुण्यकी मैं अनुमोदना करता हुं. सद् देव और गुरुको पूजाओंसें और अमारिकरण और निष्पुत्र विधवाओंका धनको मुक्तिसे जो पुण्य उपार्जन किया होय उसका मैं स्मरण करता हुं. पापकों दूर करनेवाली शत्रुंजयादि तीर्थोंकी यात्राओं करके जो पुण्य मैने संचित किया होय उसकी मैं भावना करता हुं. तीर्थंकर भगवान, सिद्ध भगवान, साधु और धर्म यह चारों मेरा शरण हो और यह जगत् पूज्य चारों मेरे मंगलरूप वनो. चैतन्यरूप स्वरूप धारी यह आत्माही मेरा है. यह सर्व देहादिक भाव सांयोगिक होनेसे प्रथक्-भिन्न है. यह लोकमें जीवोंकों जो दुःख होता है सो सचमुच देहादिकसें होता है वास्ते मन, वचन, और कायासे अवश्य त्यागने लायक उन देहादिकका मैं त्याग करता हुं. ऐसा स्मरण करनेके वाद राजर्षिने चितकों सावधान करके शुभध्यानसे प्रपंचरहित पंचपरमेष्ठि नमस्कारमंत्रका स्मरण किया.

राजर्षि स्वर्गवास—पीछे राजर्षि श्रीकुमारपाल आप समाधिस्थ भये. अपने हृदयमें सर्वत भगवान् श्रीहेमचंद्रगुरु

और पापरूपी मसीकों (कज्जल) प्रक्षालन करनेमे जल समान गुरुने बताया धर्मका स्मरण करके श्रीकुमारपाल भूपति विषकी लहरीसे प्रकट भई हुइ मुर्छासे विक्रम संवत् १२३० मे काल धर्मकों पाकर व्यतरेन्द्रपने उत्पन्न भये, और वहासे चलित होके यह भारतक्षेत्रमें भद्दीलपुर नगरमें शतानद राजाकी धारिणी राणीसे उत्पन्न होके शतबलनामक प्रख्यात पुत्र होगा बाल्यवयमे उत्तम कलाके सीखके सुश्रावककी तरह शीलव्रत पालन करेगा उसके बाद राजपदवीका स्वीकार करके पूर्व जन्मकी दयालुताके कारण हिंसादि सावद्य कर्म नहि करेगा अतमें ससार त्याग करके दीक्षा अगीकारकरके आनेवाली चोवीसीमें पद्मनाभ नामका प्रथम तीर्थकरके ग्यारहवे गणधर होके सिद्धपद पावेगा इस प्रकार कुमारपालका सक्षेप वर्णनसे अपनेकों अभी कइ प्रकारका समझनेका मिल सकता है लक्ष्मी-के उपर मोह रक्खा होता तो उपर बताये शुभ कार्य नहि कर शकता जिससे सूक्ष्मबुद्धिसे उनका यह सक्षेप चारित्र्य पढकर सभी प्रकार खूब ख्याल देना चूकना नहि

इति कुमारपाल सक्षेप वर्णन



वस्तुपाल तेजपाल विगेराका शुभ कार्य

श्रीधवलपुर (धारका) का वीरधवल राजाकेमत्री वस्तु-पाल तेजपालनेभी लक्ष्मीसे अनेक शुभ कार्य किये है श्री

आवुजी उपर वारह करोड़ तेपन लाख द्रव्य खर्च करके ऐसे देरासर वनवाये है. की आजभी आजकलके कारीगरोंकी दृष्टिकों चकित कर देते है. वस्तुपाल तेजपाल शुभ मार्गमें लक्ष्मीका व्यय किया इसका सामान्य दिग्दर्शन कराते है.

तीन लाख द्रव्य खर्चके शुत्रुंजयये तारेण वंधवाये.
त्रण हजार दोसो दो जीर्णोद्धार करवाया.
तेरहसौ जिनमंदिर शिखर वंध वनाये.
एक लाख और पांच हजार नवीन जिनविंव भरवाये.
नवसौ चौरासी पौपधशाला वनवाया.
छत्तीस लाख द्रव्य खर्च करके पुस्तकोंका भंडार वनवाये.
तीन लाख द्रव्य खर्च करके खंभातमें ज्ञान भंडार वनवाये.
शत्रुंजय तीर्थकी साडेवारह यात्रा की.
आढारह करोड़ छयान वे लाख द्रव्य श्रीशत्रुंजय तीर्थमें खर्च किया.
अढारह करोड़ और तीरासी लाख द्रव्य श्रीगिरिनारजी तीर्थमें खर्च किया.
वारह करोड़ और त्रेपन लाख द्रव्य श्रीआवुतीर्थमें खर्च किया.
पांचसौ हाथीदांतके सिंहासन वनवाये.
पांचसौ समवसरण वनवाये

सातसो धर्मशाला बनवाई.
एक हजार मनुष्य दानशाळासे हमेशा आहार ले ते थे

और वस्तुपालकी स्त्री अनूपादेवी और तेजपालकी स्त्री ललितादेवीने श्रीआबुजीके उपर नेमनाथ भगवानके मंदिरमें प्रवेश करते दोनो और अढारह लाख रूपया खर्च करके दो गोखले (जोडी इलमाटी) बनवाये सो देराणी जेठाणीके नामसेही प्रसिद्ध है

और सात करोड सोनामुहर खर्चके सुवर्णकी और मस्सीकी शाहीसे ताडपत्रके उपर और उत्तम कागजोंके उपर पुस्तकों लिखवाके सात सरस्वती ज्ञानभंडार करवाये

इत्यादिक इन भाग्यशालीओंने बहुत लक्ष्मी शुभ मार्गमें खर्च करके महापुण्य उपार्जन किया है.

श्रीसिद्धसेनदिवाकर महाराजाने प्रतिबोध किया, श्री विक्रमराजानेभी शत्रुंजयका संघ अच्छी सजावटसे निकालाथा जिसमें अनहद लक्ष्मी खर्चकी उसका संक्षेप वर्णन

संघके साथमें चौदह, मुकुटबध राजा थे
१६९ सुवर्णके जिनमंदिर थे.
सत्तर लाख श्रावक थे

एक करोड़ दस लाख पांच हजार बैलगाडी थी.
सिद्धसेनदिवाकर प्रमुख पांच हजार आचार्यथे.
अढारह लाख अश्व थे.
तीन हजार छसौ हाथी थे.

इत्यादिक दूसरेभी बहुत सामग्रीथी और प्रथम एक करोड सोना मुहरसे सिद्धसेन दिवाकर महाराजाका गुरु पूजन किया था. और उस द्रव्यसे गुरुमहाराजके उपदेशसे जीर्णोद्धार करवायी औरभी कइ सुंदर कार्य गुरु, महाराजके उपदेशसे किये है. इस संबधमें विशेष अधिकार विक्रम चरित्रसे जानना.

आचार्यश्री बप्पभट्टी महाराजके सदुपदेशसे गोपगढ (ग्वालीयरगढ) के आम नामक राजाने गोपगढमें श्रीमहावीर स्वामीका १०१ हाथ उंचा भव्य जिनालय बंधवाकर उसमें अढारह भार प्रमाण सुवर्ण प्रतिमा स्थापन की. और उस जिनालयके मुख्य मंडप और रंगमंडप करनेमें बाईस लाख पचीश हजार सोना मुहर खर्च की.

औरभी विक्रम संवत् ८११ बप्पभट्टजी महाराजके आचार्यपद महोत्सवमें एक करोड सोनामुहरका खर्च किया. और अपने नवलक्ष नामके सिंहासनके उपर बैठा कर

सवा करोड सोनामुहरसे गुरुपूजन किया और उसी गुरुपूजनके द्रव्यसे गुरुमहाराजके उपदेशसे एकसौ जीर्ण भये हुए देरासरोका जीर्णोद्धार किया

और वह आमराजाने गोपगढके उपर मनोहर विशाल एक पौषधशाला बधवादी जिसमें एक हजार स्थभ थे उसमें चतुर्विध सघकों सुख देनेके वास्ते तीन वडे विशाल दरवाजा बनवाये थे और उस पोषधशालामें एक व्याख्यान मडप तीन लाख सोनामुहर खर्च करके बधवायाथा और उसमें ऐसे तेजस्वी चद्रकातादि रत्न जडवाये की रात्रिमेंभी साधुआ त्रस कायादिकी विराधना विना पुस्तक विगेरे पढ सकते थे और बप्पभट्टसूरिमहाराजके उपदेशसे सिद्धाचलका सघ निकालके बारह करोड सौनैयाका खर्च किया था, इत्यादि यह भाग्यशाली राजाने अमित लक्ष्मी पुण्य मार्गमें खर्चकी और महान् पुण्य उपार्जन किया था. पिताका नाम बप्प और माताका नाम भट्टी था वास्ते उनका नाम बप्पभट्टी रखा गया था यह आचार्य महात्मा आकाशगामिनी विद्यासे हररोज पचतीर्थकी यात्रा करने जाते थे.

दशपूर्वधर श्रीआर्यसुहस्तिसूरिजीके प्रतिबोधसे सप्रतिराजाने सवालक्ष नवीन जिनप्रासाद करवाये और छत्तीस हजार जीर्णोद्धार करवाये और सवा करोड जिनबिंब भरवाये,

पंचानवे हजार पित्तलमय जिनप्रतिमा तथा अनेक सहस्र दानशाला विगेरासे त्रिखंड पृथ्वीकों शोभायुक्त बनाईथी इत्यादि अधिकार कल्पसूत्रटीकामें है.

गुजरातके राजा भीमदेवके प्रधान विमलशाहने सं १०८८ में श्रीआबु उपर करोडो रुपया खर्च करके अनेक भव्य जिनमंदिर बंधवाये है. जिसकों देखके लोगोंके मन बहुत आनंदित हो रहे है.

माडवगढ़ राजाका प्रधान सापृथ्वीधरें (पेथडे) तपगच्छ नायक श्रीधर्मघोषसूरिजीके उपदेशसे श्रीसिद्धाचलजी तथा देवगढ़ और मंडपाचल विगेरे शुभ स्थलमें चोर्यांशी जिनमंदिर बंधवाये यह संबंधमें विशेष हकीकत सोमतिलक सूरिकृत पृथ्वीधर साधु करित चैत्यस्तोत्रसे जानना.

श्रीकुमारपालराजाका वाहाड मंत्रीने सं. १२१३ में श्रीशत्रुंजयका जीर्णोद्धार किया, यह प्रसंगमें दो करोड़ सत्तान वे लाख सोनामुहर खर्चकी और उन्होने गिरनारके पगथी बंधाके सुलभ मार्ग किया उसमें त्रिसठ लाख सोनमुहरका खर्च किया.

पाटणके आभड नामके श्रावकने चौवीस तीर्थंकरोंके चौवीस जिनमंदिर तथा चौरासी पोषधशाला बंधाइ, इत्यादि सात क्षेत्रोंमें बव्वे लाख सोनामुहर खर्च करके आनंद लिया है.

इनके विनाभी कई भाग्यशाली जीवाने श्रीशत्रुंजय, गिरनार विगेरा महा पवित्र तीर्थोमें अपनी पुष्कल लक्ष्मी खर्चकी पुण्यानुबंधी पुण्यको प्राप्त किया है संवत् अढारहवी शताब्दीमें मोतीशा शेठने श्रीसिद्धाचलजीके उपर खाडा पुरायके टुंक बनायके अपना यशको जगत्में फैला दिया है और महान् पुण्य उपार्जन कर चुके है ऐसे उत्तम जीव जगत्में काल गर्भ पाचुके है, तथापि नामस्मरणरूपसे अभीभी मानो जीतेही है, इस प्रकार धर्मिष्ठ जीवोंको याद आयाही करते है इस कालमेंभी कई उत्तम जीव अपनी लक्ष्मीको प्रतिवर्ष अच्छे मार्गमें खर्च करके महापुण्य उपार्जन कर रहे है और कृपण जीव लक्ष्मीका संचय करनेमेही जींदगी पूर्ण करते है, और संसारकी लीला करनेके वास्ते हजारो और लाखोंका महल बंधाके और मोटर गाडीमे चलानेके लिये पुद्गलानंदी बनके पापके भागी बनते है परंतु ज्ञानचक्षुसे इतनाभी नहि सोचते है की परलोकमें जानेके बाद उस महलोमें हे चेतन ! कौन जीव लीला करेंगे मोटरगाडीमें कौन बेठेंगे ? पापके बोझ कौन ढोवेंगे ? इतना विचार ज्ञानचक्षुसे जो होसके तो जरूर समझपडे और शुभ मार्गमें लक्ष्मी खर्चनेके लिये तयार हो सके वास्ते हर एक भव्य जीवोंको "न्यायसम्पन्नविभव" प्राप्त करनेके बादभी लक्ष्मी शुभ मार्गोमें खर्च करके जैनशासनको दीपाना चाहीये. भवांतरका पाथेय तयार करना आखिर

मोक्षसुख प्राप्त होसके इस प्रकार शुभ क्षेत्रमें धनका व्यय करना. लक्ष्मीसे ऐसे शुभ कार्य और शुभ अनुष्ठान करनेसे जीवोंकों सम्यग् दर्शन होय तो अति निर्मल होता है और न होय तो नवीन प्राप्त होता है.

सम्यगदर्शन प्राप्त करते समय मिथ्यात्वका उपशम अथवा क्षयोपशम अथवा क्षय होता है. चाहे इतनी क्रिया करें, चाहे जितना द्रव्य खर्च करें, तीर्थ यात्रा करें, परंतु यहि सम्यग् दर्शन प्राप्त न होवे तो सभी व्यर्थ समझना. उप स्वतायाः शुभ अनुष्ठान और शासनकी प्रभावना और शुभ मार्गमें द्रव्यका व्यय करना. यह सभी सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके कारण है. ऐसे कारणोंकों मीलने परभी सम्यग्दर्शन रूपी कार्य नहोवे तो फिर इसके जैसा और दुःख कौन है! घरमें घी, गुड, चीनी, इत्यादि भोजनकी सामग्री होने परभी भूखा मरे तो फिर इसके जैसा मूर्ख कौन कहा जाय? ऐसेही अंनतकाल परिभ्रमण करते २ मनुष्यजन्म, आर्यभूमि उत्तम क्षेत्र, उत्तम कुल, देव, गुरु, धर्मकी योग्यता, धर्मका श्रवण इत्यादि प्राप्त होने परभी यहि वीतरागके वचनमें शंका रखके सम्यग्दर्शन प्राप्त न करे तो यहभी मूर्खही कहा जाय तो इसमें क्या आश्चर्य? ऐसा अमूल्य सम्यक्त्वरत्न जीवकों प्राप्त करनेका अपूर्व समय हाथ लगा है तो समय खोना नहि. जैसे कोई

धनका गरजु मनुष्यको धन कमानेका मोका आया होय तो प्रमाद छोडकर धन कमानेमें खामी रक्खेगा नहि, ऐसाही चिन्तामणि रत्नसे अधिक मनुष्यभवादि सामग्री पाके भव्य जीवभी सम्यक्त्वरत्नको प्राप्त करनेमें प्रमाद न करें और यदि प्रमादमें पडगया तो तो सम्यक्त्वरत्न मिल सकेगा नहि. क्योंकी सम्यक्त्वरत्न प्राप्त करना सो कुछ सामान्य बात नहि है. बहुत कठीन है उसकी कठिनताके वास्ते दश दृष्टान्त जो मनुष्य भवकी कठिनताके वास्ते कहे है सो समझना चार गतिमें भ्रमण करते २ जीवोंको मनुष्यभवमें सम्यक्त्वकी प्राप्ति होना सुलभ गीना है क्योंकी देवताओंको विषयमें अति आसक्ति होनेसे अपना आयुष्य उसीमेंही पूर्ण हो जाता है जिससे उन्होंकोंभी सम्यक्त्वकी प्राप्ति जल्द होती नहि देखो! बडी सघयणिमें कहा है की —

तहि देवा वतरिया, वरतरुणीगीयवाइयरवेण।
निच्च सुहिया पमुइया, गयपि कालन याणति ॥१॥

अर्थ—"उन भुवनोमें व्यतरिकदेवताओ श्रेष्ठ सौभाग्यवाली देवीओंके गीत तथा वाजित्रोका शब्दोंसे निरतर सुखी और हर्षित होके गया समयकों जानते नहि"

और नारकी जीवो अत्यत वेदनासे व्याकूल होनेसे उन्होंकोंभी जल्द सम्यक्त्वकी प्राप्ति होना कठिन है तिर्यचो

विवेकसे शून्य होनेसे धर्म श्रवण करनादी न बन शके तो फिर सम्यक्त्वकी बात ही दूर रही. यद्यपि उपर कहे देवता नारकी तिर्यंचोकोंभी सम्यक्त्व प्राप्त होता है परन्तु मनुष्य भवमें मनुष्योंकों उत्तम सामग्री मिलनेके बाद जितनी सुलभता है उतनी सुलभता सम्यक्त्वके वास्ते उन तीन गतिवाले जीवोंकों नहि है. वास्ते मनुष्योंकों ऐसी उत्तम सामग्री प्राप्त करके विषय कषाय उन्माद जो आत्माके कट्टर शत्रु है उन्होकों दूर करके मिथ्यात्वसे दूर रहके सम्यक्त्व प्राप्त करना यही मनुष्य भव प्राप्त करनेका सच्चा रहस्य समझना.

अब सम्यग्वक्त्की प्राप्ति कब होती है यह कहत है

जीवकों सम्यक्त्वकी प्राप्ति

ज्ञानवरणादि आठ कर्मोंमेंसे एक आयुकर्मकों छोडके सातों कर्मकी स्थिति शुभ अध्यवसायसे घटा २ के एक कोटाकोटी सागरोपममें पल्योपमका असंख्यातवा भाग न्यून करें उस समय जीव यथाप्रवृत्तिकरण करें यह करण जीवने यह संसारमें भ्रमण करते २ अनंतवार किया और यथा प्रवृति करण करके ग्रन्थि देशमें आया तो सही परन्तु आगे बढसका नहि यह पहिला करण.

दूसरा अपूर्व करण सो जीव परिणाम विशेष हैं. यह जीवने संसार परिभ्रमण करते २ कोईवार भी अपूर्व करण

कितनेक अर्धशुद्ध होवे और कितनेही अशुद्धही रहते है इस रूप परिणाम विशेपकों प्राप्त किया नहि है. वास्ते इसका नाम अपूर्व करण कहाता है यह अपूर्वकरणरूप परिणाम विशेपसे घननिवीड रागद्वेप परिणतिमयी ग्रन्थि जो दु खसे भेदने लायक है, उसका भेदन करते है सो दूसरा करण

तीसरा अनिवृत्तिकरण जो २ अध्यवसाय भये वे फल प्राप्तिके विना निवृत्ति होवे नहि. वास्ते पूर्व कहे जो अपूर्वकरणरूप परिणामोंसे जीव सम्यक्त्व पावे सो तीसरा करण

यहा तीनों करणकी साक्षीके वास्ते' कल्पभाष्यकी गाथा लिखते है:—

अतिमकोडाकोडी, सव्वकम्माण आउवज्जाण ॥
पलिया असखिज्जइ–भागे खीणे हवइ गठीण ॥१॥
गठीत्ति सुदुब्भेओ, कक्खडघणगूढमूढगठीव्व ॥
जीवस्स कम्मजणिओ, घणरागदोसपरिणामो ॥२॥
जा गठी ता पढम, गठीसमइच्छाओ भवे बीय ॥
अनियट्टीकरण पुण, सम्मत्तपुरक्खडे जीवे ॥३॥

आयुकों छोडके सातों कर्मकी अतिम याने आखिर कोड-कोडी स्थिति पल्योपमका असख्यातवे भागस न्यून रहे बाकी सर्व खप जाय, यहा गठी स्थानक है

यह गंठी (ग्रन्थि) किस प्रकारकी है? अत्यंत दुःखसे भेदन करने योग्य कर्कश वक्र गूढ गुप्त कोई खरीरादि कठिन काष्ठकी गांठ सहज भेदन नहि हो सकती इस प्रकारकी अनादि कालकी जीवकों कर्मजनित धन निविड रागद्वेप परिणतिरूप ग्रन्थि है. मो वज्रकी तरह दुर्भेद समझना.

जहां गंठी (ग्रन्थि) है वहां तक आवे उसकों प्रथम यथा प्रवृत्तिकरण. होवे, ग्रन्थि भेदके वाद दूसरा अपूर्वकरण होवे, और सम्मत्त पुरक्खडे—याने सम्यक्त्व प्राप्तव्य रूपसे जीन्होंने आगे किया है उन जीवोंकों तीसरा अनिवृत्ति करण होवे गा.

इस करणमें विशुद्ध अध्यवसायसे उदयमें आया मिथ्यात्वकों जानता हुआ, भेदते जावे और विन उदयमे आये हुवे मिथ्वात्वका दलीकोंकों उपशम करते उपशम लक्षण अंतर्मुहूर्त कालमानवा लअंतःकरणमें प्रवेश करके अंतःकरणका प्रथम समयमें जीव उपशम सम्यक्त्वकों प्राप्त करेगा. अंतःकरणका काल अंतर्मुहूर्त हे. वास्ते उपशम सम्यक्त्व अंतर्मुहूर्त काल प्रमाण समझना. उपशम सम्यक्त्वमें रहकर जीवसत्तामें रहा मिथ्यात्वका तीन पुंज करें जिस प्रकार मदन कोद्रवा धान्य विशेष है उसकों ओषधि विशेषसे शोधन किया जाता है. उपकों शोधने परभी कतिने शुद्ध होते है कितनेक अर्ध शुद्ध होते है और कितने तो अशुद्धही रहते है. इस प्रकार जीवभी परिणाम विशेषसे मिथ्यात्वकों शोधता है. शोधने पर कितने दलीक शुद्ध होय

कितनेक अर्धशुद्ध होवे और कितनेही अशुद्धही रहते है इस प्रकार जीवभी परिणाम विशेपसे मिथ्यात्वकों शोधता है शोधने पर कितने दल शुद्ध होय कितनेक अर्धशुद्ध होवे और कितनेही अशुद्धही रहते है इस प्रकार जीवभी परिणाम विशेपसे मिथ्यात्वकों शोधता है यह शोधने पर कितनेक दल शुद्ध होय, कितनेक अर्धशुद्ध होय, और कितनेही अशुद्ध रहे. ऐसे तीन प्रकारसे होते है यह उपशम सम्यक्त्वका अतर्मुहूर्तका काल खतम होने पर यदि शुद्ध पुजका उदय होवे तो अवश्य क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि कही जाय अर्धशुद्ध पुजका उदय होय तो मिश्रदृष्टि कही जाय और अशुद्ध पुजका उदय होवे तो सास्वादनमें होके मिथ्यादृष्टि होय यह कर्म ग्रन्थका अभिप्राय जानो

और सिद्धात मतके तो अनादि मिथ्यादृष्टि ग्रन्थिभेद करके तथाविध तीव्र परिणामसे अपूर्व करणमें आरूढ होके मिथ्यात्वकों त्रिपुजयुक्त करें. और पीछे अनिवृत्ति करणके सामर्थ्यसे शुद्ध पुजकों जानकर औपशमिक सम्यक्त्व विना पाये प्रथमसे ही क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करें

और कितनेक आचार्य कहते है की यथा प्रवृत्ति आदि तीन करणका क्रमसे उपशम सम्यक्त्वसे गीरा हुआ मिथ्यात्वमें जाता है.

उपशम सम्यक्त्व तथा क्षयोपशम सम्यक्त्वका भेद नीचेसे जानो.

उपशम सम्यक्त्वमें—उदयमें आये मिथ्यात्वका क्षय और उदयमें न आये मिथ्यात्वका सर्वथा उपशम होय, प्रदेश उदयभी न होय. और क्षयोपशम सम्यक्त्वमें उदयमें आनेवालाका क्षय और नहि आनेवालाका उपशम होय परंतु प्रदेश उदय होय प्रदेशसे मिथ्यात्व नष्ट हो जाय, क्षयोपशम सम्यक्त्वक जघन्यकाल अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट काल छाछठ सागरोपमसें कुछ अधिक जानना.

क्षायिक सम्यक्त्व

अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, और लोभकी चोकडीकों खपाकर मिथ्यात्वमोहनी खपानेके बाद मिश्रमोहनीभी खपाके सम्यक्त्व मोहनी खपाता कोई जीव काल करे (मर जाय) तो प्रथम आयु बांधा होय उस गतिमें जाय. जिससे चारों गतिमें क्षायक सम्यक्त्व पावें इसी कारणसे शुरु मनुष्य गतिसे होती है. और पुरे चारो गति होता है जिससे चारों गतिमें क्षायक सम्यक्त्व जीव प्राप्त करसकता है ऐसा कहा है. तीर्यंचमें उत्पन्न होनेसे असंख्याता वर्षके आयुष्य वालेही क्षायक सम्यक्त्वकों पावे. संख्याता वर्षके आयुष्य वाले उत्पन्न होनेसे क्षायकसम्यक्त्व न पावे. कदापि कोई जीवनें आयु बांधा होय और बाद क्षायक सम्यक्त्व पावे तो

जिस गतिका आयु बाधा होय उसी गतिमें क्षायक सम्यक्त्व लेके जाय कदापि आयु न बाधा होय और क्षायक सम्यक्त्व पावे तो उसी भवमें केवलज्ञान पाके मोक्षमें जाय आयु बाधा होय तो उत्कृष्टसे तीन और आखिर चार भवमें मोक्षमें जाय क्षायक सम्यक्त्व मनुष्य भवमें पावे तब अनतानुबधीकी चोकडी और मिथ्यात्वमोहिनी, मिश्रमोहिनी और सम्यक्त्वमोहिनी, यह सातों प्रकृतिका सर्वथा क्षय करकेही क्षायक सम्यक्त्व पाता है

उपशम सम्यक्त्व जीव जब पाता है तब ग्रीष्म ऋतुमें तप्त भया जीवको गोरोचन चदनके रससे सिंचन करनेसे जैसी शीतलता होती है-जैसा आनद होता है वैसा आनद वैसी शीतलता उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करनेवालेको प्राप्त होती है.

सम्यक्त्व प्राप्ति

(राग-सारग)

हे सुखकारी ! आ ससार थकी जो सुजने उद्धरे
समकित विना, भव भवमा अथडाता अत न आव्यो,
ए सत्य वीना, जिन आगमथी जाणी समकित पायो
धनसार भवे मुनिदान दइ, समकित करी भव तेर लही,
पदवी तीर्थंकर पाम्या सही समकित विना०
वे नाभिनदन फरमावे, मिथ्यात्व गति चउ रखडावे,

समकित वडे शिवपुर जावे........ ..समकित विना०
जुओ ? जंगलमांहे कठीआरे, मुनिदान दीधुं भव नयसारे;
ते वीर नमो पचम आरे........ ...समकित विना०
ते समकित रुपी ल्यो मेवो, शुद्ध देव गुरु धर्मज सेवो;
एम भाखे देवाधिदेवो........ -- .. ....समकित विना०
समकित लही भवजळ तरजो, जिन 'भक्ति' भली
भावे भरजो
शाश्वत पदवी प्रेमे वरजो..............समकित वीना०

सम्यक्त्व प्राप्तिके बाद आत्मानंद

सम्यक्त्व पानेके वाद जीवकों वस्तुका यथास्थित स्वरूप समझमें आता है. आत्माका सत्यवोध होता है. और वह आत्मबोध प्राप्त होनेके पीछे जीवकों परमानंदमें मग्न होनेसे संसारिक सुखका अभिलाष कभी होता नहि. यह सुख अल्प और अस्थिर होनेसे उसको यह दुखरूप मानता है. इष्टवस्तुको देनेवाला कल्पवृक्षकों पाके शुष्क अन्नकी आशा कोइ करता नहि. और मोक्ष सुखकों देनेवाला सम्यग् आत्मज्ञानकों पाके अनंत दुःखके कारणरूप सांसारिक सुखकों कभी न चाहे. जो जीव आत्मज्ञानमें आसक्त है. वे जीव कभी नरक और तिर्यञ्च गतिकों कभी पावेंगे नहि. जैसे नेत्रवाला मनुष्य कभी कुंआमें गिरेगा नहि, जिस जीवकों आत्मबोध प्राप्त भया होय उनकों

बाह्य वस्तुकी इच्छाभी होती नहि. जैसे अमृतका आस्वाद करनेवालोंको क्षार जल पीना अच्छा नहि लगता, वैसेही क्षार जलके समान ससारके मिथ्यापदार्थके उपर आत्मबोधवाले जीवको आसक्ति होतीही नहि

आत्मबोध प्राप्त करनेवाला जीवको हमेशा अपूर्व आनंदही प्राप्त होता है क्योंकी तत्वज्ञान होनेसे कर्म बंधनादि स्वरूपको वह अच्छी तरहसे जानता है जैसे यह जीव मिथ्यात्व अविरति कषाय और योग यह चार कर्मबंधनके हेतुओंसे समय २ आयुको छोडकर सात कर्मको बांधता है. वे जब उदयमें आते है तब यह आत्मा स्वयही भोगता है और कोई साथी होता नहि, आयु कर्म सारेभवमें एकवारही बंधाता है जिस गतिका आयु बंधा होगा वहां आत्मा अकेलाही चला जाता है और कोई साथमें नहि आता और द्रव्यादि इष्ट वस्तुका वियोग होता है, तब यह सोचता है की "मेरा परवस्तुका संबंध नष्ट भया, मेरा द्रव्यतो आत्म प्रदेशमें रहे हुए ज्ञानादि लक्षण लक्षणवाला है यहतो कही जानेवाला नहि है" और कभी कोइ द्रव्यादि वस्तुका लाभ होवे तब सोचता है की "मुझे यह पौद्गलिक वस्तुका संबंध अमुक सबबके लिये भया है उसमें मोह क्यों करना चाहीये ? यह कोई वास्तविक मेरा नहि" और वेदनीय कर्मका उदयसे शरीर कष्टादि की प्राप्ति होती है तो यह

समभावकों धारण करता है. चित्तमें परमात्माका ध्यान करता है. आवश्यक धर्मकार्योंमें विशेष करके उद्यमी होता है. जिससें एकंदर आत्मबोधवाले जीव सदा सुखकाही अनुभव करते है.

ऐसा आत्मिक सुख सम्यक्त्वकी प्राप्ति के विना जीवकों कदापि प्राप्त भया नहि, होता नहि, होनेवालाभी नहि है. वास्ते हे चेतन ! जो तुम्हे सच्चे सुखकी इच्छा होय, अभि-रुचि होय, तो उपाधिमात्रकों छोडके सम्यक्त्वरत्नकों प्राप्त कर. उनकी प्राप्तिके लिये यत्नकर. तब सच्चा धनवान होगा. समकितिजीव सच्चे धनपति है. उन्होंके वास्ते शास्त्रकार महाराजा लिखते है कीः—

धनेनहीनोऽपिधनी मनुष्यो, यस्यास्ति सम्यक्त्वधनंप्रधानं
धनं भवेदेकभवे सुखार्थं, भवे भवेऽनंतसुखी सुदृष्टिः।

अर्थ—बाह्य धनसे रहित मनुष्यभी जिसके पास सम्यक्त्व रूपधन है वह धनवानही कहलाता है, क्योंकी बाह्य धनतो एक भवके सुखके वास्ते है और सम्यक्त्व धनतो अनेक भवके वास्ते काममें आता है. (वास्ते और सम्यत्त्व धननो अनेक भवके वास्ते काममें आता है) वास्ते वही सच्चा धन है. सम्यत्त्व भव २ में और जन्म २ में अनंत सुख देनेवाला है. और अंतमें मोक्ष सुख देनेवाला है. वास्ते बाह्यधनसेभी सम्यत्त्व

रूप धन अधिक गुणवाला समझना

इस प्रकार सम्यक्त्वरत्नका महिमा होनेपरभी और वास्तविक सुखका कारण होने परभी पुद्गलानदी भवाभिनदी जीव सम्यक्त्वरत्नको प्राप्त करनेके लिये लेश मात्र प्रयत्न न करके ससारके उपाधि जनक पदार्थोंमेंही आसक्तिवाले बनते है और विषय कषायमें मस्त रहके कर्तव्य पराङ्मुख बनके चिंतामणी समान मनुष्य भवायें उत्तरोत्तर शुभ सामग्रीको हारके अनत दु खके भागी बनते है ऐसे जीवोंको कौनसी उपमा देनी चाहीये ! यह सुज्ञ जीवही विचार कर लेंगे सभी भव्य आत्माओंने ऐसी अमूल्य सामग्री पाके सम्यक्त्वरत्नको प्राप्त करनेके वास्ते बराबर तनमन धनसे कटिबद्ध होना चाहीये मनसे अच्छे सुदर विचार करना आर्तध्यान, रौद्रध्यान होने नहि देना, झूठ विकाला करना नहि, धर्मध्यानमें आरूढ होनेका प्रयत्न करना, झूठवचन बोलना नहि जिस वचनसें दूसरेको अत्यत दु ख होय ऐसा वचन बोलना नहि सत्य होय तौभी दूसरेको दु ख होवे यह वचन असत्य कहता है वास्ते अच्छे, मीठे, मधुर, हित और मित वचन बोलना, प्रभुके गुणगानमें और महापुरुषोंके चरित्र कथन करनेमें वचनका उपयोग करना कायासेभी शासनके शुभकार्य करना, तीर्थयात्रा पैरसे चलके परहेज पालनपूर्वक करना, दु खी जीवोंको बचानेके वास्ते प्रयत्न करना, इस प्रकार मनवचन कायाके शुभ व्यापारसेभी

सम्यत्त्वरत्न जल्द प्राप्त होता है.

सम्यत्त्वरत्न मिलनेके बादभी उनकी रक्षाके लिये बहुत लक्षपूर्वक प्रयत्नकी अपेक्षा है जैसे धनवान मनुष्य धनकी रक्षामें कोई प्रकारकी खामी रखता नहि वैसेही सम्यक्त्ववान् जीव अपना सम्यक्त्वरूप धनकी रक्षामें जराभी प्रमाद न रक्खें तबही वह रह सकता है.

सम्यत्त्वरत्नकीं रक्षाके वास्ते अच्छे गुणी जनोंका समागममें रहना. अयोग्य और धर्महीन मिथ्यादृष्टि वालेका ज्यादा परिचय करना नहि. ऐसे परिचयसे ही पतित होनेका कई दृष्टांत शास्त्रोंमें है और जिसमें हिंसावृत्ति होय कामविकारका वर्णन किया होय, ऐसे पुस्तकभी कभी पढ़ना नहि. ऐसे पुस्तकके पठन मात्रसेभी आत्माकी लेश्याका जल्थ परावर्तन होनेका संभव रहता है. प्रतिकूल संयोगोसे भद्रिक परिणामी जल्द अधःपतन होता है. मिथ्यादृष्टिके ज्यादा परिचयसे सम्यक्त्वसे गिरनेका संभव रहता है. तत्वार्थसूत्रमें शंका, कंखा, वितिगिच्छा, अन्यदृष्टिप्रशंसा और उन्होंका संस्तव यह पांच सम्यक्त्वका अतिचार कहें हैं.

शंका—याने जिन वचनमें शंका करना (१) कंखा याने अन्यदर्शनकों स्वीकारनेकी वांच्छा करना. (२) विति-

गिच्छा याने धर्मके फलमें सदेह करना, जैसे मै यह शुभक्रिया करताहु परन्तु इसका फल होगा या नहि ? (३) अन्यदृष्टि प्रशसा याने दूसरे दर्शनवालोंके महिमा देखके प्रशसा करना जैसे जैन दर्शनसे इस दर्शनमें महिमा अच्छा देखनेमें आता है (४) सस्तव याने अन्यदृष्टिवालेका परिचय करना ५ परिचय करनेसे ज्यादा समयके बाद सम्यक्त्वसे आत्मा पतित होता है उपाध्याय महाराज यशोविजयजी सम्यक्त्वकी सज्झायमें कहा है की—'हीणातणो जे सग न तजे, तेहनो गुण नवी रहे, जेम जलाब्जिजलमा भव्यु गगानिर, लुणपणु लहे' हीन मनुष्यका सग अपने अच्छे गुणकोभी नष्ट करता है अर्थात् मिथ्यात्वीका सगसे सम्यक्त्व गुणको हानि होती है जैसे समुद्र जलमें मिला हुआ गगाजलभी क्षार हो जाता है वास्ते मिथ्यात्वीका परिचय समकिती जीवने करना नहि उपर कहे पाचो अतिचारोंको समझके जरूर उससे दूर रहना अगर दूर न रहे तो मिथ्यात्वरूप चोर सम्यक्त्वरूप धनको लूट लेंगे श्रद्धासे पतित करेंगे आगेके गुणठाणकों चढने न देकर नीचेके गुणठाणमें पटकेंगे ऐसी बहोत हानि होगा निन्हवादि कई जीव प्रतिकूल सयोगोसे श्रद्धासे पतित होके सम्यक्त्व खो बैठे है. और ससारमें भटके है यद्यपि सम्यक्त्ववाले जीवोंका मोक्ष विषयक निर्णय हो चुका है वास्ते आगे या पीछे आखीर अर्धपुद्गल परावर्तन के भीतर सकल कर्मक्षय

करके यह मोक्षमें जायगे, परंतु जहां थोडेही भवमेंसाध्यसिद्धि होतीथी वहां असंख्यात और अनंता भवतक सम्यक्त्व खोकर भटकना और अनंता दुःख सहना सो कोई थोडी शोकदशा न कही जाय.जैसा कोई कोट्याधीशका सभी द्रव्य हरण करके कहा जाय की "आंगे तुम्हें कभी लक्ष्मी प्राप्त होगी" ऐसा कहने परभी उन्हकों अतिशय दुःख होता है ही, शोक संतापमें मग्न होता ही है. आखीर पागलभी हो जाता है. वैसेही सम्यक्त्वरूप सच्ची लक्ष्मी यह जीवके पाससे जानेके बाद मिथ्यात्वरूप भूतके समागमसे भवसागरमें भटकते २ कईवार पागलभी हो जाता है. यह निश्चय हृदयमें धारण करके सम्यक्त्व रत्नका रक्षण करनेके वास्ते पुरुषार्थ फोरवना, सम्यक्त्ववाले जीवकों सम्यक्त्व रक्षाके लिये जिस प्रकार गुणी जनोंका समागम शुभ फल दायक कहा है, वैसेही सम्यक्त्व निर्मल करनेके वास्ते शुभ भावनासे तीर्थोंकी यात्रा प्रतिवर्ष करना सोभी फलदायक है. यात्रा करते समय कषायकों मंद करना, प्रतिदिन सवेरे उठना, तत्त्वकी चिंता करना, आत्मिक लक्ष्मी कितनी कमाया ? कितनी खोया ? इसका हिसाब करना'

व्यवहारमें खोटका धंधा छोडके पैदाशका धंधा करते है. वैसेही आत्माकों नुकशान हो, ज्यादा हानि होय ऐसा धंधा करना नहि आत्माकों लाभ होय आत्माका हित हो

आत्म परिणति सुधरे, आत्माका परिचय होवे ऐसा धधा हमेशा करना, निरतर १-२-३ सामायिक करना विशेप न वने तो १ सामयिक तो अवश्यमेव करनेकी आदत रखनी चाहीये इन सामयिकमें राजकथा देशकथा, भक्तकथा, स्त्रीकथा, यह चारों विकथाओंको देशनिकाल करके धर्मकथाही करनी चाहीये, अथवा अच्छे २ वैराग्य नीतिके पुस्तक पढना महा पुरुषोका जैसे गजसुकुमाल, अवतिसुकुमाल, धनाकाकदी, धनशालिभद्र, जबूस्वामी, प्रभवस्वामी, मेतार्यमुनि, दशार्णभद्र, विगेरे महाप्रभाविक शासनस्थभोका तथा सुलसा, रेवती, चदनवाला आदि महासतिओंका जीवन चरित्र पढना, जिसका जीवन चरित्र पढनेसे उन २ उत्तम जीवोंका गुण आपकों स्मरण पथमें उपस्थित होगा, आपके हृदयपट उपर कोई अपूर्व जागृति होगी. वैराग्यकी वासना प्रकट होगी उन जीवोंका आत्मबल, उन जीवोंकी धैर्यता और धर्म उपर निश्चलताका अनुभव होगा और सामायिकमें पाच प्रकारका स्वाध्यायभी करना.

१ जो पुस्तक पढना सो मनन पूर्वक पढना

२ पृच्छना या शका पडे तो गुर्वादिकों पूच्छके वस्तुका निर्णय करलेना,

३ परावर्तना-याने अपनेकों जो जो प्रकरणादि याद होवे उनकी आवृत्ति करना जिससे की भूल न जाय,

४ अनुप्रेक्षा–याने प्रथम सोच रक्खा अर्थका चिंतन करना, अथवा वारह भावनाओंकों आत्माके साथ विचारना.

५ धर्मकथा दूसरेंकों कहना अथवा सुनना. यह पांच प्रकारके स्वाध्यायसे मनकी एकाग्रता होती है. वास्ते सामायिकमें उपर कहे कार्य करनेसे जीव सम्यक्त्वकों प्राप्त करता है. प्राप्त भया होय सो विशेष निर्मल होता है. जिससे भवभीरु जीवोंकों सम्क्तयत्वकों प्राप्त करनेके वास्ते और प्राप्त होनेके बाद उनका रक्षण करनेके वास्ते सतत उद्यमी बनना. अगले गुणठाणे चढनेके वास्ते श्रावक के तीन मनोरथ मनोमंदीरमें विचारना. मनन पूर्वक भावना यह नीचे मुजब

श्रावके तीन मनोरथ

१ कब मैं वाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहका त्याग करके मेरा आत्माकों सुखी करुंगा. और दोनो प्रकारका परिग्रह महापापका मूल है दुर्गतिकों देनेवाला है. कषायके स्वामी है. अनर्थोंके उत्पन्न करनेमें हेतुभूत हैं. दुर्गतिमें लेजाने वाले है वोधी वीजरूप सम्यक्त्वके घातक है. सत्य, संतोष, ब्रह्मचर्य शांति, मार्दव, आर्जव, ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, चरणसीत्तरी, करणसीत्तरी, वारह भावना, पंचमहाव्रत इत्यादिक धर्मराजके सैन्यकों पीछे हटाने वाले है छेवट अधोगतिमें पहुंचाने वाले है. ऐसे परिग्रहकों जब मैं दूर करुंगा। उस वख्त मुझे सोनेका

सूर्य उगेगा मेरा आत्मा आत्मिकसुखमें लीन होगा यह दिन कब आवेगा यह पहिला मनोरथ.

२ कब मैं पंचमहाव्रत लेकर, पंचसमिति, तीन गुप्ति यह आठ प्रवचन माताका आदर करुंगा ? तथा घोर अभिग्रहको धारण करके ब्यालीश दोष रहित शुद्ध आहारी बनके बारह भेदसे तप करके सकल कर्मको तोडके मेरा आत्माका उद्धार करुंगा ? और अंत आहारी, पंतआहारी अरसआहारी, विरस अहारी, सर्व रसका त्यागी होके धनाकाकंदी धनाशालिभद्रादिक मुनिवरोंकी तरह त्यागी बनके शुद्ध संयम धारी होके कर्म शत्रुओंको कब हटाउंगा? 'धन्य धन्य यह दिन मुझे कब होगा? मैं संयम लेउंगा शुद्ध जी" इत्यादिक संयम ग्रहण करनेकी भावना प्रकट करके संयम ग्रहण कब ,करुंगा ? जब मेरा संयम लेनेका दिवस आवेगा तब मेरे मनके मनोरथ सफल होंगे और उसी दिन मैं भाग्यशाली होउंगा यह दूसरा मनोरथ

३ कब मैं अढारह पापस्थानोंको आलोइन करके निःशल्य होके चौदह राजलोकका सभी जीवोंको खमाके सभी व्रत संभालके अढारह पापस्थानकोंको त्रिविध २ मार्गसे क्षीण करके चारों अहारका पच्चख्खाण करके अंतिम श्वासोश्वाससे यह शरीरकोभी क्षीण करके तीन प्रकारकी आराधना करता भया, चार मंगलरूप चार शरणको उचारता भया, संसारको

पृष्ठ देता भया, शरीरकी ममता रहित होके मरनकों न वांछता अंतकालमें पंडित मरणकों प्राप्त करुंगा !

यह तीन मनोरथकों उत्तम श्रावक श्राविकाओं मन, वचन, कायासे शुभ परिणामसे भावता भया कई कर्मको निर्जरा करके संसारका अंत करनेवाला मोक्षरूप उत्तम शाश्वत सुखकों देनेवाला संयमकों ग्रहण करनेकी अभिलाषा वाले होते है और जब सद्गुरुका संयोग मिले तब कटिबद्ध होके उन्होंकी वैराग्यवाली देशना सुनकर यह संसाररूप बेडी तोड़के संयमका अंगिकार करते है.

तीन मनोरथ

[ओधवजी संदेशो कहेजो श्यामने–ए राग]

त्रण मनोरथ मनथी चाहुं सर्वदा,
चाहुं वळी क्यारे मळशे चारित्र जो;
जग जंजाळने जुठि जल्दी जाणीने,
क्यारे करीश हुं स्थिर–निर्मळ आ चित्त जो....
सफळ थजो म्हारा ए मनना मनोरथो. ॥१॥
महा मुनिवर माफक संयम पाळीने
क्यारे थइश हुं अंतरमां उजमाळ जो,
धना काकंदी–मेघ धन्ना शाळी परे,
संयम पाळी क्यारे वरीश शिवमाळ जो....

सफळ थजो म्हारा ए मनना मनोरथो ॥२॥
पाप स्थानक प्रेमे अढार आलोचीने,
क्यारे खमावीश सहुने धरी उल्लासजो,
अणसण करी आ देहनी ममता मुकीने
क्यारे मानीश मृत्यु-महोत्सव खास जो
सफळ थजो म्हारा ए मनना मनोरथो ॥३॥
त्रण मनोरथ मनना फळशे जे समे,
ते समये मानीश मुजने धन्य धन्य जो,
सफळ थजो म्हारा ए मनना मनोरथो,
"भक्ति" भावे प्रभु पासे याचु न अन्य जो
त्रण मनोरथ मनथी चाहु सर्वदा ॥४॥

भव्य जीवको सयमके प्राप्तिके अनतर मोक्ष प्राप्ति

भव्य जीव जब अमृत समान ससारको निकदन करनेवाली सद्गुरुकी देशना सुनता है तब उसको ससार कडुआ जहरके समान होजाता है और गुरुमहाराज के पाससे चारित्र्य गृहण करते समय ऐसे उद्गार निकालता है की —

हे गुरु महाराज ! हे परम उपकारी ! हे करुणाके सागर! अनादि कालसे मोहनिद्राके वशसे नष्ट हो गया है व शुद्ध चैतन्य जिसका ऐसा मुझको आपने अच्छी तरह जागृत किया है, वास्ते यह जगत्में धन्य और पुण्यशाली जीवोंकी कोटिमें

म अग्रेसर भया हूं क्योंकी अनंता कालसें कुमार्गसें रहा मुझको शुद्धमार्ग बतानेवाले आप मिले, यह संसाररूप समुद्रमें डुबता और विविध प्रकारके आधिव्याधिरूप जल जंतुओंमे पीडित ऐसा मुझे संसाररूप समुद्रसे तारनेके वास्ते सद्धर्मरूपनाव लेके आप आये है. अबतक इन्द्रियोंरूप चोरोंने स्नेहरूप पासमें मजबूत बांधके क्षुधा तृषासे पीडित भया हुआ मुझको भवरूप जेलमें पटकाथा. जिससे जन्ममरण आधिव्याधिका लठ्ठरूप घाव लगनेसे बहुत दुःखी भया हुआ मेरा कोई शरण न भयाथा. परन्तु मेरे शुभ कर्मोंका योगसे बंद्धकों छोडानेवाला, अरक्षितकी रक्षा करनेवाला परम कृपालु आप मिले है. यह संसारमेंसे जीवकों नरत्वकी और देवत्वकी ऋद्धिमां प्राप्त होनी सुलभ है. परन्तु सद्गुरुका संयोग मिलना अत्यंत दुर्लभ है. इतने काल तक मैंने कईवार षड्रस भोज-नका आस्वाद लिया परन्तु जन्म मरणकों दूर करनेवाली सद्गुरुकी वाणीरूप सुधाका आस्वादन न कियाथा. विद्वान हो चाहे पंडित हो परन्तु गुरु महाराज विना सम्यक्त्वके स्वरू-पकों जान नहि सकता.

जैसे बडा नेत्रवालाभी रात्रिमें दीपकके विना पदार्थकों देख नहि सकता; वैसेही जीवभी सद्गुरुके विना सत्तत्त्वकों जान नहि सकता. संसारी जीवोंकों सभी जगह पापका उपदेश देनेवालेका संभव ज्यादातर होता है. लोकभी अनादि कालके

अभ्याससे स्वयमेव पापके कार्य करनेमें तत्पर होते है परन्तु सर्व प्रकारके हितका उपदेश करनेवाले और जिसके समागमसे अनेक जन्मोंका पाप भस्मीभूत होते है ऐसे परम उपकारी गुरु महाराजका सयोग जीवको मिलना अत्यत दुर्लभ है इसलिये मैं अपना आत्माको उच्च श्रेणीमें चढाऊ

इस प्रकार करके सवेग-वैराग्यके तरगसे भव्य जीव सद्गुरुके पास स्ववीर्य उल्लाससे चारित्र्य ग्रहण करके, पच महाव्रत, आठ प्रवचन माता, दश प्रकारके यति धर्म, चरण-सित्तरी, करणसित्तरी, बाईस परिसहको जीतना इत्यादि धर्मराजकी फौजको साथमें लेके कर्म राजाकी फौजको हटाके अप्रमत्तपनासे निरतिचार चारित्र्य पालन करके गुरुमहाराजकी आज्ञा शिरपर चढाके क्षपक श्रेणिके उपर आरूढ होके उज्वल भावनासे शुक्लध्यानके आदिके दो चरणके ध्यान करके, केवलज्ञान केवल्दर्शन पाके आखिर शैलेशी अवस्थाको प्राप्त करके चौदहमें गुणठाणमें सभी प्रकारके योगोका रुधन करके जहा अनत सिद्ध परमात्मा विराजमान भये है ऐसे शाश्वता सिद्धिस्थानमें जाकर आत्माके अखड आनदका अनुभव करनेमें भाग्यशाली बनता है मोक्ष प्राप्त करनेमें तीन अग मिलनेके बादभी यदि सयममें वीर्य फोरवेगा तभी सपूर्ण कार्यसिद्धि होगी तीनों कारण मिलने परभी सयम हाथ न लगा तो ससारका भ्रमण तो खडाही रहनेका.

चार अंग नीचे माफिक है.

मोक्षके चार अंग उत्तरोत्तर दुर्लभ है

हे आत्मा ! तु बराबर दीर्घदृष्टिसे खूब गहरा विचार करलेना. उपर बताये क्रम बिना अर्थात् मनुष्यभव धर्मका श्रवण करना, धर्मके उपर श्रद्धा और अंतमें संयममें वीर्यका फोरवना यह चार बातें इकठी किया बिना संसारमेंसे तरना होसकता नहि. जो चारों वस्तु बराबर इकठी होगई तो तूभी शीघ्र सिद्ध सुखका अखंड आनंद प्राप्त करसकेगा. एक एक वस्तु उत्तरोत्तर बहोत दुर्लभ है. उत्तराध्ययन सूत्रकार मूल सूत्रमें इसकी दुर्लभता दिखाते भये कहते है कीः—

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणि य जंतुणो ।
माणुसंतं सुइ साद्धा, संजमंमि अ वीरिअं ॥ १ ॥

जीवकों मोक्षगमन करनेके वास्ते यह चार अंग अतीव दुर्लभ है. मनुष्यपना दश दृष्टांतोसे दुर्लभ है यह प्रथम कह गये है. मनुष्यपना प्राप्त होनेके बाद धर्मश्रवण करना अति दुर्लभ है. यहभी तेरह काठीआ विगेरेका दृष्टांतसे प्रथम कह गये है. यह सभीकों हटाके कदापि धर्मश्रवण किया तौभी श्रद्धा होना अति दुर्लभ है. श्रद्धा होने परभी संयममें वीर्य फोरवना यह तो अत्यंत दुर्लभ है यह सभी सामग्री इकठी होवे तब सिद्धिपुरीमें जा सकें तो हे चेतन ! हे आत्मा ! तुझे

सिद्धिस्थानके अनत सुखकी यदि चाहना हो और तु ससार के भयकर दु'खोंसे परेशान भया हो तो मनुष्यत्व पाया है इसको सफल करनेके वास्ते हमेशा सद्‌गुरुका समागम करके धर्मका श्रवण कर, धर्मके श्रवण विना तेरा उद्धार कदापि न होगा यह अचूक याद रख धर्मका श्रवण करके इसके उपर सवल श्रद्धा करना की जिससे समकीत जैसी अमूल्य वस्तु प्राप्त होगी सम्यक्त्व पानेके वाद सर्व विरति सामायिक अथवा देशविरति सामयिकको प्राप्त करनेके वास्ते दुर्गतिको होनेवाली हिंसाका त्याग करना प्राणी मात्रको अपने समान मानके जैसा वने उनको वचानेका उद्यम करना सत्यको स्वाधीन करना असत्यको देशनिकाल करना दूसरेकी वस्तु पत्थरके समान गिनके हाथमें ग्रहणभी न करना शीलरूप आभूषणसे स्व शरीरको अलकृत करना परस्त्रीको माता वहिन व पुत्रीके समान गिनके कभी विकारयुक्त दृष्टि मत करना सोने चादिके गहिने कदापि तेरे पास न हो फीरभी शीलरूप आभूषणसे तेरा शरीर अत्यत सुशोभित लगेगा शीलसे रहित लाखों रुपयेके जेवरसे तेरा शरीर शोभित न होगा और रावण जैसे परस्त्रीमें आसक्तिवालोंकी माफक तेरीभी दुर्दशा होगी और सतोपका सेवन करना क्रोधादिक शत्रुओंके उपर क्रोध करके आत्म गृहमेंसे दूर करना उनके आधीन मत होना वाह्य शत्रु जो नुकशान करते है इससे ज्यादा

अंनतगुण नुकसान आंतर शत्रु करते है. यह बराबर समझके उनकों हटादेना. अनादि कालके अभ्याससे यह देहमें आत्मभाव मनाया है. देह यह मैं हुं ऐसा जानता है. शरीरके सुखसे सुखी, शरीरके दुःखसे दुःखी रात्रि दिन उन शरीरका सेवन करनेमें उनका रक्षण करनेमें अत्यंत पालन पोषण करनेमें तु काल व्यतीत कर रहा है. तो ऐसा बहिरात्वभावकों त्याग करना.

चाहे जैसा पापात्मा हो सोभी पुण्यके उदयसे सद्गुरुका योग पाके यदि पापभीरु बने तो धर्मका अधिकारी बन सकता है. और पापभीरु बनके यदि पापका त्याग करनेकों और प्रभु प्रणीत धर्मका स्वीकार करनेकों उत्साहित हो तो अपनी घोर पाप वृत्तिका परित्याग करके बडी खुशीसे प्रभु प्रणीत धर्मके स्वीकार करणद्वारा सुश्रावक अथवा सुसाधु बन सकता है जिससे घोर पापात्माओंभी सद्गुरुके योगसे परम धर्मात्मा बनके सामान्य जीवोंकों आश्चर्य उत्पन्न होवे एसी रीतीसे अल्प कालमें परमपदके भोक्ता बन गये है. वास्ते हे आत्मा ! तुम्हे बहोत फायदा होगा.

आत्मा शरीरसे भिन्न है—अलग है अरूपी है. कर्मके वशसे शरीरका संबंध अनादि है परंतु अच्छे उपायोंसे यह संबंध अलग होसकेगा जैसे सुवर्णमें मिली हुई मीट्टी अग्निके

सयोगसे दूर होती है इस प्रकार आत्माके उपर रही कर्म रूप मीट्टी तपरूप अग्निसे दूर होसकती है यह ख्यालमें रखना दो अष्टमी दो चतुर्दशी, शुक्लपचमी इत्यादि सिद्धान्तोंमें उत्तम तीथी कही है उत्तम तिथिओंके पौषध करके ससारके बोजको उस दिन दूर करना प्राय तिथिके दिन परभवके आयुका बध पडता है तो ऐसा उत्तम दिवसमें तू पौषध विगेरेकी उत्तम क्रिया करके अच्छे अध्यवसायमें रहेगा, तो शुभ गतिके आयुका बध पडनेसे भवातरमें दु खी होनेका समय नहि आवेगा सूर्यवशा तीन खडके भोक्ता महाप्रतापी राजा होने परभी अष्टमी चतुर्दशीका आराधन नहि छोडा था अपने प्राणसेभी अधिक तिथिओंका आराधन किया था दूसरोंको आराधन करानेके वास्ते सप्तमी और त्रयोदशीके दिन पडह बजवाते थे की जिससे दूसर जीवोंभी उनकी साथ पौषह व्रत करनेको तैयार होते थे यह सब लक्षमें लेकर जरुर पाच तिथिका, और आखिर दो चतुर्दशीका पौषध करके आत्माको पवित्र करना इन्द्रियोंका गुलाम होना नहि इन्द्रियोंके आधीन होगा तो इन्द्रियों रूप अश्व तुम्हे दुर्गतिरूप खाडेमें पटकेंगे और बहोत दु खी करेंगे वास्ते इन्द्रियोंको अपने वश रखके तेरी गुलाम बनाना जिससे अभक्ष्य, अनतकाय, रात्रि भोजन, कदमूल विगेर पापोंके वाज वाली चीजोंका भक्षण करनेका समय तुम्हे कभीभी न आवेगा इन्द्रियोंको वश करनेम

सावधानी रखना.

पौद्गलिक वस्तुओंकी अनित्यता संसारमें रहे जीवोंकी अशरणता विगेरे शुभ भावनाओंका वेग जैसे २ प्रबल होता रहेगा वैसे २ ममत्वरूप अंधकार इतने २ प्रमाणमें क्षीण होता जायगा और समताकी ज्योति प्रकट होगी. संसारकी गति गहन है. संसारमें सुखी जीवके अपेक्षा दुःखी जीवोंका क्षेत्र विशाल है. आधि,व्याधि, शोक संतापसे लोक परिपूर्ण है. सुखके साधन हजारह होने परभी दुःखकी सत्ता जल्दी प्रकट होती है. ज्ञान गर्भित वैराग्य विना दुःख कमती हो नहि सकता, ज्ञान गर्भित वैराग्य प्राप्त करनेके लिये उनके साधनोंकी पूरी जरूरत है. वास्ते पूर्वाचार्य कृत वैराग्यसे भरे पुस्तकोंको पढकर जैसा वनपड़े ज्ञानगर्भित वैराग्य प्राप्त करना और अंतमें चाहे जल्दी चाहे देरसे जरुर संयमरूप साम्राज्यका अंगीकार करना. संयम विना मुक्तिको प्राप्त नहि कर सकेंगे संयम देवलोकमें देवताओंको नहि है. नारकीओंको नहि है. तिर्यंचोंको नहि है. सीर्फ मनुष्योंको ही उसकी प्राप्ति हो सकती है उसमेंभी आर्यदेश, उत्तम कुल, निरोगी शरीर और संपूर्ण श्रद्धा होनेके वादही प्राप्त हो सकता है, तो आखीर पहोंचने परभी मोहके पंजेमेंसे छुटनेका समय न लिया जाय तो फिर कौन भवमें कौन गतिमें लिया जायगा? जब तब किसीभी भवमें संयम लेनेके वादही मुक्तिको पहुंचना है. तो फिर इसी

भवमें संसारको छोडके संयम गृहण करनाही श्रेयस्कर है यद्द अवसर्पिणी कालमें पांचवे आरेमें यह भवमें मुक्ति पाई जाय तथापि तीन भवमें अथवा सात आठ भवमें तो जरूर जन्ममरणके क्लेशोंको काट कर मुक्ति मंदिरमें पहोंच सकेंगे परन्तु संयम लेनेके बादभी बरावर पुरुषार्थ न करेगा और संसारकी उपाधिमें-आर्तध्यानमें-मौजमझाहमें-ज्ञान ध्यानको छोडके विकथादिमें यदि पडगया तो संयम गुणठाणसें च्युत होके अधोगतिमें चला जायगा वास्ते संयम ग्रहण करनेके पीछेभी ज्ञान, ध्यान, तप, जप, पंचसमिति, तीनगुप्ति, दश-यतिधर्म, इत्यादिका सेवन करके नये २ अभिग्रह करके चारित्र्य धर्मको उज्वल करके मोक्षमंदिरमें निवास होय ऐसा करना जिससे वहा अनंत सुखका भोक्ता बनेगा कदापि चारित्र्य धर्मको कायरतासे वहा अंगीकार न करसके तो फिर देशविरतित्वको याने सम्यक्त्व मूला श्रावकके बारह व्रतको समझके जरूर अंगीकार करना तो कुछ विलंबसेभी आखीर मुक्तिमें पहोंचोगे.

उपासकदशांग सूत्रमें आनंद कामदेव इत्यादि दश श्रावकोने परमात्माश्री महावीरस्वामीजीकी देशना श्रवण करके वैराग्य पाके सम्यक्त्वमूला बारह व्रत अंगीकार कीये थे और अंत तक बराबर पालन करके आयुष्य पूर्ण करके व्रतके

प्रभावसे सुधर्मां देवलोकमें अगर २ विमानोंमें चार पल्योपमकी स्थितिमें देवत्वमें उत्पन्न भये आयु पूर्ण होनेसे वहांसे च्युत होके महाविदेहक्षेत्रमें जन्म लेके राजा होंगे. वहां चारित्र्यकों अंगीकार करके निरतिचार चारित्र्यका पालन करके केवलज्ञान पाके मोक्षमें जायँगे.

इस प्रकार सम्यक्त्वमूल बारहव्रतकी परंपरासे मुक्तिकों पा सकते है. तो फिर यह उत्तार भवकों प्राप्त करके सभी सामग्रीकों पाके गुरुमहाराजका संयोग पाकर हे आत्मा ! सम्यक्त्वमूल बारह व्रतकों समझ पूर्वक अवश्य अंगीकार करलेना. इसकी समझके वास्ते उपासकदशांग सूत्र, योगशास्त्र, धर्मरत्न प्रकरण, धर्मसंग्रह, धर्मविन्दु विगेरा कई सूत्र और ग्रन्थ विद्यमान है. तो गुरुमहाराजके पास विनयपूर्वक समझके नांदी मंडाके व्रतोच्चार करलेना और बराबर पालना, जिससे आगामी कर्म बहुत रुक जाय देशविरतिपना प्राप्त होगा. अंत समयमें सर्व वस्तुका त्याग करनेकी अभिलाषा होगी. अंत समयमें निझामणा करनेसे जीवोंकों बहोत कर्मकी निर्जरा होती है. प्रथम आयु न बंधाया हो तो शुभ गतिका आयु बंधाता है. वास्ते उपरकी समझकों लक्षम लेके मुनिपना कदापि चारित्र्य मोहनीय कर्मके उदयसे इस भवमें प्राप्त न हो सके तो देश संयमी होनेके वास्ते सम्यक्त्वमूल श्रावकके बारह व्रततो अवश्य अंगीकार करना, और अंगीकार करनेके

वाद आखीर अपने अंतसमयमें उन २ व्रतोंमें लगे हुए अतिचारोंको याद करके मिच्छामि दुक्कड देकर, दुष्कृत्योंकी निंदा करना, सुकृत्योंकी अनुमोदना करना, जिससे आत्मा उच्च गतिके उपर जरूर आसक्ता है देखो ! उत्तराध्ययन सूत्रके नवम प्रत्येकबुद्ध अध्ययनमें विषयांध मणिरथ राजाने अपने सहोदर भाई युगबाहुकों तरवारका घाव करके नीचे पटका, युगवाहुकों आर्तध्यान रौद्रध्यानके कारण उपस्थित भये, परन्तु युगबाहुकी धर्मपत्नी मदनरेखाने अपने पतिके पास बैठके धैर्य ग्रहण करके बहुत अच्छी रीतसे अंतसमयकी निझामणा करवादी, यह इस प्रकारसे —

"हे धीर ! इस समय धीरत्वका अंगीकार करो कोईके उपर रोष करना नहि. आपने किये कर्म आपकी पास ऋण लेनेकों आये है उन कर्मोंकों समभावसे सहन करो जीवोंकों अपने किये कर्म भोगनेका है और सब निमित्तमात्र है चोरासीलाख जीवयोनिमें रहे सर्व जीवोंकों खमावों, चतुर्विध आहारकाभी त्याग करो शरीरकोंभी वोसराओ" इत्यादि अच्छे शब्दोंसे निझामणा कराई जिससे की तुरत युगबाहु कालधर्म पाके पाचवे ब्रह्मदेवलोकमें दश सागरोपमकी स्थितिशील देव भये. अहो ! शुभ भावनासे की हुई निझामणाका कितना प्रताप ! कदापि उस समय मदनरेखा विलाप करने लगी होती और युगबाहुकों आर्तध्यान और रौद्रध्यान

में लेजाती तो युगबाहु पांचवा देवलोकमें जा सकताथा क्या ? हे आत्मा ! तु विचार कर, आजकलकी स्त्रीयां और कुटुम्बी जन मरनेवालेके पास आर्तध्यान तथा रौद्रध्यानके कारण उपस्थित करते है. आगे पीछेके कार्य याद करवाते है. अपने स्वार्थ खातीर रुदन करके मरनेवालोका अंतसमय खराब करते है. और मरनेवालेकी लेश्या उससमयमें बिगड़नेसे उनकों खराब गतिमें जाना पड़ता है. वास्ते कदापि ऐसा नहि करना. परन्तु संबंधी और कुटुंबी जनोंकों चाहीये की मरनार का भव सुधरे वास्ते हिम्मत धरके निझामणा कराना. प्रथम व्रत ग्रहण कीये होय तो याद कराके लगे हुवे दोषोंकी निंदा कराके आत्माको शुद्ध करना. व्रत न ग्रहण कीये होय तो उस समय गुरुम हाराजकों बुलाके उनके पास, और कदापि गुरु आदिका योग न बनातो आत्मा साक्षीसेभी अमुक २ व्रत उच्चारण करना और निझा मणा करना. शुभ और शुद्ध भावनासे उस समयकी कराई आरा- धना जीवोंकों बहुत हितकारी हो जाती है. प्रथम कीये पापके पुंज कई एक नष्ट होजाते है. आनेवाला भवका आयु न बंधाया होय तो शुभ गतिका बंधाता हैं. वास्ते अंतसमय जीवोंकों जरूर समझके आराधना करना. जिससे व्रतधारीओंकों और कदापि व्रत न ग्रहण करसके होय ऐसे जीवोंकोंभी यह अंत- समयकी आराधना बहुत फायदा देनेवाली होती है.

अतसमयकी आराधना

(राग—भेसरे उतारो राजा भरथरी)

भावना भावो एणीपरे, मृत्यु आव्ये नजीकजी,
हु रे अनादि अभेदी छु, शी छे म्हारे ए बीकजी भावना०
धाम धरा धन आ बधु, मेली जावु जरुरजी,
म्हारु तेमा काइ नथी, शीदने रहु मगरुरजी भावना०
आ तो भाडानी छे कोटडी, खाली करता शु थायजी,
पुद्गल नाश थता अरे, आत्मानु शु जायजी भावना०
हु तो आत्म अनादि छु, अनत गुणो धरनारजी,
मृत्यु भले अरे आवतु, हु तो नथी डरनारजी भावना०
मोंघो मानव भव मेळवी, कीधु काइ न हीतजी,
काग उडाडवा में अरे, फेंक्यु रत्न खचितजी भावना०
राग ने द्वेषथी क्लेशमा, काढ्यो सघळो काळजी,
जिनवाणी नहि साभळी, वळगी झाझी जजाळजी भावना०
हवे रे पस्तावो ए थाय छे, मनमा पारावारजी,
प्रभुजी अरजी स्वीकारजो, तारजो करुणाधारजी भावना०
अरिहत सिद्ध ने साधुजी, शरणु होजो सदायजी,
धर्म शरण होजो वळी, मुजने भवोभव मायजी भावना०
अत समयनी आराधना, आराजो नरनारजी,
सार नथी ससारमा, जिन "भक्ति" छे सारजी भावना०



कई जीवोंकों अंतसमयमें आराधना किस प्रकार करना? अथवा कैसी करना? यह नहि जानते है. वास्ते ऐसे जीवोंके हितार्थ सामान्यतः अंतसमयकी आराधना प्रकरण और महागीतार्थ पुरुषोंके वचनानुसार बताते है.

नमिऊण भणइ एवं, भयवं समउच्चियं समासंसु ।
तत्तो वागरइ गुरु, पज्जंताराहणा एयं ॥ १ ॥

श्रीगुरु महाराजकों नमस्कार करके इस प्रकार शिष्य कहें—हे भगवन् मुझे समयोचित आदेशकरीये. (आराधना कराईये) तब गुरुमहाराज अंतकी आराधना इस प्रकार कराते है:—१

आलोइसु अइआरे, वयाइ उच्चरसु खमिसु जीवेसु ।
वोसिरिसु भाविअप्पा, अट्ठारसपावठाणाइं ॥ २ ॥

१ अतिचार आलोवो २ व्रत उच्चारों, ३ जीव योनि खमाओं आत्माकों शुभावनावाला बनाके ४ अढारह पापस्थनक वोसिराओं २

चउसरण दुक्कडगरिहणं च, सुक्कडाणुमोयणं कुणसु ।
सुहभावणं अणसणं, पंच नमुक्कारसरणं च ॥ ३ ॥

५ चार शरण आदरो ६ पापकी निंदा करों, ७ सुकृतकी अनुमोदना करो, ८ शुभ भावना भाओ ९ अनसण करो और १० पंचपरमेष्ठीका ध्यान करो. ३

यह दश प्रकारमें प्रथम अतिचार आलोवना यह इस प्रकार

नाणमि दंसणमि य, चरणमि तवमि तह्य विरियमि ।
पचविह आयारे, अइआरालोयण कुणसु ॥ ४ ॥

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य यह पाच प्रकारके आचारमें अतिचारकी आलोचना करो ४

यह पाच आचार सबधी और श्रावकके बारह व्रत सबधी अतिचार जरा विस्तारसें बताते है —

अतिचार विस्तार

१ ज्ञानचार

१ काल, २ विनय, ३ बहुमान, ४ उपधान ५ गुरुको न पहिचानना ६ शुद्ध सूत्र उच्चारण ७ और अर्थका चिंतन ८ सूत्र और अर्थ दोनोंका चिन्तन यह आठो प्रकारके ज्ञानाचारमें आचार रहित मैं कुछ पढा होउ और सूत्र प्रकरणादिका गुरुगमसे कदापि उलटा अर्थ किया होय, कोईके समझाने परभी कुछ हठाग्रह किया होय और शक्ति होने परभी ज्ञानीओको अन्नादि न दिया होय, और ज्ञानीओंकी अवज्ञा मैने की हो, और ज्ञानका जो पाच प्रकार मति, श्रुत, अवधि मन पर्यंव और केवल यह पाच ज्ञानकी अश्रद्धा की होय, ठट्ठा की होय, ज्ञानके उपकरण जो सीलेट, पोथी, ठवणी विगेरा की अशातना

की होय इत्यादि जो कुछ ज्ञानाचार संबंधी दोष लगा होय तो मिच्छामि दुक्कडं.

२ दर्शनाचार

ज समत्तं निस्संकियाइ अट्ठविहगुणसमाउत्तं ।
धरियं मए न सम्मं, मिच्छामिदुक्कडं तस्स ॥

१ निःशक्ति, २ निःकंखित, ३ निर्वितिगिच्छा, ४ अमूढदिट्ठि, ५ उपवृंहणा, ६ अस्थिरीकरण, ७ वात्सल्य, प्रभावना इस प्रकारके गुणोंसे मुक्त जो समकित सो मैने धारण न कीया होय उसका मिच्छामि दुक्कडं.

श्री अरिहंत देवाधिदेवकी प्रतिमाकी भावसे पूजा न की की होय और अभक्ति करी होय तो उस दोषका मुझे मिच्छा-दुक्कडं होय, और चैत्य द्रव्यका विनाश किया होय, और विनाश करनेवाळे दूसरे मनुष्यकी उपेक्षाकी होय उस दोषका मुझे मिच्छामि दुक्कडं होय, जिनमंदिरादिका कोई आशातना करता होय उसका शक्ति होने परभी मैने निषेध न किया होय, तो उस दोषकों मिच्छामि दुक्कडं देता हुं. प्रथम कहे दर्शनाचारके अर्थः—

१ निःशक्ति याने जिनवचनमें शंकाका अभाव.
२ निःकंखित याने परमतकी अभिलाषाका अभाव

३ निर्वितिगिच्छा याने साधु साध्वीकी निंदा न करना, और धर्मके मूलमें संदेह न करना
४ अमूढदिट्ठि याने अन्यमतके चमत्कार और नग्न देखके मूढ द्रष्टिपना न करना
५ उपबूँहणा याने समकितदृष्टि जीवोंकी शुभ करणी देखके उन्होंकी अनुमोदना प्रशंसा करना
६ स्थिरकरण याने अत्यन्त दुःखी स्वामी और भाईओंको सहाय देके धर्ममें स्थिर करना
७ साधर्मी बंधुओंका भाव और भक्ति पूर्वक वात्सल्य करना.
८ पवित्र जिन शासनकी उन्नति होय ऐसे कार्य करना.

यह आठ दर्शनके आचारमें मैंने जो कुछ विपरित किया होय शक्ति होनेपरभी करने लायक कार्य न कीया होय उसका आत्मसाक्षीसे खमाता हु.

३ चारित्रचार

ज पचहिं समिईहिं तीहिं गुत्तिहिं सागय सयय ।
परिपालिय न चरण, मिच्छामि दुक्कड तस्स ॥

पाच समिति और तीन गुप्ति सहित निर्मल चारित्र मैंने न पालन कीया होय उस दोषका मुझे मिच्छामि दुक्कड होवे.

४ तपाचार

शक्ति होनेसे अवश्य तपश्चर्या करनी चाहीये यह तपाचार

कहलाता है. सो न कीया होय तो मिच्छा मि दुक्कडं

५ वीर्याचार

धार्मिक कार्यमें अपना जो सामर्थ्य होवे उसकों छिपाना न चाहीये. सो वीर्याचार कहलाता है. उस प्रकार यदि न कीया होय सो मिच्छामि दुक्कडं.

अब बारहव्रत संबंधी आलोचना कहते है.

प्राणातिपात आलोचन

महा आरंभके कार्य आरंभ कीये होय, जैसेकी मकान बंधाना, टांका, भोयरा, वाव, कुंआ, तालाव, विगेरा बनवाये होय, और मील, जीन, सांचाकाम, बनवाये होय, जिसमें जीव हिंसा पारावार भई हो और दो इंद्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरिंद्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोंकी तीनो कालमें जो विराधना की होय उन सभी पापोंकों मन, वचन, कायासे खमाता हुं.

मृषावाद आलोचन

क्रोधसे, लोभसे, भयसे, हास्यसे, जो कुछ मिथ्या झूठ बोला हो उसकों मन, वचन, कायासे खमाता हुं.

दूसरे अधिकारमें व्रतों प्रथम न लिये होय तो लेना और लिये होय तो याद करके फिरसे कुछ फर्क करके लेना. इसमें पच्चख्खाण देना सोभी अवसर देखके अमुक समय पर्यन्तका ही देना.

व्रतोचारण दूसरा अधिकार

पहिला स्थुल प्राणातिपात विरमणव्रत

कोई त्रस जीव निरपराधी निरपेक्षीकों हनन करनेकी बुद्धिसे घात करना कराना नहि. कोई कार्य करते वा शरीरादिके रोगोंके उपचार करते कराते प्रमादसें घात हो जाय तो उसका आगार

दूसरा स्थूल मृषावाद विरमणव्रत

पांच प्रकारका झूठ न बोलना.

१ कन्या सबधि झुठ न बोलना
२ भूमि सबध ,, ,,
३ चौपाया पशु सबधि ,,
४ झूठ साक्षी देना नहि और झूठा लेख लिखना नहि
५ कोईका जमा द्रव्य हजम करना नहि

यह पाचो प्रकार बराबर पाल्ना

तीसरा स्थूल अदत्तादानविरमरणव्रत

राज्य दड होय ऐसी कोई कीसीकी चोरी करना नहि. ताला तोडना नहि जेब कतरना नहि इत्यादि

चौथा स्थूल मैथुन विरमरण (स्वदारा सतोष) व्रत

परस्त्री संवंधमें ब्रह्मचर्य पालन करना, अवसर प्राप्त होनेसे जायजीव ब्रह्मचर्य उच्चरी लेना.

पांचवा परिग्रहपरिमाणव्रत

धनधान्य अधिक मिलनेके वास्ते उद्यम न करना जितना होय उतनेमें संतोष मानना. और फिर उसकोंभी वोसिरावना.

छठवा दिशापरिमाणव्रत

दिशाका परिमाण कर लेना प्रथम किया होय तो उसका संक्षेप करना.

सातवा भोगोपभोग परिमाणव्रत

चौदह नियम धारण करना, पनरह कर्मादानकों छोडना चार महाविगय. विगेरा बाइस अभक्ष्यका त्याग करना.

आठवा अनर्थदंडविरमणव्रत

१ अपध्यान. २ पापोपदेश, ३ हिंस्रप्रदान ४ प्रमादाचरित, यह चारभेद शास्त्रमें कहे है. उसमेंसे जितने दूर होय उतना दूर करना, उसमें लाभ वहुत है. उपरांतः—

१ जुआ खेलना नहि. २ पशु पक्षी पिंजढ़ेमें डालना नहि. ३ नाटक नाच विगेरा तमाशा देखना फांसा नहि, की जगह देखने जाना नहि. इत्यादि.

नववा सामयिक, दशवा देशावकाशिक, ग्यारहवा पौषध, बारहवा अतिथिसंविभाग, यह चारों व्रत अत समयमें पालन करना शक्य नहि वास्ते उन व्रतोंकी भावना रखके चित्तमें करना अमुक समयमें चित्तकी स्वस्थता होयतो समयिक करना और सोचना की घरमें जो कुछ चीजें अधिकरण विगेरा मैने खुल्ले रख दिये है, उन सभी मेरा है, नष्ट होनेके बाद वोसिरेह करता हु, यह व्रत पचख्खाण इतने वास्ते है की जैसे खेतकों वाड की होय तो खेतमें जानवर न पैसे न चोर चोरी करसके और घरका आगे कपाल बाधनेसे एसी प्रतीती होती है की इतनी हद अपनी है उसके बहार अपना हक नहि है. इसप्रकार पचख्खाण लेनेसे लंबी इच्छा न होय, नये २ मनोरथ तरंगरूप चोर आत्माकों दुखी न करें और आत्माकोंभी ख्याल रहेकी इसके उपर मेरी प्रतिज्ञा है

तीसरा अधिकार

खामेसु सव्वसत्ते, खमेसु तेसिं तुमे वि गयकोहो ।
परिहरियपुव्ववेरो, सव्वे मित्तित्ति चिंतिसु ॥

कोप रहित होके प्राणीमात्रकों खमाओ, और उन जीवोंने किये अपराधको खमों पूर्वके कोई भवका वैरछोड देके सभी मित्र है ऐसा समझो



श्रीवासुपूज्यचरित्रमें जिसप्रकार वासुपूज्यस्वामीके पद्मोत्तर राजाने अणसण करते अव्यवहार राशिके जीवोंसे लेकर सभी जीवोंसे खमतखामणा किया है. वैसा मैंभी सभी जीवोंके साथ खमतखामणा करता हुं. वहुत काल तक अव्यवहार राशिमें (निगोदमें) रहे ऐसे मेरा आत्माने अनंत जंतुके समूहकों जो कुछ खेद उपजाया हैय उन सभीकों खमाता हुं व्यवहार राशीमें आके पृथ्वीकायकों धारण करनेवाला मेरा आत्माने पाषाण. लोहा औरा मीट्टी रूपसे होके जिन २ प्राणीओंकों खेद पैदा किया होय, उन सभीकों खमाता हुं, नदी, समुद्र, तालाव, कुंआ विगेरामें जलरूप होके मेरे आत्माने जो कोइ जीवोंकी विराधना की होय. उन सभीको खमाता हुं. प्रदीप, बिजली दावानल, विगेरेमें अग्निकाय रूपसे मेरा आत्माने जिन जीवोंका विनाश किया होय उन सभीकों मन वाणी और कायासे खमाता हुं. महावृष्टि, हिम, ग्रीष्म, धूलि, दुर्गंध विगेराके सहकारी ऐसा मेरा आत्माने वायुकायमें रहकर जिन जीवोंका विनाश किया होय उन सभीकों में खमाता हुं. वनस्पति होके दंड, धनुष, वाण, रथ, गाडी, रूप होकर मेरा शरीरने जिन जीवोंकों पीडा की होय उन सभीकों खमाता हु. और कर्मवश होकर यसपनाकों पाके राग, द्वेष और मदसे अंध वना हुआ मेरा आत्माने जिन २ जीवोंकी हत्या की होय

अथवा पीडा की होय उन सभीकी त्रिविध २ मन, वचन, कायासे क्षमा चाहता हु. वे सभी जीव चौराशी लाख जीवयोनिमें भये मेरे अपराध क्षमा करे सभी प्राणीओंमें मेरा मैत्री भाव है. कोइकी साथ वैर विरोध नहि है और जिनेश्वर भगवानकी प्रतिमा और चैत्य तथा मुकुटादि वस्तुओंमें मेरा शरीर पृथ्वी कायरूपसे आया होय तो उसकी अनुमोदना करता हु तथा जलरूपसे भइ मेरी काया जिनेश्वर भगवानके स्नानादिमें भाग्ययोगसे आई होय तो उसकी में अनुमोदना करता हु और जिनेश्वर भगवानके आगे धूप और दीपक विगेरामें मेरी काया अग्निरूपसे आइ होयतो उसकी अनुमोदना करता हु और तीर्थयात्रामें निकला संघका परिश्रम निवारणार्थ वायुकाय रूपसे मेरी काया कदापि उपयुक्त भइ होय, तो उसकी अनुमोदना करता हु और वनस्पति कायरूप भई मेरी काया मुनिराजोंके पात्रमें और दंडामें और जिनेश्वर भगवानके पूजाके पुष्प विगेरामें उपयोगी भई होय तो उसकी अनुमोदना करता हु इस प्रकार अनंत भवमें उत्पन्न किये हुए जो दुष्कृतके ओघ है उनको निंदता है और कदाचित् कभी भये सुकृतकी अनुमोदना करता हु

चौथा अधिकार

चौथा अधिकारमें अठारह पापस्थानक आलोयवा सो प्रथम कहा है.

पांचवे अधिकारमें चार शरण करना सो इस प्रकारः—

प्रथम अरिहंत सरण.

गगदोसारिणंहंना कमट्ठगाई अरिहंना ।
विसयकसायारिणं, अरिहंना हंतु मे सरणं ॥

राग और द्वेषरूप आत्माके वैरीओंको नाश करनेवाले और आठ कर्मादिक शत्रुका नाश करनेवाले और विषय कषायादिक वैरीओंका नाश करनेवाले अरिहंत भगवानका मुझे शरण हो.

रायसिरिमवकसित्ता, तवचरणं दुचरं अणुचरित्ता ।
केवलसिरिमरहंता, अरिहंता हुंतु मेसरणं ॥

राज्यलक्ष्मीका त्याग करके दुष्कर तप और चारित्र्य सेवन करके केवलज्ञानरूप लक्ष्मीके योग्य भये ऐसे अरिहंतका मुझे शरण हो, और स्तुति तथा वंदन करने योग्य तथा इन्द्रऔर धर्म चक्रवर्तिकी पूजाके योग्य, शाश्वत सुख पाने योग्य ऐसा अरिहंत भगवानका मुझे शरण हो समवसरणमें वैठके पेतीस वाणीका गुणोंसें युक्त धर्मकथाकों कहते चोतीस अतिशयसे युक्त ऐसे अरिहंत परमात्मा मेरा शरणभूत हो. एक वचनसे प्राणीओंका अनेक अनेक संदेहोकों एक कालमें छेदन करनेवाले और तीनों जगतके जीवोंकों उपदेश देनेवाले अरिहंत परमात्माका मुझें शरण हो. वचनामृतसे जगत्के जीवोंकों शांति देनेवाल

और अनेक प्रकारके गुणोमें जीवोंको स्थापन करनेवाले और जीवलोकका उद्धार करनेवाले अरिहत परमात्माका मुझे शरण हो

और अति अद्भूत गुणवाले और अपने यशरूप चद्रसे सभी दिशाओंमें प्रकाश करनेवाले अनत अरिहतोंको शरण रूपसे मैने अगीकार किये है और तजे है जन्म मरण जिन्होंने और सभी दु.खोंसे पीडित प्राणीओंको जो शरणभूत है और तीनो जगत्के जीवोंको जो अपूर्व सुख देनेवाले है ऐसे अरिहत परमात्माओंको मेरा नमस्कार हो

दूसरा सिद्ध शरण

कम्मट्ठक्खयसिद्धा, साहावियनाणदसणसमिद्धा ।
सव्वट्ठलद्धिसिद्धा, तेसिद्धा हुतु मे सरण ॥

आठ कर्मका क्षय करके सिद्ध भये और स्वाभाविक ज्ञान दर्शन की समृद्धिवाले और सर्व अर्थकी लब्धिआ सिद्ध भई है जिन्होंका ऐसे सिद्ध परमात्माका मुझे शरण हो

तियलोअमत्थयत्था, परमपयत्था अचितसामत्था ।
मगलसिद्धपयत्था, सिद्धा सरण सुहपसत्था ॥

तीन भुवनके अग्रभाग पर रेहनेवाले तथा परमपद याने मोक्षमें रहनेवाले अर्थात् सकल कर्मका क्षय करके सिद्ध भये हुए और अचिन्त्य सामर्थ्यवाले मगलभूत सिद्ध स्थानमें रहे-नेवाले अनतसुखसे प्रशस्त शोभायमान एसे सिद्ध परमात्माका मुझे शरण हो

होकर केवलीभाषित धर्मका शरण स्वीकारनेके वास्ते कहते है.

निद्दलिअकलुसकम्नो, कयसुहजम्मो खलीकयअहम्मो।
पमुहपरणामरम्मो, सरणं मे होउ जिणधम्मो ॥

चौथा केवलीभाषित धर्मका शरण

अतिशय दलित किये है अशुभ कर्म जिसने और प्राप्त किया है शुभ जन्म जिन्होंने और दूर किया है अधर्म जिसने और परिणाममें सुंदर ऐसा जिनधर्म मुझे शरणभूत हो.

पसमिअकामप्पमोहं, दिट्ठादिट्ठेसु नकलियविरोहं।
सिवसुहफलयममोहं, धम्मं सरणं पवन्नोहं ॥

विशेष करके कामका उन्माद शांत करनेवाला और देखा न देखा पदार्थोंका नहि किया विरोध जिसमें और मोक्षरूप फलकों देनेवाला ऐसा सफल धर्मका मुझे शरण हो. और नरक गतिकों काटनेवाला तथा गुणके समूहसे भरा और दूसरे वादीओंसेभी मोक्ष न करसके ऐसा नष्ट किया है काम-रूप सुभट जिसने ऐसा धर्मका में शरणरूपसे अंगीकार करता हुं

जैनधर्म जगतके जीवोंकों अपूर्व कल्पवृक्ष समान है. और स्वर्ग अपवर्गके सुखरूप फलकों देनेवाला है और जैनधर्म परम बंधु समान अच्छे मित्र समान है. और परम गुरु समान है.

मोक्ष मार्गमें गमन करनेवाले जीवोंको जैनधर्म रथ समान है. इसप्रकारका केवलीभाषित धर्मका मुझे शरण हो इसप्रकार धर्मका शरण अंगीकार करना

आत्मासे-चित्तसे विचार करनाकी भवांतरमें जाते समय मुझे कोई शरणभूत आधारभूत हो सके ऐसा नहि है वास्ते सच शरण इन चारोंका ही करता हु जिससे मेरी शुभ गति होवे

चार शरणा विगेरे [पद्य]

(१) मुजने चार शरणा होजो अरिहंत सिद्ध सुसाधुजी, केवली धर्म प्रकाशीयो, रतन अमुलख लाध्यु जी ॥ १ ॥ चिहु गतितणा दु:ख छेदवा, समरथ शरणा एहोजी, पूर्वे मुनिवर जे हुवा, तेणे कीया शरणा तेहोजी ॥ २ ॥ संसारमाही जीवने समरथ शरणा चारोजी, गणि समयसुंदर इम कहे कल्याण मंगलकारोजी ॥ ३ ॥

(२) लाख चोराशी जीव खमावीए, मन धरी परम विवेकजी, मिच्छामिदुक्कड दीजीए, गुरु वचने प्रत्येकजी ॥ लाख० ॥ १ ॥ सात लाख भूदग तेउ वाउना, दस चौद वननां भेदोजी ॥ षट विगल सुर तिरि नारकी, चार चार चौद नरना भेदोजी ॥ लाख० ॥ २ ॥ मुजने वेर नहि कोइशु, सहुशु मित्रीभावोजी, गणि समयसुंदर इम कहे पामीशु पुन्य प्रभावोजी ॥ लाख० ॥ ३ ॥

(३)—पाप अढार जीव परिहरो, अरिहंत सिद्धनी साखेजी; आलोव्यां पाप छुटीए, भगवंत एणीपेरे भाखेजी ॥ पाप० ॥ १ ॥ आश्रव कषाय दोय बांधवा, वळी कलह अभ्याख्यानजी; रति अरति पैसुन निंदना, मायामोह मिथ्यात्वजी ॥ पाप० ॥ २ ॥ मन, वचन, कायाए जे कीयां, मिच्छमि दुक्कडं तेहोजी; गणि समयसुंदर इम कहे, जैन धर्मनो मर्म एहोजी. ॥ पाप० ॥ ३ ॥

(४)—धन धन ते दिन कदी होशे, हुं पामीश संयम सुद्धोजी, पूर्व ऋषि पंथे चालशुं, गुरुवचने प्रतिबुद्धोजी ॥ धन ॥ १ ॥ अंत पंत भिक्षा गोचरी, रणवट काउसग्ग करशुंजी, समता भाव शत्रु मित्रशुं संवेग सुद्धो धरशुंजी ॥ धन ॥ २ ॥ संसारना संकट थकी, हुं छुटीश जिनवचने अवतारोजी; गणि समयसुंदर इम कहे, हुं पामीश भवनो पारोजी ॥ धन० ॥ ३ ॥ इति चार शरण समाप्त.

छठवा अधिकार—दुष्कृतकी निंदा

सारी जिंदगीमें जो २ पाप कर्म किये होय उन्होंकी आत्मसाक्षीसे निंदा करना. यह इस प्रकारः—

"उत्सूत्र प्ररूपणा की होय, तथा अपनी बुद्धिके अनुसार अर्थके अनर्थ किया होय, हल, हथीआर चक्की इत्यादि जीवोंका संहार होय ऐसे अधिकरण रक्खें होय, पापों करके कुटुंब

पोषण किया होय, इत्यादि दुष्कर्म इस भवमें या परभवमें या भवोभवमें किये होय, उन सभी दुष्कर्मोंकी मन, वचन, कायासे आत्म साक्षीसे निंदा करता हु" इसप्रकार पश्चात्ताप करना

सातवा अधिकार—सुकृतकी अनुमोदना

सारे भवमें जो २ सुकृत किये हो उनकी अनुमोदना करना जैसाकी—तीर्थ यात्राकी होय, सुपात्र दान दिया होय, शीलव्रत पालन किया होय, मासक्षमण, सोलह, आठ, ७ चार, तीन, दो इत्यादि उपवास और आयबिलादिककी तपश्चर्याकी होय, शुद्ध भावना की होय, गिरिराजकी निन्नानवे यात्राकी होय, उपधान, तप, शासनप्रभावना विगेरा जो २ शुभकार्य तीर्थंकर गणधरके आगमोंके अनुसार शुभ भावनासे आत्माके हितके वास्ते किये होय उसकी अनुमोदना करता हु आत्माका उभय लोकमें हित करनेवाले आगमोंका नाम नीचे कहे है।

११ अगके नाम		१० पयन्ना	
१ श्रीआचारांगसूत्र		१ श्री चउसरण पयन्ना	
२ ,, सुयगडाग	,,	२ ,, आउर पच्चखाण	,
३ ,, ठाणाग	,,	३ ,, श्रीमहापच्चखाण	,,
४ ,, समवायाग	,,	४ ,, भत्तपरिना	,,
५ ,, भगवती	,,	५ ,, तदुलवेयाल	,,

६ ,, ज्ञाता धर्मकथांग ,,
७ ,, उपासकदशांग ,,
८ ,, अंतगडदशांग ,,
९ ,, अनुत्तरोववाइय ,,
१० ,, प्रश्नव्याकरण ,,
११ ,, विपाक ,,
१२ ,, उपांगके नाम ,,
१ ,, श्री उववाई सूत्र ,,
२ ,,श्रीरायपसेणीसूत्र ,,
३ ,, जीवाभिगम ,,
४ ,, पन्नवणा ,,
५ ,, सूरपन्नत्ति ,,
६ ,, जंबूद्वीपपन्नति ,,
७ ,, चंदपन्नत्ति ,,
८ ,, निरयावली ,,
९ ,, कप्पवडिंसिया ,,
१० , पुप्फिया ,,
११ ,, पुप्फचुलिया ,,
१२ ,, वन्हिदसा ,,

६ ,, गणिविजञ्झा ,,
७ ,, चंद विजय ,,
८ ,, देवेन्द्रस्तव ,,
९ ,, मरण समाधि ,,
१० ,, संथारा ,,
६ ,, छेदसूत्र ,,
१श्रीदशाश्रुतस्कंध छेदसूत्र
२ ,, वृहत्कल्प ,, ,,
३ ,, श्रीव्यवहारसूत्र ,,
४ ,, जितकल्प ,,
५ ,, लघुनिशीथ ,,
६ ,, महानिशीथ ,,
४ ,, मूल सूत्र
१ श्री आवश्यक मूल सूत्र
२ ,, दशवैकालिक,, ,,
३ ,, उत्तराध्ययन ,, ,,
४ ,, पिंडनिर्युक्ति ,, ,,
मिलान ४३
४४ श्री नंदीसूत्र
४५ श्री अनुयोगद्वारासूत्र



उपर कहे ४५ आगमों वीतराग परत्माके वचनोंसे अलकृत है उन्हमेंसें १–२–३ अथवा सपूर्ण श्रवण किये होय सो मेरा आत्माकों शरणभूत हो

आठवा अधिकार—शुभ भावना

भाव शुद्धि करना याने समतावाले परिणाम करना सुख दु खका कारण जीवकों अपने किये कर्म सिवा दूसरा कोई नहि है, वास्ते हे आत्मा ! जो २ दु:ख आवें उनकों समभावसे सहन करना जैसा करेंगा ऐसा फल पायेगा वास्ते कोईके उपर द्वेप न करके समता भावमें लीन होना

नवया अधिकार—अनशन (आहार त्यागरूप) करना

योग्य अवसरे अमुक समय पर्यन्त चार आहारके अथवा तीन आहारका पचख्खाण करना आजकल जीवोंसे चार आहारका यावज्जीव पचख्खाण हो सकता नहि, क्योंकी ऐसा सघयण नहि है और ऐसा ज्ञान नहि है वास्ते अमुक समय पर्यन्तका पचख्खाण करना

दशवा अधिकार—नमस्कार करना

दशवा अधिकारमें नमस्कार महामत्रका स्मरण करना उसका ध्यान करना, शुभ योगसे एक नवकारभी गिननेसे कई कर्म उसी वख्त भस्मीभूत हो जाते है अनमयम जीवोंने

अपूर्व चिंतामणिरत्नसेभी अधिक नवकार मंत्रका ध्यान छोडना नहि उसीमें लीन होना.

उपर माफिक दश अधिकार प्रथम मूल गाथामें बताये है सो विस्तार यहां बताये गये. यह दश अधिकार जीवोंको शुभ गतिमें लेजानेवाले होनेसे सभी भव्य जीव उनको मन वचन कायासें आदरें.

इस अवसरमें दश अधिकारका (पुण्य प्रकाशका) स्तवन और पद्मावतीकी जीवराशि विगेरे समय होय तो सुनना सुनाना.

श्रीविनयविजयोपाध्यायविरचित

श्रीपुण्यप्रकाशका स्तवन

दुहा

सकल सिद्धि दायक सदा ॥ चोवीसे जिनराय ॥ सहगुरु सामिनि सरसती ॥ प्रेमे प्रणमुं पाय ॥ १ ॥ त्रीभुवनपति त्रिशलातणो नंदन गुण गंभीर ॥ शासन नायक जग जयो ॥ वर्द्धमान वड वीर ॥ २ ॥ एक दिन वीर जिणंदने ॥ चरणे करी प्रणाम ॥ भविक जीवना हित भणी ॥ पूछे गौतम स्वाम ॥३॥ मुक्ति मार्ग आराधीए ॥ कहो किण पेरे अरिहंत ॥ सुधा सरस तव वचन रस ॥ भाखे श्री भगवंत ॥ ४ ॥ अतिचार आलोइए ॥ व्रत धरीए गुरु साख ॥ जीव खमावो सयले जे ॥ योनि

चोराशी लाख ॥ ५ ॥ विधिशु वळी वोसरावीए ॥ पापस्थान अढार ॥ चार शरण नित्य अनुसरो ॥ निंदो दुरतीचार ॥६॥ शुभ करणी अनुमोदीए ॥ भाव भलो मन आण ॥ अणसण अवसर आदरी ॥ नवपद जपो सुजाण ॥ ७ ॥ शुभ गति आराधनतणा ॥ ए छे दश अधिकार ॥ चित्त आणीने आदरो ॥ जेम पामो भव पार ॥ ८ ॥

॥ ढाळ १ ली ॥

॥ ए छिडी कोहा राखी—ए देशी

ज्ञान दरिसण चारित्र तप वीरज ॥ ए पांचे आचार ॥ एह तणा इह भव परभवना ॥ आलोइए अतिचार रे ॥ माणी' ज्ञान भणो गुण खाणी वीर वदे एम वाणी रे ॥ मा० १ ॥ ए आंकणी ॥ गुरु ओळवीए नहि, गुरु विनये ॥ काळे धरी बहुमान ॥ सूत्र अर्थ तदुभय करी सूधा ॥ भणीए वही उपधान रे ॥ मा० २ ॥ ज्ञानोपगरण पाटी पोथी ॥ ठवणी नोकरवाळी ॥ तेह तणी कीधी आशातना ॥ ज्ञान भक्ति न संभाळी रे ॥ मा० ३ ॥ इत्यादिक विपरीतपणाथी ॥ ज्ञान विराध्यु जेह ॥ आभव परभव वळी रे भवो भव ॥ मिच्छामि दुक्कड तेह रे ॥ मा० ४ ॥ समकित ल्यो शुद्ध जाणी ॥ वीर वदे एम वाणी रे ॥ मा० ॥ स० ॥ जिनवचने शंका नवि कीजे ॥ नवि परमत अभिलाख ॥ साधुतणी निंदा परिहरजो ॥ फळ संदेह म राख रे॥ मा० ॥ स० ॥ ५ ॥ मूढपणु छंडा परशंसा ॥ गुणवंतने आद-

रीए ॥ सामीने धरमे करी थिरता ॥ भक्ति प्रभावना करीए रे॥ प्रा० ॥ स० ॥ ६ ॥ संघ चैत्य प्रासाद तणो जे ॥ अवर्णवा द मन लेख्यो ॥ द्रव्य देवको जे विणसाडयो ॥ विणसंतां उवेख्यो रे ॥ प्रा० ॥ स० ॥ ७ ॥ इत्यादिक विपरीतपणाथी॥ समकित खंडयुं जेह ॥ आभव० ॥ मिच्छा० प्रा० ॥ ८ ॥ चारित्र ल्यो चित्त आणी ॥ पांच समिति त्रण गुप्ति विराधी ॥ आठे प्रवचन माय ॥ साधुतणे धरमे परमादे ॥ अशुद्ध वचन मन काय रे ॥ प्रा० ॥ चा० ॥ ९ ॥ श्रावकने धरमे सामायक ॥ पोसहमां मन वाळी ॥ जे ज्यणा पूर्वक ए आठे ॥ प्रवचन मांय न पाणी रे ॥ प्रा० चा० ॥ १० ॥ इत्यादिक विपरीतपणाथी ॥ चारित्र डोळ्यु जेह ॥ आभव० ॥ मिच्छा० ॥ प्रा० ॥ चा० ॥ ११ ॥ बारे भेदे तप नवि कीधो ॥ छते जोगे निज शकते ॥ धर्मे मन वच काया विरज ॥ नवि फोरवीउं भगतरे ॥ प्रा० ॥ चा० ॥ १२ ॥ तप विरज आचारे एणी परे ॥ विविध विराध्यां जेह ॥ आभव० ॥ मि० ॥ प्रा० ॥ चा० ॥ १३ ॥ वळीय विशेषे चारित्र केरा ॥ अतिचार आलोइए ॥ वीरजिनेशर वयण सुणीने ॥ पाप मेल सवी धोइएरे ॥ प्रा० ॥ चा० ॥ १४ ॥

॥ ढाळ २ जी ॥

॥ पाम्पी सुगुरु पसाय—ए देशी ॥

पृथ्वी पाणी तेउ ॥ वायु वनस्पति ॥ ए पांचे थावर

कह्या ए ॥ १ ॥ करी करसण आरभ ॥ खेत्र जे खेडीया ॥ कुवा तळाव खणावीयाए ॥ २ ॥ घर आरभ अनेक ॥ टाका भोंयरा ॥ मेडी माळ चणावीयाए ॥ ३ ॥ लींपण गुपण काज ॥ एणीपरे परेपरे ॥ पृथ्वीकाय विराधीयाए ॥ ४ ॥ धोयण नाहण पाणी ॥ झीलण अपकाय ॥ छोति धोति करी दुहव्याए ॥ ५ ॥ भाठीगर कुभार ॥ लोह सोवनगरा ॥ भाडभुजा लिहालागराए ॥ ६ ॥ तापण शेकण काज ॥ वस्त्र निखारण ॥ रगण राधण रसवतीए ॥ ७ ॥ एणी परे कर्मादान ॥ परे परे केळवी ॥ तेउ वायु विराधीयाए ॥ ८ ॥ वाडी वन आराम ॥ वावी वनस्पति ॥ पान फूल फळ चुटीयाए ॥ ९ ॥ पुख पापडी शाक ॥ शेक्या सूक्व्या छेद्या छुद्या आथीआए ॥ १० ॥ अळशीने एरड ॥ घाणी घालीने ॥ घणा तिलादिक पीलीयाए ॥ ११ ॥ घाली कोल्हु माहे ॥ पीली शेलडी ॥ कदमूळ फळ वेचीयाए ॥ १२ ॥ एम एकेंद्रीजीव ॥ हण्या हणावीया ॥ हणता जे अनुमोदियाए ॥ ३ ॥ आ भव परभव जेह ॥ वळीय भवोभवे ॥ ते मुज मिच्छामि दुक्कड ए ॥१४॥ क्रमी सरमीया कीडा ॥ गाडर गाडोला एळ पूरा अळशीयाए॥ १५ ॥ वाळा जळो चुडेल ॥ विचळीत रस तणा ॥ वळी अयाणा प्रमुखनाए ॥ १६ ॥ एम वेइद्री जीव ॥ जे में दुहव्या ॥ ते मुज मिच्छामिदुक्कड ए ॥ १७ ॥ उधेही जु लीख ॥ माकड मकोडा चाचड कीडी कुंथुआए ॥ १८ ॥ गद्दीआ

धीमेल कानखजुरीया ॥ गींगोडा धनेरीयांए ॥ १९ ॥ एम तेइंद्री जीव ॥ जे में दुहव्या ॥ ते मुज मिच्छामिदुक्कडं ए ॥ २० ॥ माखी मच्छर डांस ॥ ममा पतंगीयां ॥ कंसारी कोलियावडाए ॥ २१ ॥ ढींकण विंछु तीड ॥ भमरा भमरीयो ॥ कोतां बग खडमांकडीए ॥ २२ ॥ एम चौरिंद्री जीव ॥ जे में दुहव्या ॥ ते मुज मिच्छामिदुक्कडं ए ॥ २३ ॥ जळमां नांखी जाळरे ॥ जळचर दुहव्या ॥ वनमां मृग संतापीयाए ॥ २४ ॥ पीडया पंखी जीव ॥ पाडी पासमां ॥ पोपट घाल्या पांजरेए ॥ २५ ॥ एम पंचेंद्री जीव ॥ जे में दुहव्या ॥ ते मुज मिच्छामिदुक्कडं ए ॥ २६ ॥

॥ ढाळ ३ जी ॥

॥ वाणी वाणी हितकारीजी—ए देशी ॥

क्रोध लोभ भय हास्यथीजी ॥ बोल्या वचन असत्य ॥ कूड करी धन पारकांजी ॥ लीधां जेह अदत्तरे ॥ जिनजी मिच्छामिदुक्कडं आज ॥ तुम साखे महाराजरे ॥ जिनजी देइ सारुं काजरे ॥ जिनजी ॥ मिच्छामिदुक्कडं आज ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥ देव मनुज तिर्यचनांजी ॥ मैथुन सेव्यां जेह ॥ विषयारस लंपट पणेजी ॥ घणुं विडंब्यो देहरे ॥ जिनजी० ॥ २ ॥ परिग्रहनी ममता करीजी ॥ भवे भवे मेळी आथ ॥ जे जीहांनी ते तीहां रहीजी ॥ कोइ न आवी साथरे ॥ जिनजी०

॥ ३ ॥ रयणी भोजन जे कर्यांजी ॥ कीधा भक्ष अभक्ष ॥ रसना रसनी लालचेजी ॥ पाप कर्यो प्रत्यक्षरे ॥ जिनजी०॥ ४ ॥ व्रत लेइ वीसारीयाजी ॥ वळी भाग्या पच्चखाण ॥ कपट हेतु कीरीया करीजी ॥ कीधा आप वखाणरे ॥ जिनजी० ॥ ५ ॥ त्रण ढाळ आठे दुहेजी ॥ आळोया अतिचार शिवगति ॥ आराधन तणोजी ॥ ए पहेलो अधिकाररे ॥ जिननी० ६ ॥

॥ ढाळ ४ थी ॥

॥ साहेलडीनी देशी ॥

पच महाव्रत आदरो साहेलडीरे ॥ अथवा ल्यो व्रत बार तो ॥ यथाशक्ति व्रत आदरी साहेलडीर॥ पाळो निरतिचार तो ॥ १ ॥ व्रत लीधा संभारीए ॥ सा० ॥ हैडे धरीय विचारतो ॥ शिवगति आरधन तणो ॥ सा० ॥ ए बीजो अधिकारतो ॥ २ ॥ जीव सर्वे खमावीए ॥ सा० ॥ योनि चोराशी लाख तो ॥ मने शुद्धे करी खामणा ॥ सा० ॥ कोइशु रोष न राखतो ॥ ३ ॥ सर्व मित्र करी चिंतवो ॥ सा० ॥ कोइ न जाणो शत्रु तो ॥ राग द्वेष एम परहरी ॥ सा० ॥ कीजे जन्म पवित्रतो ॥ ४ ॥ सामी संघ खमावीए ॥ सा० ॥ जे उपनी अप्रीतितो ॥ सजन कुटुंब करो खामणा ॥ सा० ॥ ए जिनशासन रीतीतो ॥ ५ ॥ खमीए न खमावीए ॥ सा० ॥ एहज धर्मनु सारतो ॥ शिवगति आराधन तणो ॥ सा० ॥ ए त्रीजो अधिकारतो ॥ ६ ॥ मृषावाद हिंसा चोरी ॥ सा० ॥ धनमूर्च्छा मैथुन तो

॥ क्रोध मान माया तृष्णा ॥ सा० ॥ प्रेम द्वेष पैशून तो ॥ ७ ॥ निंदा कलह न कीजीए ॥सा०॥ कूडां न दीजे आळतो ॥ रति अरति मिथ्या तजो ॥ सा० ॥ मायामोह जंजाळतो ॥ ८ ॥ त्रिविध वोसरावीए ॥ सा० ॥ पापस्थन अढारतो ॥ शिवगति आराधन तणो ॥सा०॥ ए चोथो अधिकारनो ॥ ९ ॥

॥ ढाळ ५ मी ॥

॥ हवे निसुणो इहां आवीया ए देशी ॥

जनम जरा मरणे करी ए ॥ ए संसार असारतो ॥ कर्यां कर्म सहु अनुभवे ए ॥ कोइ न राखणहार तो ॥ १ ॥ शरण एक अरिहंतनुं ए ॥ शरण सिद्ध भगवंत तो ॥ शरण धर्म श्री जैननो ए ॥ साधु शरण गुणंवत तो ॥ २ ॥ अवर मोह सवि परिहरीए ॥ चार शरण चित्त धार तो ॥ शिवगति आराधन तणो ए ॥ ए पांचमो अधिकार तो ॥ ३ ॥ आभव परभव जे कर्यां ए ॥ पाप कर्म केइ लाख तो ॥ आत्म साखे ते निंदीए पडिकमीए गुरु साख तो ॥ ४ ॥ मिथ्या मति वर्तांविया ए ॥ जे भाख्यां उत्सूत्र तो ॥ कुमति कदाग्रहने वसे ए ॥ जे उथाप्यां सूत्र तो ॥ ५ ॥ घडयां घडाव्यां जे घणांए ॥ वंटी हळ हथीआर तो ॥ भव भव मेळी मूकीयां ए ॥ करतां जीव संहार तो ॥ ६ ॥ पाप करीने पोषीयां ए ॥ जनम जनम परिवार तो ॥ जनमांतर पोहोच्या पछीए ॥ कोइए न कीध

सार तो ॥ ७ ॥ आ भव परभव जे कर्यां ए ॥ एम अधिकरण अनेक तो ॥ त्रिविधे त्रिविधे वोसरावीए ॥ आणी हृदय विवेक तो ॥ ८ ॥ दुष्कृतनिंदा एम करी ए ॥ पाप करो परिहार तो ॥ शिवगति आराधन तणो ए छठो अधिकार तो ॥ ९ ॥

॥ ढाळ ६ ठी ॥

॥ आदि तु जोइने आपणी—ए देशी ॥

धनधन ते दिन महारो ॥ जीहा कीधो धर्म ॥ दान शियळ तप आदरी ॥ टाळ्या दुष्कर्म ॥ धन० ॥ १ ॥ शेत्रुंजादिक तीर्थनी ॥ जे कीधी जात्र ॥ जुगते जिनवर पूजीया ॥ वळी पोख्या पात्र ॥ धन० ॥ २ ॥ पुस्तक ज्ञान लखावीया ॥ जिनवर जिनचैत्य ॥ संघ चतुर्विध साचव्या ॥ ए साते खेत्र ॥ धन० ॥ ३ ॥ पडिकमणा सुपरे कर्यां ॥ अनुकंपा दान ॥ साधु सूरि उवज्झायने ॥ दीधा बहु मान ॥ धन० ॥ ४ ॥ धर्मकाज अनुमोदीए ॥ एम वारोवार ॥ शिवगति आराधन तणो ॥ सातमो अधिकार ॥ धन० ॥ ५ ॥ भाव भलो मन आणीए ॥ चित्त आणी ठाम ॥ समता भावे भावीए ॥ ए आतमराम ॥ धन ॥ ६ ॥ सुख दुःख कारण जीवने ॥ कोइ अवर न होय ॥ कर्म आपे जे आचर्यां ॥ भोगवीए सोय ॥ धन० ॥ ७ ॥ समता विण जे अनुसरे ॥ प्राणी पुन्य काम ॥

छार उपर ते लीपणुं ॥ झांखर चित्राम ॥ धन० ॥ ८ ॥ भाव भलीपेरे भावीए ॥ ए धर्मनुं सार ॥ शिवगति आराधन तणो ॥ ए आठमो अधिकार ॥ धन० ॥ ९ ॥

॥ ढाळ ७ मी ॥

॥ रैवतगिरि उपरे—ए देशी ॥

हवे अवसर जाणी ॥ करी संलेखण सार ॥ अणसर आदरीए ॥ पच्चख्खी चारे आहार ॥ ललुता सवि मूकी ॥ छांडी ममता अंग ॥ ए आतम खेले ॥ समता ज्ञान तरंग ॥१॥ गति चारे कीधा ॥ आहार अनंत निःशंक ॥ पण तृप्ति न पाम्यो ॥ जीव लालचीओ रंक ॥ दुलहो ए वळी वळी ॥ अणसणनो परिणाम ॥ एहथी पामीजे ॥ शिवपद सुरपद ठाम ॥ ॥ २ ॥ धन धना शालिभद्र खंधो मेघकुमार ॥ अणसण आराधी ॥ पाम्या भवनो पार ॥ शिवमंदीर जाशे ॥ करी एक अवतार ॥ आराधन करो ॥ ए नवमो अधिकार ॥ ३ ॥ दसमे अधिकारे महामंत्र नवकार ॥ मनथी नवि मूको शिव सुख फल सहकार ॥ ए जपतां जाये ॥ दुर्गति दोषविकार ॥ सुपरे ए समरी ॥ चौद पूरवनो सार ॥ ४ ॥ जन्मांतर जातां जो पामे नवकार ॥ तो पातीक गाळी ॥ पामे सुर अवतार ॥ ए नव पद सरिखो ॥ मंत्र न कोइ सार ॥ इह भवने परभवे त सुख संपत्ति दातार ॥५॥ जुओ भील भीलडी ॥ राजा राणी

थाय ॥ नवपद महिमाथी ॥ राजसिंह महाराय ॥ राणी रत्नवती वेहु ॥ पाम्या छे सुरभोग ॥ एक भव पछी लेशे ॥ शिव वधु सजोग ॥ ६ ॥ श्रीमतिने ए वळी ॥ मंत्र फळ्यो ततकाळ ॥ फणीधर फीटीने ॥ प्रगट थइ फुलमाळ ॥ शिवकुमारे जोगी ॥ सोवन ,पुरुषो कीध ॥ एम एणे मंत्रे ॥ काज घणाना सिद्ध ॥ ७ ॥ ए दस अधिकारे वीर जिनेशर भाख्यो ॥ आराधन केरो॥ विधि जेणे चित्तमा राख्यो ॥ तेणे पाप पखाळी ॥ भवभय दूर नाख्यो ॥ जिन विनय करता ॥ सुमति अमृतरस चाख्यो ॥ ८ ॥

॥ ढाळ ८ मी ॥

॥ नमो भवि भावशु ए—ए देशी ॥

सिद्धारथ राय कुळतिलो ए ॥ त्रिशला मात मल्हार तो ॥ अवनितळे तमे अवतर्या ए ॥ करवा अम उपकार ॥ जयो जिनवीरजी ए ॥ १ ॥ में अपराध क्या घणाए ॥ कहेता न लहु पार तो ॥ तुम चरणे आव्या भणी ए ॥ जो तारे तो तार ॥ जयो० ॥ २ ॥ आश करीने आवीयो ए ॥ तुम चरणे महाराज तो ॥ आव्याने उवेखशो ए ॥ तो केम रहेशे लाज जयो० ॥ ३ ॥ करम अलुजण आकरा ए जनम मरण ज तो ॥ हु छु एहथी उभग्यो ए ॥ छोडावो देव दयाळ । ॥ ४ ॥ आज मनोरथ मुज फळ्या ए ॥ नाठा दु:ख

तुठयो जिन चोवीशमो ए ॥ प्रगटचा पुन्य कल्लोल ॥जयो०॥ ५ ॥ भवभव विनय तुमारडो ए ॥ भाव भक्ति तुम पाय तो ॥ देव दया करी दीजीए ए ॥ बोधिबीज सुपसाय ॥जयो०॥६॥

॥ कळश ॥

इह तरण तारण सुगति कारण ॥ दुःख निवारण जग जयो ॥ श्रीवीर जिनवर चरण थुणतां ॥ अधिक मन उल्लट थयो ॥ १ ॥ श्री विजयदेवसूरींद पटधर ॥ तीरथ जंगम इणे जगे ॥ तपगच्छपति श्रीविजयप्रभसूरि ॥ सूरितेजे झगमगे ॥ २ ॥ श्री हिरविजयसूरि शिष्य वाचक ॥ कीर्त्तिविजय सुरगुरुसमो ॥ तस शिष्य वाचक विनयविजये ॥ थुण्यो जिन चोवीशमो ॥ ३ ॥ सय सत्तर संवत् ओगणत्रीशे ॥ रही रांदेर चोमासुए ॥ विजयदशमी विजय कारण कियो गुण अभ्यास ए ॥ ४ ॥ नर भव आराधन सिद्धि साधन ॥ सुकृत लीलविलासए ॥ निर्जरा हेते स्तवन रचियुं ॥ नामे पुन्यप्रकाश ए ॥५॥ इति श्री. श्री. श्री. श्री. श्री. पुण्यप्रकाश स्तवन समाप्त.

अथ पद्मावती आराधना प्रारंभ

हवे राणी पद्मावती, जीवराशी खमावे ॥ जाणपणुं जुगते भलुं, इण वेळा आवे ॥ १ ॥ ते मुज मिच्छामि दुकडं, अरिहंतनी साख ॥ जे में जीव विराध्या चउराशी लाख॥ ते मुज० मु० २ ॥ सात लाख पृथिवी तणा साते अपकाय ॥ सात लाख

तउ कायना, साते वळी वाय ॥ ते० ॥ ३ ॥ दश प्रत्येक वनस्पति, चउदह साधारण ॥ बी त्रि चउरिंदी जीवना, बे व लाख विचार ॥ ते० ॥ ४ ॥ देवता तिर्यंच नारकी, चार चार प्रकाशी ॥ चउदह लाख मनुष्यना, ए लाख चोराशी ॥ते०॥५॥ इण भव परभवे सेवीया, जे पाप अढार ॥ त्रिविध त्रिविध करी परिहरू दुर्गतिभा दातार ॥ ते० ॥ ६ ॥ हिंसा कीधी जीवनी बोल्या मृषावाद ॥ दोष अदत्तादानना मैथुन उन्माद ॥ ते० ॥ ७ ॥ परिग्रह मेळ्यो कारमो, कीधो क्रोध विशेष ॥ मान माया लोभ में कीया वळी राग ने द्वेष ॥ ते० ॥ ८ ॥ कलह करी जीव दुहव्या, दीधा कुडा कलङ्क ॥ निंदा कीधी पारकी, रति अरति निशंक ॥ ते० ॥ ९ ॥ चाडी कीधी चोतरे, कीधा थापण मोसो ॥ कुगुरु कुदेव कुधर्मनो, भलो आण्यो भरोसो ॥ ते० ॥ १० ॥ खाटकीने भवे में कीया, जीव नानाविध घात ॥ चडीमार भवे चरकला मार्या दिन रात ॥ ते० ॥ ११ ॥ काजी मुल्लाने भवे, पढी मन्त्र कठोर ॥ जीव अनेक जब्भे कीया कीधा पाप अघोर ॥ ते० ॥ १२ ॥ माछीने भवे माछला, झाल्या जळवास ॥ धीवर भील कोळी भवे, मृग पाड्या पास ॥ ते०॥ १३ ॥ कोटवाळने भवे में किया, आकरा कर दड ॥ बदीवान मरावीया कोरडा छडी दड ॥ ते० ॥ १४ ॥ परमाधामीने भवे, दीधा नारकी दु ख ॥ छेदन भेदन वेदना, ताडन अति तिख्ख ॥ ते० ॥ १५ ॥ कुभारने भवे में किया, नीभाड

पचाव्या ॥ तेली भवे तिल पीलीया पापे पिंड भराव्यां ॥ ते० ॥ १६ ॥ हाली भवे हळ खेडीयां, फाडयां पृथ्वीनां पेट ॥ सुड निदान घणां कीधां, दीधा वळद चपेट ॥ ते० ॥१७॥ माळीने भवे रोपीया, नानाविध वृक्ष ॥ मूल पत्र फळ फुलना लाग्यां पाप ते लक्ष ॥ ते० ॥ १८ ॥ अघोवाइआने भवे, भर्या अधिका भार ॥ पोठी पुंठ कीडा पडया, दया नाणी लगार ॥ ते० ॥ १९ ॥ छीपाने भवे छेतर्या, कीधा रंगण पास ॥ अग्नि आरंभ कीधा घणा. धातुर्वाद अभ्यास ॥ ते० ॥ २० ॥ शूरपणे रण झुझतां, मार्या माणस वृंद ॥ मदिरा मांस माखण भख्यां, खाधां मूळ ने कंद ॥ ते० ॥ २१ ॥ खाण खणावी धातुनी, पाणी उलेच्या ॥ आरंभ कीधा अति घणा, पोते पापज संच्या ॥ ते० ॥ २२ ॥ कर्म अंगार कीया वळी, घरमें दव दीधा ॥ सम खाधा वीतरागना, कुडा कोसज कीधा ॥ ते० ॥ २३ ॥ बीह्री भवे उंदर लीया, गरोली हत्यारी ॥ मुंढ गमारतणे भवे, में जु लीख मारी ॥ ते० ॥ २४ ॥ भाड भुंजा तणे भवे, एकेंद्रिय जीव ज्वारी चणा गहुं शेकया, ॥ पाडता रीव ॥ ते० ॥ २५ ॥ खांडण पीसण गारना, आरंभ अनेक; रांधण इंधण अग्निनां, कीधां पाप अनेक ॥ ते० ॥२६॥ विकथा चार कीधी वळी, सेव्या पांच प्रमाद, इष्ट वियोग पाडया घणा, कीया रुदन विषवाद ॥ ते० ॥ २७ ॥ साधु अने श्रावक तणां, व्रत लहीने भांग्या ॥ मूळ अने उत्तरतणां

मुज दुपण लाग्या ॥ तें० ॥ २८ ॥ साप वींछी सिंह चीतरा, शकरा शक्री ने समळी ॥ हिंसक जीवतणे भवे, हिंसा कीधी सबळी ॥ ते० ॥ २९ ॥ सुवावडी दुपण घणा, वळी गर्भ गळाव्या ॥ जीवाणी ढोळ्या घणा, शीळव्रत भजाव्या ॥ ते० ॥ ३० ॥ भव अनत भमता थका, कीधा देह सबध ॥ त्रिविध त्रिविध करी वोसिरु, तीणशु, प्रतिबध ॥ ते० ॥ ३१ ॥ भव अनत भमता थका, कीधा परिग्रह सबध ॥ त्रिविध त्रिविध करु वोसिरु, तीणशु प्रतिबध ॥ ते० ॥ ३२ ॥ भव अनत भमता थका, कीधा कुटुब सबध ॥ त्रिविध त्रिविध करी वोसिरु, तीणशु प्रतिबध ॥ ते० ॥ ३३ ॥ इणी परे इह भव पर भवे, कीधा पाप अखत्र ॥ त्रिविध त्रिविध करी वोसिरु, करु जन्म पवित्र ॥ ते० ॥ एणी विधे ए आराधना, भवि करशे जेह ॥ समयसुदर कहे पापथी वळी छुटशे तेह ॥ ते० ॥ ३५ ॥ राग वेराडी जे सुणे, एह त्रीजी ढाळ ॥ समयसुदर कहे पापथी छुटशे ततकाळ ॥ ते० ॥ ३६ ॥

मरण समयकी शुभ भावना

यह जगतमें पूर्वमे किये पुण्य पापही सुख दु खके कारण है और दूसरा कोई कारण नहि है ऐसा समजके शुभ भावना रक्खो

पूर्वमें नहि भोगे हुए कर्मका भोगसेही अत आवेगा

विना भोगे चलेगा नहि. ऐसा जानके शुभ भाव रक्खो.

जिस भावके विना चारित्र्य, श्रुत, तप, दान, शील, विगेरा सभी आकाशके पुण्यकी तरह निरर्थक है ऐसा मानके शुभ भाव रक्खो.

मैंने नरकका नारकी भावमें तीक्ष्ण दुःखका अनुभव किया है उस समय कौन मित्र था ऐसा मानके शुभ भाव रक्खो

सुर शैल (मेरु पर्वत) के समूह जितना आहार खाके भी तुझे संतोष भया नहि है वास्ते चतुर्विध—आहारका त्याग कर.

देव मनुष्य तिर्यंच और नरक यह चारों गतिमें मनुष्यको आहार सुलभ है परन्तु विरति दुर्लभ है ऐसा मानकर चतुर्विध आहारका त्याग कर.

कोई प्रकारके जीव समुदायका वध किये विना आहार हो सकता नहिं. वास्ते भवमें भ्रमण करानेवाले दुःखका आधारभूत चारों प्रकारके आहारका त्याग कर.

जिस आहारका त्याग करनेसे देवोंका इन्द्रत्वभी हाथके तलमें होय ऐसा भासता है और मोक्ष सुखभी सुलभ होता है ऐसा चारों प्रकारके आहारको त्यागो.

भिन्न २ प्रकारके पाप करनेमें परायण ऐसा जीवभी

नमस्कार मत्रको अत समयमेंभी प्राप्त करके देवत्व पाता है. उस नमस्कार मत्रका मनमें सर्वदा स्मरण करो

स्त्रीया मिलना सुलभ है, राज्य मिलना सुलभ है, देवत्व सुलभ है परन्तु नवकार मत्र प्राप्त करना अति दुर्लभ है वास्ते मनमें नवकार मत्रका निरतर स्मरण करो

एक भवसे दूसरे भवमें जाते समय भाविकोको जिस नवकार मत्रकी सहायसे परभवमें मनोवाछित सुख मिलते है उस नवकारमत्रका मनकी अदर स्मरण कर

जिस नवकार मत्रकी प्राप्तिसे भवरूप समुद्र गायकी खरी जितना हो जाता है और जो मोक्ष सुखकों सत्य प्राप्त कराता है उन नमस्कार मत्रकों चित्तमें सदा स्मरण कर.

इस प्रकार गुरुने उपदेश दी हुई पर्यन्ताराधना सुनकर सकल पाप वोसरावके यह नमस्कार मत्रका सेवन कर

पचपरमेष्ठिका स्मरण करनेमेंतत्पर ऐसा राजसिंह कुमार मरण प्राप्त करके पाचवे देवलोकमें इन्द्रपनाकों प्राप्त भाया

उसकी स्त्री रत्नवलीभी उसी प्रकार आराधनासेही पाचवे कल्पमें सामानिक देवत्व पाईगी वहासे चवी दोनो मोक्ष पायेंगे

इति मरण समयकी शुभ भावना समाप्त



शुभ चिंतवन करनेकी आखिर सलाह

"मेरा देह पड़नेके समयमें मेरे पछीकोई रुदन करे, शोक पाळे पलावें, पानी गिरावे, छः कायकी विराधना करे, उसमें मेरा कोई संबंध नहि है मेरे शरीरका संस्कार करे उसमेंभी मेरा कोई संबंध नहि है. व्यवहारसे जो कोई कुछ करें तो सो जाने."

कुटुंबीओंकों रड़ने कूटनेकी मना करना शोक पालनेकी ना कहना, मरणके बाद जो २ आरंभिक कार्य मोहके भावसे करें उसका निषेध करना. इस परभी पीछले कुटुंबी जन करें तो पीछे मरनेवालाकों कोई दोष या पाप बंधन होय नहि. और ऐसा न कहा जायतो उसकी क्रियाका दोष मरनेवालाकों लगे. श्रीभगवतीसूत्रमें कहा है. कीः—अविरतिपनासे एकेन्द्रिय जीवोंकों भी अढारह पापस्थानक लगते है. वास्ते सभी वस्तु वोसरावायके पीछेभी अपने निमित्त कर्म बंधनकी जो २ क्रियामें करनेमें आनेवाली होय उसकी भी ना कहना.

जिस जीवोंका चित्त संसारके पदार्थोंमें आसक्तिवाला है और अपने स्वरूपकों जो जानेते ही नहि है ऐसे जीवोंकों मृत्य भयभय है परन्तु जो जीव अपने स्वरूपमें स्मरण करनेकेवाले और संसारिक पदार्थोंमें वैराग्यवाले है ऐसे जीवोंकों तो मृत्यु एक एक हर्षका निमित है. वे तो यही सोचते है की आयु

कर्मके निमित्तसे ही यह देहका धारण है और उसकी स्थिति पूर्ण होनेसे उन कर्मका पुद्गल नष्ट होंगे तब मेरेकों दूसरी गतिमें उत्पन्न होना पडेगा मेरा आत्मा तो अनादि कालसे मरा नहि, मरेगा नहि, परन्तु पुण्यशाली आत्माकों तो यह सप्त धातुमय महा अशुचिके थैला जैसा और विनश्वर स्वभाववाला देहका त्याग करना और शुभ कर्मका प्रभावसे, समाधिका प्रभावसे दूसरी गतिमें नवीन सुंदर शरीर धारण करना जिसकों मरण कहलाता है, उसमे शोक काहेका ? उसमें तो आनंदही माननेका है

जैसे कोई आदमीकों एक सडी पुराणी झोंपडीकों छोडके दूसरे भव्य नवीन महलमें वास करनेके अवसरमें शोक प्रतीत नहि होता है, बरन आनंदही होता है वैसेही यह आत्माकों खड हर जैसा टूटा फूटा देहकों छोडके नया देहरूप महलको प्राप्त करना सो बडा उत्सवका अवसर है, उसम कोई प्रकारकी हानि है ही नहि क्योंकी यदि इस प्रकार उत्तम समाधिमें मरण होय तो हे चेतन ! यह मरण उत्तम गतिको देनेवाला है वारी तो सोचो, आजतक समाधि विना परवशतासे अनंत वार नरक तिर्यंचादि गतिमें मरण भये है असह्य दुःख सहन किये है. वास्ते ऐसा उत्तम प्रकारके समाधि मरणसे आनंदमानी सभी वस्तु वोसरावी, पीछे सबकी जीव रागके जोरसे कम बधन न करे इसके वास्ते पक्की भावमन करना उस परभी

यदि मोहके जोरसे वे कुछ करेंगे तो उसमें तुम्हे पापकी क्रियामें नहि लगेगी यह पक्का ख्याल रखना.

समकितदृष्टि आत्माकों स्वरूप ध्यान करनेके विचार

१ मैं अकेला हुं मेरा कोई नहि. २ मेरा आत्मा शास्वत् है. ३ मैं ज्ञान दर्शनसे युक्त हुं.४ धन कुटुंवादिक मेरे स्वरूपसे वाह्य वस्तु–अलग वस्तु है. वे सभी संयोगसे मिली है. और वियोगसे जायगी इसमें मेरा क्या विगड़ेगा ? ५ तन धन कुटुं-वादिकका संयोग याने मिलाप उसमें जीव अकुलाके दुःखकी परंपराकों पाता है. ६ यह शरीरादि पुत्र कलत्र परिवार प्रमुख वे संयोगी वस्तु मेरे स्वरूपसे अलग है. उन सभीकों मैं मन वाणी और कायासे वोसीराता हुं. ७ मैं चेतन हुं. और यह पुद्गलका स्वभाव सो अचेतन है. ८ मैं अरूप हुं यह पुद्गल रूपी है. ९ मेरा ज्ञानादिचेतना लक्षण स्वभाव है. यह पुद्गल जड़ स्वभाव है १० मैं अमूर्त हुं यह पुद्गल मूर्त है. ११ मैं स्वाभाविक हुं. यह पुद्गल विभाविक है. १२ मैं पवित्र हुं यह पुद्गल अपवित्र है. १३ मेरा शास्वत स्वभाव है और यह जो पौद्गलिक वस्तु मिली है वे सभी अशास्वती है. १४ मेरा ज्ञानादि रूप है यह पुद्गलका पूर्ण गलन रूप है. १५ मेरा स्वभाव अचलित है जव यह पुद्गल चलित स्वभावक है. १६ मेरा ज्ञान, दर्शन, चारित्यमय स्वरूप है, और पुद्गल

वर्ण गधादि युक्त है मै वर्ण गधादि रहित हु १७ मै शुद्ध निर्मल हु १८ मैं बुद्ध हु नानानदी हु १९ मैं निर्विकल्प सर्व विकल्पसे रहित-हु मेरा स्वरूप पुद्गलसे न्यारा है. २० मैं देहातीत-याने यह शरीरसे रहित हु. २१ अज्ञान, राग द्वेपरूप जो आश्रव वे मेरा स्वरूप नहि है मैं उनसें न्यारा हु २२ अनत ज्ञानमय, अनत दर्शनमय, अनत चारित्यमय, अनत वीर्यमय ऐसा मेरा स्वरूप है २३ मैं शुद्ध हु. कर्म मलसे रहित हु २४ मैं बुद्ध याने ज्ञान स्वरूप हु २५ मै अविनाशी हु वास्ते मेरा कभी नाश नहि होता २६ मैं जरासे रहित अजर हु २७ मैं अनादि हु मेरा आदि नहि है मैं अनत हु मेरा कभी अत नहि है. २८ मैं अक्षय हु-मेरा कभी क्षय नहि है ३० मैं अक्षर है मेरा कभी पतन नहि होता है ३१ मैं कभी स्वरूपसे चलित नहि होता वास्ते अचल है ३२ मेरा स्वरूप कोईसे कलित (समझा नहि जाता) नहि है वास्ते अकलित कहता है ३३ मैं कर्मरूप मलसे रहित है ३४ मेर तक कोई गमन नहि कर सकता वास्ते मै अगम्य है ३५ मेरा कोई नाम नहि वास्ते मै अनाम है. ३६ मैं विभाव दशाके रूपसे रहित स्वभाव है ३७ मै कर्मरूप उपाधिसे रहित-अकर्म है ३८ मै कर्मरूप वधनसे रहित अवधक है मेरा खेल न्यारा है. ३९ मैं उदय भावसे रहित अणुदय हु ४० मै मन, वचन, कायाका योगसे रहित अयोगी है ४१ मै शुभाशुभ विभाव

दशाके भोगसे रहित अभोगी है, ४२ मैं कर्मरूप रोगसे रहित अरोगी है. ४३ में कोईसे भेदाता नहि वास्ते अभेद्य है. ४४ मैं पुरुष, स्त्री, नपुंसक, लक्षण तीनो वेद (वेद्य) से रहित अवेदी है. ४५ मैं कोईसे छेदा नहि जाता वास्ते अच्छेद्य है. ४६ मैं आतमस्वरूप रमण खेद नहि पाता वास्ते अखेदी है. ४७ मेरा कोई सहायभूत नहि वास्ते असहाय है. मैं अपने पराक्रमसे सहित हूं परन्तु मेरा विपरीत परिणामनसे बंधा है तो जबकी मुलटा (अविपरीत) परिणमाउंगा तब छुटकारा होगा. परन्तु मुझे दूसरा कोई बांधने छोड़ने समर्थ नहि है.

इति ध्यानस्वरूप विचार

जीवकों वैराग्य उत्पन्न करनेके वास्ते सुंदर वचनो

१ यह जीवकों सभी पौद्गलिक वस्तुका संबंध मरण कालमें एकही साथ छोड करके परलोक गमन करनेका चौक्कस होने परभी झुठ ममत्व रखके अंत तक समझता नहि है.

२ यह जीव वीतरागके वचनानुसार शुभ अनुष्ठानमे प्रवृत्ति करेतो अंतरमुहूर्तमें सम्यगदर्शन पावे तथापि मोहमें मग्न रहके सारी जिदगीमें एकवारभी सम्यक्त्व पावें ऐसा दिवस नहि निकालता और व्यर्थ अपना भवकों गुमाता है.

३ धर्म मार्गमें प्रवृत्ति करने वालाही भवान्तरमें सर्वदा सुखी होता है ऐसा पका होने परभी अधर्ममे प्रवृत्ति करके

दु ख होता है ऐसा होने देना नहि

४ जो बाह्य वस्तुमें अपनी नहि है उन्होंकों अपनी मानके बैठा है और अपनी वस्तुमें ज्ञानादिक समीप होने परभी ज्ञानदृष्टिसे देखता नहि

५ बाह्य वस्तुओंकी उपर जितना प्रेम आत्मिक वस्तुओंके उपर होय तो एक घटेमें भवकी भावठ नष्ट हो जाय

६ अढारह पापस्थानक सेवन कर २ के इकठी की हुई लक्ष्मीको चार गतिमेंसे आये जीव पुत्रादि भावसे उत्पन्न होके उसका भोग करते है, और इकठी करनेवाला अपने परलोकके वास्ते उसमें आधी मिल्कतभी स्वहस्तसे शुभ क्षेत्रमें व्यय करके पुण्यानुबंधी पुण्य कमाता नहि है और मजदूरके माफिक जिंदगी पुरी करके परलोकमें दरिद्र अवस्थामें उत्पन्न होता है यह महान् आश्चर्य है

७ ऐसी अल्प जिंदगीमें कलकी खबर नहि कि क्या होगा तथापि जल्द धर्म न करके लंबे चौडे वायदा करके समय निताता है.

८ रात्री भोजन, परस्त्री गमन, बोळ, आचार और कंदमूल यह चार नरकके दरवाजे होने परभी मोहनीय कर्मसे आहत जीव उसमें प्रवृति करके नरकका अति दीर्घ काळका आयुष्य बांधता है परन्तु इन चारोंका त्याग नहि करता यहि खेदप्रद है

९ जगतमें मनुष्यकों दो तीन वर्षकी कैदकी सजा होती होय तो हजारो रुपया खर्चा करके रातदिन परिश्रम करके कैदकों दूर करानेकी चेष्टा करता है परन्तु नरकरूप असंख्य वर्षोंको कैदमें न जाना पडे ऐसा उपाय नहि क्यों लेता ?

१० एकवार बांधा कर्मकों दशवार तो विपाकसेही भोगना पड़ता है परन्तु तीव्र अध्यवसाय तो वही कर्म सौवार, हजारवार, लाखवार, करोडोंवार, .संख्याता, असंख्याता और अनंत भव तक भोगना पडता है. ऐसा अनंत ज्ञानीओंका वचन होने परभी कर्म बांधनेमें विचारभी करता नहि यह बहुत शोचनीय है.

११ अपनी भूलें पारावार होय तथापि उनकों ढांकके दूसरेकी भूलोंको मेरु जितनी बनाके परनिंदामें पड़के मनुष्यभव खो बैठता है.

१२ संसारका मजदूर दिनभर मजदूरी करते २ कम वहोत भी : आराम लेते है वैसेही जीवकोंभी दिनभर आश्रवरूप बोजसे थोड़ा वहोत विराम लेना चाहीये अर्थात् १-२ घंटा संसारी बोजाकों दूर करके सामयिक, पूजा, पडीकमण करना चाहीये तथापि नहि करता और दुःखी होता है. ऐसा न होने पावे यह लक्षमें रखनां चाहीये.

१३ शरीरसे आत्मा जूदा है. शरीर नष्ट होने वाला है भस्मी-

भूत होने वाला है तथापि उसके उपर तनतोड महेनत, और आत्मा अविनाशी होने परभी उसके वास्ते कुछभी प्रयत्न नहि सो कितनी मूर्खता समजना चाहीये

१४ जो जीव ससारमें राची माचीके (मैज शोखसे) पडे रहते है वे कभी दुनीयाकी दृष्टिसे विद्वान भी होवे तौभी शास्त्रकार तो उसकों मूढ गमार और मूर्खही कहते है.

१५ चाहे जितना बाह्य धनवाला होय तथापि समकीतसे रहित होय सो निर्धन जानो और दो आनेकी मूडीवालाभी पुणिमा श्रावक जैसा समकित दृष्टि आत्मा सच्चा धनवान है

१६ जिनेश्वर भगवानकी आज्ञाका अनुराधन मुक्तिके वास्ते है और विराधक सो ससारमें भटकने वास्ते है वास्ते कदापि विराधक बनना नहि विराधक बने तो जानो लटके.

१७ पैसावालेकों जैन शासनमें सचे श्रीमान् कहे है परतु पैसाका जो सदुपयोग करते है उन्हीकों सचे श्रीमान् कहे है

१८ नरकादि गतिमें उत्पन्न होना चाहे जैसा भयकर होय तथापि सो तो पाप करनेवालेके लिये ही है पुण्यात्मा-ओंको इसका भय नहि है

१९ सयम यह मुक्तका स्थान है ऐसा अनत ज्ञानीका वचन है जिसने आगेके पीछे सजमलेनेकी भावना जरूर रखना

और अवसर पाके संजम ग्रहण कर लेना जिससे संसारका भटकना नष्ट होगा और अनंत सुखके भानमें जल्द पहोंचना होगा.

२० सच्चे गुणीका कदापि सन्मान न होय परंतु अपमान तो कदापि न होने देना.

२१ जिनेश्वर भगवानकी आज्ञा मानवी और मिथ्यात्वकों छोडना और सम्यक्त्वकों आदरना यह तीन वस्तु हाथ आवे तो मन्हजीणाणंनी सज्झायमें ३६ कृत्य श्रावकके जो कहे है वे बराबर सफल भये समझना. परन्तु उपर कहे तीन कृत्योंकों न स्वीकारेतो फिर वाकीके ३३ कृत्य करें तोभी निष्फल जानो. मोक्षरुप फलतो कदापि न होय.

उपर कहे २१ सुंदर वचनोंको मननपूर्वक पढ़नेसे भव्यात्माओंकों अंशतः वहोत फायदा होगा.

हित शिक्षा और नीतिमय जीवन गुजारनेके वास्ते दो वचन

नीचे बताये वचन ध्यानमें लेके मनन करो, और यथाशक्ति आचारमें रक्खो.

१ तु कौन है.

२ क्यों आया है !

३ आकर मानव जीवनमें तेने क्या किया ?

२२ नीतिमय और उपकारक जीवन गुजारनेका प्रयत्न कर
२३ भूतकालकी भूल सुधारनेका प्रयत्न कर और भविष्यमें-ऐसा न होय इसके वास्ते कमर कस खड़ा हो.
२४ भविष्यका विचार करके प्रवृत्ति करना इसका नाम विवेक है. इसकी खास जरूरत है.
२५ आति जिंदगीका ख्याल करके कार्य करना.
२६ धर्मसे निरक्षेप होनेवाला मनुष्य जैसा दूसरा मूर्ख कौन
२७ भाग्यका उदय भी उद्यमसेही होता है.
२८ परस्त्रीगमन करनार चंदनकों छोड़के बब्बुलकों भेटके समान बहोत दुःखी होता है.
२९ यह शरीर अशुचिका यंत्र है वास्ते इसके उपर मोह न करके उसमेंसे जो निकालना होवेसो जल्द निकाल ले विलंब मत कर.
३० मनुष्य भव बहोत दुर्लभ है. वास्ते उसकों सफल कर.
३१ विचारका सुधारा होसके तभी वचन और कायाका सुधारहोसेके.
३२ सद्गुरुकी सेवा दुर्व्यसनोंकों नाश करें और गुणकों प्रकट करें.
३३ अभक्ष्य और अपेयका त्याग करके भोजन होय सोही सच्चा भोजन कहलाता है.

३४ पानी पीनेका पात्र अलग रखना मुखसे स्पर्श कीया भाजन पानीकी कोठीमें डाल के सभी जल बिगाडना नहि ऐसा करनेसे बहु जीवोंका विनाश होता है और चेपी रोग बढता है कई प्रकारकी हानी होती है

३५ विचारमेंभी अन्यको दुःख होय ऐसी चिंतना नहि करनी

३६ सभीके साथ मैत्री भाव करके वैरको भूल जा

३७ अपने हृदयको शांतिका स्थान धर्म विना दूसरा कोइनहि,

३८ जिस दिन अशुभ प्रवृत्तिमें तत्पर हो उसके पहिले मृत्यु का विचार कर ले.

३९ शुभ मार्गमें लक्ष्मी विवेकसे खर्चना यही लक्ष्मी मिलनेका फल है

४० सच्चा मित्र कौन? पाप मार्गमें रोकके सन्मार्गमें लगावेगा

४१ दीन दुःखी और अनाथके उपर अनुकंपा रखकर उसका उद्धार करो

४२ पर द्रव्यको पत्थर समान मानो स्वद्रव्यमें संतोषमानो

४३ परस्त्रीको माता बहीन और पुत्री तुल्य मानो

४४ परनिंदा चुगली और मिथ्या आरोप विगेरे पापोंका पोतसे बचत करो

४५ विषयतृष्णाको दूर करो इन्द्रियोंका गुलाम न बनो किन्तु इन्द्रियोंको अपनी गुलाम बनाओ

४६ चारित्र्य ग्रहण करनेकी शुभ भावना हमेशा रखो

४९ शरीर अच्छा होय तो संसारका मोहको छोडके, चारित्र ग्रहो.
४९ दूसरेको दुःखी देखके उसका दुःख दूर करनेको भावना रखो.
४८ संसारको कैद समझो. उसमें अकुलाओ मत.
५० धर्मराग करना परन्तु कामराग व स्नेहराग न करना क्योंकी वही संसारमें भटकानेवाला है.
५१ यथाशक्ति दश तिथि अथवा पांच तिथि तपश्चर्या करना
५२ लक्ष्मी उपर अत्यंत मोह मत रक्खो. आखिर उसको. छोडना पडेगा अथवा अपनेको वह छोड़ेगी यह याद रखो
५३ उपकारीका उपकार कभी न भुलो.
५४ खान पानमें वहोत लोलुपता न रखना,
५५ पहिलेका भोजन जरा(पचा)न होय तब तक दूसरा भोजन मत करो, सर्वदा दो चार कवल आहार कम करना
५६ उपद्रववाले स्थानका त्याग करो.
५७ राजाने निषिद् किया हो उस देशमें जाना नहि.
५८ एक दो कलाक धार्मिक पुस्तक वांचनेकी टेव रखना
५९ नीतियुक्त जीवन विताना अनीति करके दोनो लोक विगाडना नहि.
६० लोक प्रिय होना ६१ लजालु होना । ६२ दयालु होना
६३ उपर लिखे वचनका मनन करनेसे वैराग्य भावना जागृत रहेगी.

॥ अथ ढुंढक हित शिक्षा स्तवन ॥

श्रीश्रुतदेवी तणइ सुपसाय, पणमी सदगुरु पाया। श्री सिद्धांत तणइ अनुसार इ, सीख कहु सुखदायारे १ ॥ कुमति का प्रतिमा ऊथापे, मुग्धलोकनइ भ्रमें पाडी, तूपिंडभरइ ग्रा पापइरे। कु । २॥ सिद्धांत तणइपदि अक्षर अक्षर, प्रतिमानो अधिकार। तुमें जिनप्रतिमा काइ ऊथापो, तो जास्यो नरक मजारिरे। कु.। ६ ॥ द्रव्य पूजानो फल श्रावकनइ, कहिउ छै फल मोटो। पूर्वाचारय प्रतिमा मानी, तो थाइरोमत खोटार कु ।४॥ देशविरतिथी होय देवगति, तिहा प्रतिमा पूजेवी। ते तो चित्त तुमारें नावें, तो तुमें दुरगति लेवीरे। कु ।५॥ श्रावक-अवड प्रतिमा वदे, जूओ सूत्र उवाइ। सूत्र अरथना अक्षर मरडो, ए मतिथानें किम आईरे। कु ॥ ६ ॥ जघाचारणा विद्याचारण, प्रतिमावदन चाल्या। अधिकार ए भगवती बोलें, ये मुरख सहु कालारे। कु ॥ श्रावक आनदनें आळावे, प्रतिमा वदइ करजोडी। उपासकें विचारी जोयो, थे कुमतें हियाथी छोडीरे। कु. ॥ ८ ॥ श्रीजिनवरना चार निक्षेपा, मानें ते जगसाचा। थापनानें उथाप करेंजे, बालबुद्धिनर काचारे। कु । ९॥ लब्धि प्रयोजन अवधिआवइ, जिमगोचरीइ इरिया। शुद्ध सयम आराधक बोल्या, गुणमणिकेरा दरियारे कु. ।१०॥ ऋषभादिक जिन 'नाम' छिइ शिव, ठवणा, जिन आकरें। द्रव्य' जिना ते अतीत अनागत, भावें विहरता साररे। कु ।

११ ॥ द्रव्य थापना, जो नवी मानो, तो पोथी मतजालो। भावश्रुत सुखकारण बोलो, तो थाहरो सुखकालोरे। कु॥१२॥ जिनप्रतिमा जिन कहि बोलावे, सूत्र सिद्धांत विचारो। जिनघर सिद्धायतन, ना कहियां, सत्यभाषि गणधारोरे। कु.। १३ ॥ जिनप्रतिं प्रत्येंकिं प ऊधूपेवइ. द्रौंपदि सूरयाभदेवा। ज्ञाताराय- पसेणीमांहि, ए अक्षर जो एहवारे। कु. ॥१४॥ 'नमुथ्थुणं' कही शिव सुखमांगें, नृत्य करी जिननी आगि। समकित दृष्टि- जिन गुणरागें, कां तुज कुमति न भागेरे। कु.। १५ ॥सूरया भसुर नाटिक करतां, वचन विराधक न थयो। " अणुजाणह भयवं " इणि अक्षर, आणाराधक सद्दह्योरे। कु. ।१६॥ जल- यर' थलयर' फूलनां पगरण, जानु प्रमाण समारे। जोयणलगें ए प्रगट अक्षर, समवायांग मजाररे। कु.। १७ ॥ पडिलेहन करता परमांहि, कह्या छकाय विराधक। उतराध्ययनना अध्ययन छवीशमें, कुण दया धरमनो साधक। कु.। १८ ॥ नदी नाहलां उतरी चालो, दया किहां नव राखे। थें दयानो मर्म न जाणो, रहस्यो समकित पाखेरे। कु.! १९ ॥ साधु अनें साधवी वलीए, घडी छमांहि न फिरवुं। सुषिम वरषा तिहां हो ए, भगवतीसूत्र सद्दहवुंरे कु०। ।२०॥ परिपाटी जे धर्म देखाडें, ते कह्या धर्म आराधक। वसैं वरस पहिलो धर्मविछेदें, ते जिनवचन विराधक।कु.। २१ ॥ अत्ता- गम अनंतरागम वली, परंपरागम जाणो। ए तीनें मारगवली,

लोपें, ते तो मूढ अजाणरे । कु । २२ ॥ तुगीया नगरीना श्रावक दाता, पुण्यवत ने सौभागी । घरिं घरिवें राधो विण मार्गे, ए कुमती किहांथी लागीरे कु ।२३॥ योग उपधान विना श्रुत भणता, ए कुबुद्धि तिहां आई । तप जप सयम किरिया छाडें, पूर्व कमाई गमाईरे । कु । २४ ॥ चउवीश दडक भगवती भाष्या पनर दडक जिन पूजें । शुभ दृष्टि शुभ भावि शुभ फल, देखी कुमत मत धूजैरे । कु । २५॥ वेंद्री तेंद्री चउरेंद्रीय, पाच थावर नरक । निवासी जे जिन विंबनु दरसन न करें, ते दडक नवमा जासीरे कु । २६॥ व्यतर ज्योतिषने वैमानिक, तीर्यच मनुष्य ए जाणी । भुवनपतिना दश ए दडक इहां जिनपूज गवाणीरे । कु ।२७। श्रीजिन विंब सेव्या सुखसपति, इद्रादिक पदरुडा । वदन पूजन नाटिक करता, पामे शिव सुख ऊडारे । कु २८॥ कानो मात्र एक पद ऊथापें, ते कह्या अनत ससारी । तुतो आखा खधज लोपे, तिहारी गति छे भारीरे । कु । २९ ॥ कूवा अवाहाना पाणी पीउ, कहें अम्हें दया अधिकारी । ए एकवीश पाणीमांहि कह्या, थेंतो बहुल ससारीरे । कु । ३० ॥ श्री महावीरना गणधर बोले, मतिमा पुज्य फलरुडा । वदन' पूजन' नाटिक करता, । निंदा करें ते बूडेंरे (अथवा) जेते मुगति पुहचेंरे) । कु. । ३१ ॥ आदियुगादि सें चल आवें, देवलना कमठाण । भरत उद्धार शत्रुजय कीधो, थेंछो सहु

अनियमाणारे । कु. ३२॥ आद्रकुमार शय्यंभवभट्टा, प्रतिमा देखी पूज्या । भद्रबाहु गणधर इणि परे बोले, कठिन कर्म स्युंजूज्यारे । कु. । ३३ श्रावकने ए सुकृत कमाई, प्रतिमा पूजा अधिकाइ । जिन प्रतिमानी निंदा करतां, मति, बुद्धि, शुद्धि, गमाइरे । कु. । ३४ ॥ [1]कठोल धान काचे गोरस जिम्यां, जीवदया किम होई । वेंद्रीनी विराधन करतां, पूर्वकमाइ तें खोइरे । कु. ।३५ । सुविहित समाचारिथी टलीया, रति वीना रडवडीआरे । कुमत कदाग्रह नाथे राता, धरमथकी ते पडीयारे । कु. ३६ ॥

॥ पुनरपि स्तवनं लिख्यते. ॥

क्यूं जिनप्रतिमां ऊथापेंरे, कुमति क्यूं जिनप्रतिमा ऊथापें।अभय कुमारे जिन प्रतिमा भेजी, आद्रकुमारे देखी । जाति समरण ततषिण उपनो, सूयगडांग सूत्र छे सापीरे, पापी क्युं जिन प्रतिमा ऊथापें । १ "। सूत्र ठाणांगे चौथे ठाणे, चउ निक्षेपा दाख्या । श्री अनुयोग दुवारे ते पिण, गौतम गणधरें भाष्यारे । पापी, क्युं । २ ॥ भगवइ अंगे शतक वीशमें, उद्देशे नवमें

---

१ एक धानका वे फाडी होवे उसको–कठोल कहते है. मुंग चणादि, ओर उस वस्तुकी हरकोइ बनी हुइ चीज कच्चा (गोरस) दूध दहिं ओर छाश उष्ण कीया विगरके होतो भेला करनेमे वे इन्द्रि जीवो उत्पन होता है.

आनदे । जघाचारण, विद्याचारण जिन पडिमाजई वदेरे । पापी क्यु ।३॥ छठे अगे द्रौपदी कुमरी श्री जिनप्रतिमा पूजे । जिन-हर सूत्रें प्रगट पाठए, कुमतिने नहीं सूजेरे । पापी क्यू । ४ ॥ उपासक अगे आनद श्रावक, समकितने आलावे । अन्न उत्थिया प्रगट पाठए, कुमति अरथ न पावेरे । पापी क्यु । ५ ॥ दशमें अगे प्रश्न व्याकरणे सवर तीजे भाख्यो । निरजरा अर्थे चैत्य कह्यो है, सूत्रे इणिपरि दाख्योरे । पापी क्यु । ६ ॥ सूरयामे जिनप्रतिमा पूजी, रायपसेणी उवगे। विजय देवता ॥ जीवाभिगमें, सूत्र अर्थ जोवो रगेरे । पापी क्यू । ७ ॥ अरिहत चैत्य उवाई उपगे, अवडने अधिकारें । वदइ करयइ पाठ निहाली, कुमति कुमत निवाररे । पापी क्यु । ८ ॥ आवश्यक चूर्णी भरत नरेसर, अष्टापद गिरी आवे । मानोपेत प्रमाणे जिनना, चौविश बिंब भरावेरे । पापी क्यू । ९ ॥ शाति जिनेसर पडिमा देखी शय्यभव पडिवूजे । दशवैकालिक सूत्र चूलिका, कुमति अरथ न सूजेरे । पापी क्यु । १० ॥ शुभ अनुबन्ध निरजरा कारण, द्रव्य पूजाफल दाख्यो । भाव पूजा फल सिद्धिना कारण, वीर जिनेसरे भाख्योरे । पापी क्यु । ११ ॥ कुमति मदमिथ्या मति भुंडो, आगम अवलो बोले । ॥ जिन प्रतिमाशु, द्वेष धरीने, सूत्र अरथ नहीं खोलेरे । पापी । क्यू । १२ ॥ जे जिन बिंब तणा उथापक, नवदडकमाहि जावे जेहने बेह क्यु द्वेष थयो ने, किम तस मदिर आवेरे । पापी ।

क्युं । १३ ॥ सूत्र, निर्युक्ति, भाष्य, पयन्ने, ठाम ठाम आलावें । जिन पडिमा पूजे शुभ भावें, मुक्तितणा फल पावेरे । पापी क्युं । १४ ॥ संवेगी गीतारथ मुनिवर, जस विजय हितकारी सोभाग्य विजय मुनि इणिपरि पभणे, जिन पूजा सुखकारीरे पापी क्युं । १५ ॥

इति कुमति निकंदन स्तवनं ३ समाप्तं ॥

॥ अथ चिंतामणि पार्श्वजिन ४ स्तवनं ॥

भविका श्री जिन बिंब जुहारो, आतम परम आधारो रे । भ ।श्री ए टेक, जिन प्रतिमा जिनसरखी जाणो, न करो शंका कांइ । आगमवाणीने अनुसारें. राखो प्रीत सवाईरे । भ । श्री १ ॥ जे जिन बिंब स्वरूप न जाणे, ते कहियें किम जाणे । भुलातेह अज्ञानें भरिया, नहीं तिहां तत्त्व पिछाणेरे । भ । श्री । २ ॥ अंबड श्रावक श्रेणिक राजा, रावण प्रमुख अनेक । विविधपरें जिन भक्ति करंता, पाम्या धर्म विवेकरे । भ । श्री । ३ ॥ जिन प्रतिमा बहु भगतें जोतां, होय निश्चय उपगार । परमारथ गुण प्रगटे पूरण, जो जो आर्द्रकुमाररे । भ । श्री । ४ ॥ जिन प्रतिमा आकारें जलचर, छे बहु जलधि मजार । ते देखी बहुला मच्छादिक, पाम्या विरति प्रकाररे । भ ।श्री । ५ ॥ पांचमा अंगे जिन प्रतिमानो, प्रगटपणें अधिकार । सुर-याभ सुरे जिनवर पूज्या, रायपसेणी मजाररे । भ । श्री ६ ॥ दशमें अंगे अहिंसा दाखी, जिन पूजा जिनराज । एहवा

आगम अरथमरोडी, करियें किम अकाजरे । भ । श्री । ७ ॥ समकित धारी सतीय द्रौपदी, जिन पूज्या मनरगे । जो जो एहनो अरथ विचारी, छठें ज्ञाता अगेरे । भ । श्री । ८ ॥ विजय सुरें जिम जिनवर पूजा, कीधी चित्त थिर राखी । द्रव्यभाव विहु भेदें कीनी, जोवाभिगमने साखीरे । भ । श्री । ९ ॥ इत्यादिक बहु आगम साखें, कोई शका मति करजो जिन प्रतिमा देखी नित नवलो, प्रेम घणो चित्त धरजोरे । भ । श्री १० ॥ चिंतामणि प्रभुपास पसायें, सरधा होजो सवाई । श्री जिन लाभ सुगुरु उपदेशें, श्री जिनचद्र सवाई । भ श्री ११ ॥

इति चिंतामणि पार्श्व ४ स्तवन

॥ अथ मिथ्यात्व खडन स्वाध्याय ५ लिख्यते

दूहा—पूर्वाचारज सम नहीं, तारण तरण जहाज । ते गुरुपद सेवा विना, सवही काज अकाज १ । टीकाकार विशेष जे, निर्युक्ति करनार । भाष्य अवचुरी चूर्णिथी, मूल साथ मन धार । २ ॥ जेहथी अरथ परपरा, जाणत जे मुनिराज । सूत्र चौराशी वर्णव्या, भवियण तारक झहाज । ३ ॥ निजमति करता कलपना, मिथ्यामति केई जीव । कुमति रचीने भोलवे, नरके करसें रीव । ४ ॥ बाल अजाणग जीवडा, मूरखने मति हीन नुगराने गुरु मानसे, थास्यें दुखिया दीन । ५ ॥



ढाल—प्रणमीश्री गुरुना पदपंकज, शिखामण कहुं सारी । समकित दृष्टि जीवने काजें, सुणज्यों नरने नारी । भवियण समजो हृदय मजारी। १ । ए टेक ॥ अत्तागम अरिहंतने होवे अणंतर श्रुत गणधार । आचारजथी पूर्व परंपर, सो सद्दहे ते अणगाररे । भवियण समजो हृदय मजारी । २ ॥ भगवई पंचम अंगे भाख्यो, श्री जिनवीर जिनेस । द्रुप धरीने अवलो भाखे, करी कुलिंगनो वेसरे । भवि । ३ ॥ बाहार व्यवहारे परिग्रह त्यागी, बगलानीं परें जेह । सूत्रनो अर्थ जे अवलो मरडें, मिथ्या दृष्टि कह्यों तेह रे । भवि । ४ ॥ आचारज ऊवजाय तणो जे, कुल गच्छनो परिहार तेहना अवरणवाद लवंतो, होसें अनंत संसाररे । भवि । ५ ॥ महा मोहनी कर्मनो बंधक, समवायांगे भाष्यो श्रुतदायक गुरुने ओलवतो, अनंत संसारी ते दाख्योरे । भवि । ६ ॥ तप किरिया बहु विधनी कीधी,आगम अवलो भाख्यो सुरकिल्विषियोथयो ते थयो 'जमाली' पंचम अंगे दाख्योरे । भवि ।७॥ ज्ञाता अंगे सेल्लग सुरिवर पासथ्था थया जेह । पंथक मुनिवर नित नित नमतां, श्रुतदायक गुण गेहरे। भवि ।८॥ कुलगण संघतणी वैयावच, करें निरजरा काजें । दशमें अंगे जिनवर भाखें. करें चैत्यनी साहजेंरे । भवि । ९ ॥ आरंभ परिग्रहना परिहारी, किरिया कठोरने धारें । ज्ञान विराधक मिथ्या दृष्टि, लहें नहीं भव पाररे । भवि । । १० ॥ भगवती अंगे पंचम शतकें, गौतम गणधर सार्खे ।

समकित विन किरिया नहीं लेखें, वीर जिणद इम भाषेरे। भवि। ११ ॥ पूर्वे परपरा आगम साखे, सद्दहणाकरो शुद्धी। विरत ससारी तेहनें कहियें, गुण गृहवा जस बुद्धिरे। भवि। १२ ॥ नव सातना भेद छे बहुला, तेहना भग न जाणे। कदाग्रहथी करी कल्पना, हठ मिथ्यात्व वखाणेरे। भवि। ।१३॥ सम्यक्दृष्टि देवतणा जे, अवरण वाद न कहिये। ठाणाअगे इणिपरी भाख्यो दुरलभ बोधि लहियेरे। भवि। १४ ॥ देववदननी टीकाकारी हरिभद्र सूरिराया। च्यार थुइ करी देववादिजें, वृद्ध वचन सुखदायारे। भवि। १५ ॥ वैयावच शाति समाधिना करता, सुर समकित सुखकारी। प्रगट पाठ टीका निरधारयो, हरिभद्रसूरि गणधारीरे। भवि।१६॥ चारे अधिकारें चैत्य वदननो, न क्यु कहो इहें तेह। टीकाकार थुइ कही छे, सुर सम्यक्त्व गुण गेहरे। भवि। १७॥ खेत्र देव शय्यातरादिक, काउसग कह्यो हरिभद्रें। निर्युक्तिमें प्रगट पाठ ए, देखो करी मन भद्ररे। भवि। १८ ॥ श्रावश्यसूत्र कह्यो वदेतु, पुरवधर मुनिराय। बोध समाधि कारण वाछे, सुर समकित सुखदायरे। भवि। १९॥ वैशाला नगरीनो विनाशक, चैत्य थुभनो घाती। कुलवालुओ गुरुनो द्रोही, सातमी नरक सघातीरे। भवि। २० ॥ इत्यादिक अधिकार घणेरा, निरपक्षी थई देखो। दृष्टि रागनें दुर उवेखी, सुख कारण सुविवेकरे। भवि। २१ ॥ पडितराय शिरोमणि कहियें

अन्नविजय गुरुराय । जसविजय गुरु सुपसाये, परमानंद सुख-
दायरें । भवि ।२२॥

इति मिथ्यात्व तिमिर निवारण स्वाध्याय ५ मी संपूर्ण

॥ श्रीसंप्रतिराजाका ६ स्तवन । राग आशावरी ।

धन धन सप्रति साचो राजा जेणे कीधां उत्तम कामरे ।
सवालाख प्रासाद करावी, कलियुग राख्यो नाम रे धन १
वीर संवत्सर संवत् बीजे, तेरोत्तर रविवार रे ।
महाशुदि आठमी बिंब भरावी,सफल कियो अवतार रे धन २
श्रीपद्म प्रभु मूरती थापी, सकल तीरथ शणगार रे ।
कलियुग कल्पतरु ए प्रगटयो, वंछित फल दातार रे धन ३
उपासरा बे हजार कराव्या, दानशाला शय सात रे ।
धर्म तणा आधार आरोपी, त्रिजग हुओ विख्यात रे धन. ४
सवालाख प्रासाद कराव्या, छत्रीश सहस्स उद्धार रे ।
सवाकोडी संख्याये प्रतिमा, धातु पंचाणुं हजार रे धन. ५
एक प्रासद नवो नीत नीपजे, तो मुख शुद्धिज होय रे ॥
एह अभिग्रह संप्रति कीधो, उत्तम करणी जोय रे धन ६
आर्य सुहस्ति गुरु उपदेशे, श्रावकनो आचार रे ।
समकित मूल बार व्रत पाली, कीधो जग उपगार रे धन. ७
जिन शासन उद्योत करीने, पाली त्रण खंड राज रे ।
ए संसार असार जाणीने, साध्यां आतम काज रे ॥ धन. ८
गंगाणी नयरीमां प्रगटया, श्रीपद्मप्रभ देव रे ।

विबुध कानजी शिष्य कनकने, देज्यो तुम पय सेव रे ॥धन. ९
॥ इतिश्रीसमतिराजाका ८ स्तवन सपूर्ण ॥

श्रीशातिजिन स्तवन ॥

शाति जिनेश्वर साहेब वदो, अनुभव रसनो कदो रे,
मुख मटके लोचनने लटके, मोह्या सुर नर वृन्दो रे. शा
आवे मजरी कोयल टहुके, जल्द घटा जेम मोरा रे,
तेम जिनवरने निरखी हु हरखु, वळी जेम चद चकोरा रे शा.
जिन पडिमा श्री जिनवर सरखी, सूत्र घणा छे साखी रे,
सुरनर मुनिवर वदन पूजा, करता शिव अभिलाषी रे, शा
रायपसेणीमा पडिमा पूजी, सूर्याभ समक्तिधारी रे,
जीवाभिगमे पडिमा पूजी, विजयदेव अधिकारी रे शा
जिनवर बिंब विना नवी वदु, आणदजी एम बोले रे,
सातमे अगे समकित मूळे, अवर कह्या तस तोलेरे रे शा
ज्ञातासूत्रमा द्रौपदी पूजा, करी शिव सुख मागे रे,
राय सिधारथ पडिमा पूजी, कल्पसूत्रमा रागे रे शा
विद्याचारण मुनिवर वदी, पडिमा पचमे अगे रे,
जघाचारण विशमे शतके, जिनपडिमा मन रगे रे शा
आर्यसुहस्ति सूरि उपदेशे, साचो समति राय रे,
सवा क्रोड जिनबिंब भराव्या, धन धन तेहनी माय रे शा
मोक्ली प्रतिमा अभयकुमारे, देखी आर्द्रकुमार रे,
जाति स्मरणे समकित पामी, वरीया शिव वधू सार रे. शा

इत्यादिक बहु पाठ कह्या छे, सूत्र माही सुखकारी रे.
सूत्र तणो एक वरण उत्थापे, ते कह्या बहुल संसारी रे. शां.
तें माटे जिन आणा धारी, कुमति कदाग्रह वारी रे;
भक्ति तणा फळ उत्तराध्ययने, बोधिवीज सुखकारी रे. शां,
एक भवे दोय पदवी पाम्या, सोलमा श्री जिनराय रे;
मुज मन मंदिरीए पधरावुं, धवळमंगळ वर्तावुं रे, शां.
जिन उत्तम पद रुप अनुपम कीर्ति कमळानी शाळा रे;
जीव विजय कहे प्रभुजीनी भक्ति, करतां मंगळ माळा रे. शां.

॥ इति श्रीशांतिजिनस्तवनम् ॥



संसारस्वरूपकी विचित्रता और आत्माकी अनादिकालकी रखडपट्टी देखिये—

हे भव्यप्राणि समुदय !

स्वभावसेहि निर्मल और अविनाशी आत्मस्वरूपका निरीक्षण करनेवाले योगि महात्माओने अत्यन्त सुदर ऐसा शरीरका सौन्दर्य प्रिय लगता नहि है, अज्ञान प्राणिकु हि शरीरकी उपर ममत्वभाव रहता है, वह (शरीरकु) सुन्दर बनानेकेलिये शरीरकी उपर सुगन्धयुक्त पदार्थ लगाते है, बहोत सामहीन वस्त्र परिधान करते है, और प्रतिक्षण दर्पणमें अपना मुख देखा करते है, लेकिन उसकु मालुम नहि है की— शरीर एक अनेक रोगकी भरी हुइ कडी हि है, और बहोतसा कष्टका यह स्थान है, सुगन्धवाला अत्तर और चन्दनादि जैसे अच्छेसे अच्छे पदार्थभी क्यों न हो लेकिन शरीर उपर मालीस करनेसे वह सार रहित ही बनजाति है, और अनेकानेक प्रकारकी मीठाइ आने जिसकु देखतेहि तेरे मुखमें पानी छुट जाता है, ऐसा पदार्थभि शरीरका समागम होनेकी बात विपरीत परिणाम देनेवाला बन जाता है और जिस शरीरकी उपर बहोतसा प्रेम होता है वहि शरीर नाना प्रकारके रोगसे व्याप्त होता है तब अपना आत्माकुभी अनिष्ट

हो जाता है ऐसा प्रकारका शरीरका स्वभाव जानते हुए मोहजालसे बने हुवे मूर्ख प्राणि ऐसा हि मानते है की (यह शरीर) हरहमेशके लिये ऐसा हि सुन्दर रहेगा, इसि वजहसेहि अपने शिरपर सफेत वाल आनेके वाद वह वने हूवे सफेत वालकु काला बनानेके लिये 'ग्लेप' लगाता है, दांत पडजाने कि वाद मुखमें दांतकी वत्रीसी (कृत्रिम चोकठा) वनवाकर मुखमें डाल कर जुवान वननेका डोळ करता है. अर्थात् अनेक विध चेष्टाओं करके संसारमें हांसीके पात्र वनते है. और योगि महात्मा ऐसा हि मानते है कि मेरा स्वभाव अनंत ज्ञान दर्शक चारित्रमय हि है. उस समय शरीरका स्वभाव जड है. (सडण पडण) और विध्वंस धर्मवाला है. ऐसा प्रकारवाले शरीरसे मोह प्राप्त करनेका हि रात्रिदिन महान् प्रयत्न करते है. नाना प्रकारकी तपश्चर्या क्रिया करते है, प्रातः जल्दी ऊठकर आत्माका ध्यान करता है. दुसरेके भावमें यत्किञ्चित्भि ध्यान देता नहि है. और पूर्व समयके महापुरुषोंका जिनचरित्र अहर्निश विचारते रहते है. जैसाकी पूर्वकालके महापुरुषोने प्राणान्तमेंभी अन्यके भावमें रमणता कि नहि. खन्धक महामुनीकी खाल (शरीरकी चमडी) उतारी जा रहिथी वह समयपर आप शुभध्यानमें हि मग्न वन रहे थे. और विचार करताथाकि—अय आत्मा तुं देहसे पृथक् है तुमकु और देहकु विलकूल संवन्ध नहि है. उसि वजहसे समान भावनामें

हि रमणता क्रिया कर वैसी हि रीतिसे घाणीमें पिसाते समय खन्दकमुनिके पाचसो शिष्य और मेतार्यमुनि, सुकोशलमुनि, अवन्तिसुकुमाल, गजसुकुमाल, धनाशालीभद्र, अरणीकमुनिवर ऐसा अनेक महान मुनिवराने वहोतसा उपसर्ग आताथा लेकिन–आत्मभावनामेंहि रमणता की है और परमपदका भोक्ता बना है समकितदृष्टि आत्मा प्रातः कालमें जल्दी उठकर ऐसे महापुरुषोका चरित्र विचारा करते है उसकी मन, वचन, और कायासे अनुमोदन करते है अपना किया हुवा दुष्कार्यकी निन्दा करता है। और विचार करनाहै की—कोइ एक शेठ अपने यहा नोकर रखता है उसी नौकरकी पाससे पुरीतोरसे अच्छि तरहसे वह शेठ काम लिया करता है, तब यह शरीरभी एक किरायाकी कटडीहि है, आयुष्यरूपी किराया खतम होगा पूर्ण हो जायगा तब एक सेकन्ट समयभि नहि रह सकता उसीवजह जब तक देहमें रहना है तबतक कस निकाल डालु ऐसा विचार कर अनेकानेक प्रकारके कितनेहि शुभअनुष्टान, तीर्थयात्रा स्वामीभाइकी भक्ति, दोनो समय आवश्यकीय वितरागदेवकी भक्ति, तप, जप, करके मनुष्यजन्मकी सार्थकता करते है, उसीहि रितीसे समस्त प्राणीसमुदाय मनुष्यजन्मकी सार्थकता करनेके लिये, अहर्निश रात्रीन्दिवा महा भगिरथ प्रयत्न करना चाहिये यहि जिंदगीकी सफलताहै

———

संसार वाजीगरकी वाजी जैसा विचारना

हे प्राणी, आकाशमें जैसा इन्द्र धनुष होना है और क्षणमेंहि नष्ट होता है, एसीहि रीतिसे यह संसारमें विविध प्रकारके संजोग मिला करते है और नाशभी हो जाता है. ऐसे प्रकारके संजोगोमें यह प्राणी ममत्वभाव कर रहा है. और नित्यका सम्बन्धसामान लिया करते हैं लेकिन शास्त्रकार महाराज जानता है की दुःखकी परम्पराका कारण संजोग और वियोग है. यह संसारमें परिभ्रमण करते २ एक २ प्राणीकी साथ अनेक दफे संबंध हो गया है, तव हि अज्ञानताकि पारपरम्परा हुइ और प्राणी नित्यसंवंध मान रहा है, उसका वियोग होते हि आर्तध्यान, रौद्रध्यान करके नवा कर्मवन्धन करते है. पूर्वसमय के महापुरुषोभि संकटकु आते हुवे जानकर आनंदका विषय हि मानते है. स्वयं विचारते है की जो संकट आया है वह मेरा किया हुवा कर्मका विपाक है। तव अभि मेरी शक्ति है तव तक समभावसे हि सहन कियाजाय। आनंद कामदेवप्रभृति श्रावकोकु देवता समुदायने चलायमान किया तदापि धैर्यता रखी ॥ और परलोकमें उत्तम गतिका भागी वना है। एसे प्रकारके शास्त्रोमें अनेकानेक दृष्टान्त है। तव वर्तमान समयमें प्राणी अज्ञान दशासे वैसा प्रकारका वियोगादि प्रसंग आते हुए शीर पटकते है। छाती कूटते है और अनेक प्रकारका आर्तध्यान करते है। लेकिन विचार करते

नहि कि चाहे इतना आर्तध्यान करुगा तदपि छोडहुइ वस्तु पुनः प्राप्त होनेवाली नहि है। लेकिन उलटाहि नया कर्मबन्ध पडता है। जिसका भयङ्कर दैववाक भवान्तरमें भोगवना पडता है। ऐसा प्रकारका ससारका अनित्य स्वरूप विचारकर मुमुक्षु प्राणी मात्रकु इसमें तनिकभि राग करना नहि चाहिये। नवकार मन्त्रका स्मरण निरन्तर किया करना चाहिये। ससारकी असारता अहर्निश विचारनी चहिये। जिससे स्वल्पसमय कठिन कर्मका नाश कर अविनाशी स्वरूप प्रगट होगा। यह हकीकत खूब अनेकवार अपने लक्षमे लेना चाहिये। जिससे अपना जिवनमें वहोतसा फायदा होगा

॥ ससारकी कारागृहकी साथमें मुकाबला ॥

हे भव्यप्राणीवर्ग, कारागृह जैसा एक भयङ्कर स्थान है। कारागृहमें प्राणी मात्रकु अनेकविध दु ख होता है। और अहर्निश ऐसा विचारता है की अब कब छुटकारा जल्दीसेही या लउगा। ऐसा विचार करनातोभि कोइ रीतीसे वह छुट नहि सकता। तबतक वहा जमीन उपर बिछौना वगरहि सुनापडता है। रस रहित निररस भोजन करना पडता है। और हमेशा मारभी सहन करना पडता है। इत्यादि २ अनेकानेक दु ख सहन करना पडता है। जब यह ससाररूप कारागृह उससे अत्यन्त भयङ्कर है। जिसमें प्राणीवर्ग अनेक प्रकारके कष्ट सहन

करते है। वन्दीरखानामें जैसी पाउंमे वेडी डालीजाती है वैसीही वेडी यह संसारमें प्राणीवर्गकी तरफ स्त्रीलोक वेडीका जैसाहि आचरण करती है। जैसाकी कोइ प्राणीकु संसार भयङ्कर लगाहो और ऐसाभि होता है की यह कन्सित् संसारकु छोड-कर आत्मकल्याण सिद्ध करलेना चहिये। ऐसा विचार करता है उस समयपर स्त्री उपरका स्नेह याद आता है। और वह संसारकु छोड सकता नहि है। उसी वजहसे स्त्रीयांकुं वेडी समान (श्रृङ्खलासमान) समजना चाहिये।

(और कारागृहमें जैसा) खड्डा पडा हुवा है। उसी वजहसे उसमें हरना वहोत दुःखदाइ वनता है। इसी तरहसे संसारमें भी वारंवार नया २ दुःख आया करता है। कोइकु भायका तव कोइकु वहिनका, कोइकु पिताका, कोइकु माताका ऐसी दुःखकी परंपरा आया करती हि है। उसी वजहसे यह संसारमें रहना भी दुःखदायी जान पडता है तदपि मोहवस होकर छुटकारा पानेका प्रयत्न जीव करते नहिं। अव यहां इतनाहि विचारना है की—पांच, दश वरसकी कारागृहकी सजा भोगवते हुवे प्राणी मुंझाजाते है। और संसाररूप कारागृहमें रहते हुए। सागरोपमके अनंतकाळकी सजा यह आत्माने वहोत दफे सहचुका है तदपि अभि वह भूल गया है और सहन की हुइ सजाकु याद तकभि करता नहिं है। यह हकिकत आ-त्माकु सहनी पडी है और यदि यह हकिकत समजेगा नहीं.

मानलेगा नहिं और ध्यानमें मिलेगा नहि तब भोगवनीही होगी (वेतनाए) इतना ध्यानमें भि लेता नहि जिस वजहसे बहोत कठिन विटवनाए वेतनाए सहनी पडेगी इसी वजहसे अच्छी तरहसे भलिभातिसे पूरीतोरसे ससार काराग्रह बन्दीखाना समझकर उससे छटकारा मानेकेलिये सयम ग्रहण करके साध्य ऐसी सिद्धिया प्राप्त करलेना चाहिये वहि श्रेयस्कर जानना ॥

॥ ससारकु विषवृक्षकी साथमें मुकाबला ॥

परम उपकारी महापुरुषो भव्य आत्माकु उपदेश देता हुवा ऐसा समजाता है की—

विषवृक्ष अत्यन्तही भयकर है। केवल उसकी छायाहि प्राणीवर्गकु मूर्च्छाकु प्राप्त कराती है। और उस विषवृक्षका पराग प्राणीसमुदायकु अत्यतभी दु खकर होता है। उसमें (ससारमें) जीवमात्रकु द्रव्य प्राप्त करनेकी महान आशारूप छाया अतीव मोह देन वाली है। धन प्राप्त करनेकी प्रबल आशासेही प्राणीवर्ग परदेश गमन करता है। महासमुद्रपान भी करता है खाणमेंभी उतरना पडता है शेठजीकी शुश्रुसा करताहै। धनके लोभमें प्राणीसमुदाय मरनेका डरभी भूल जाता है। और स्त्रीयों विगेरे के समागममें अधिकाधीक आशक्ति रखता है। उसी वजहसे पुनर्भवमें बहात कलुवाफल अनेकानेक दफे सहना पडता है।

हे प्राणीवर्ग ससाररूप वृक्षका प्राणीवर्ग सामान्य विषसे

डरता है। और विपसे बचनेका प्रयत्न करता है। परन्तु ज्ञानी वर्ग फरमान दे रहा है की विप केवल एक भवमें हि मारता है तव संसारमें आशक्त बनने वाला प्राणीवर्गकु अनेक जन्म मरण करना पडता है। जबतक प्राणीवर्गकु जन्ममरण करना पडता है तबतक चाहे ऐसा सुख प्राप्त हो लेकीन वह सुख सच्चा सुख नहि कहा जाता क्यों की यह संसारका प्रत्येक सुख अनित्य हि है। अनेक दफे मिल चुका है। और अनेक दफे छोड भी दिया है। चाहे वैसा सुखसाधन प्राप्त कियाहो लेकीन अन्तसमयपर सबकु यहांहि छोड देकर एकीलाहि जाना पडता है। कोइभी साथमें आता नहि है। क्योंकी यह संसारके तमाम सुख अनित्य क्षणिक ही है। ऐसा प्रकारका स्वरूप विचारकर उत्तम प्राणी वर्गकु इस ससाररूप विपवृक्षसे भय ग्रस्त होते हुए उससे विपवृक्षसे बचनेके लिये वीतरागकी वाणीरूप अमृतका अहर्निश पान करना चहिये। जिस वज-हसे संसाररूप विपवृक्षका जहर असर न कर सकेगा. यहि इति॥

॥ संसारको राक्षसकी साथमें मुकाबला ॥

हे प्राणी तुं राक्षसकु देखतेहि भय पामता है तब यह संसाररूपी राक्षस उस सबकाहि भयंकर है। जैसा राक्षस रङ्कसे राजातक सर्व प्राणिका भक्षण करता है वैसाहि भवरूप राक्षस अनंतकालसे सर्व प्राणीका बिलकुल निर्दय रीतिसे भंक्षण कर रहा है। और राक्षस जैसा रात्रीमेंहि चलता है उसी

तरह ससारमें प्राणीमात्र अज्ञानदशामें गमन कर रहा है, उस अज्ञानकु रात्रिकी उपमा दीयि जाति है, जैसा रात्रीमें प्राणी-वर्ग अधकारसे प्राणीवर्गसे भटकता है तैसाही अज्ञानरूप अ-धकारसे प्राणीवर्ग एक दुसरेमे भटक रहे है, और राक्षस जैसा मस्तक उपर सर्पोंकु धारण करता है तैसा ससाररूप राक्षस कषायादि सर्पोंकु धारण कर रहा है और वहि कषा-यादि सर्प प्राणिवर्गकु निरन्तर करड रहा है उसका भय-ङ्कर विष प्राणी वर्गकु चढनेसे अपना आत्मस्वरूप भुला जाता है और अनेकविध चेष्टा कर रहे है, जब प्राणीवर्ग कषायकु वश होता है तब अपना तमाम धर्म भूल जाता है, कषायकु व होनेसे आपस आपसमें क्लेश करता है, और कचहरीमेंभी जाता है, और एक दुसरेका अहित करनेके लिये आत्मशक्तिका सम्पू-र्णतया व्ययभि करते है, लेकिन तु विचार, कोइभी प्राणी कोइभी प्राणीका हिताहित करनेके लिये समर्थ नहिं है, जैसा प्राणीके भाग्यमे होता है वैसाहि होता है, धनुकुमारके बन्धुवर्ग निष्पुण्य होनेकि वजहसे अपना सहोदर बन्धुओ प्रति प्रतिरोजइर्ष्या करता है तदपी धनकुमारने भवान्तरमें पुण्य उपार्जित कियाथा उसी वजहसे जहा जाता है वहा धनादि सामग्री प्राप्त करता है, इसी लिये दूसरेका अहित विचारने वाला प्राणी यथार्थ रीतीसे स्वत. अपनाहि अनिष्ट कर रहा है, इस वजहसेहि कषायादि सर्पोंसे दूर रहना चाहिये अच्छितरहसे सावधान

रहना चाहिये, और राक्षस जैसा भयङ्कर मुखकु धारण करता है उसी तरह भवरूप राक्षस कापदेवरूप भयरङ्क मुखकु धारण कर रहा है, निशाचरकु जैसा भक्ष्याभक्ष्यका भान नहिं रहता है वैसाहि संसारमें कापमें पराधीन बना हुवा प्राणिवर्ग अभक्ष्यका भी भक्षण करता है, अपेयका पान करता है, असत्य बोलता है, चोरी करता है और अनेक प्रकारका कार्य बन्धन करता है. हे आत्मा तुं विचार करके संसाररूप राक्षसने तेरा भक्षण अनेक दफे किया है, अब तुमकु इस राक्षसका डर लगा हो और उसका मुखने तुम आना न चाहते, हो तो अच्छी तरहसे पराक्रमकु दिखाव, तेरेमें अनंत शक्ति है, लेकिन अनादिकालसे तुं परभवमें रमणता कर रहा है, उसी वजहसे तेरी तमाम शक्तियां ढका गइ है, जैसा सर्प उपर बादल आनेसे सर्पकी प्रभा ढका जाती है, उसी तरह तेरा आत्मप्रदेशकी उपरभी कर्म वर्गणारूप बादल पडनेसे तेरा निर्मल स्वरूप ढका-गया है, उसी स्वरूपकु प्रगट करनेके लिये तुं शूरवीर बन, और उग्र तपश्चर्यादि करके कर्मरूप बादलकु हारकर आत्मस्वरूप प्रगट करनेके लीये भाग्यशाली बन जा, और कदाचित् तैसा नहिं करेगा तब संसारका अनिष्ट वातावरण तुंमकु बहोतसा नुकशान पहोंचाडेगा उसका ख्याल खूब कीजियेगा.

—::○::—

प्राणीवर्गकु सचा ज्ञान होतेहि

ससार दु खदाइ लगता हैं

ज्ञानी महात्माओ भव्यप्राणीवर्गकु उपदेश देते हुवे समजाता है की जबतक प्राणीवर्गकु सच्चा ज्ञान नहि होता है, तबतकहि ससारकी भितर मोह पामता है, लेकीन जब सचा ज्ञान प्राप्त होजाता है, तब ससारकी सर्व सामग्री स्वप्न समानही लग जाती है, जैसा की स्वप्नेकी भितर विविध प्रकारकी सामग्री देखी जाती है, लेकीन प्रभात होवेही सर्व असत्यही निश्चित होते है, उसी तरहसे ससारमें प्राणीवर्गकु सचा तत्वज्ञान प्राप्त होता है तब उसका अनेक प्रकारके सकल्प विकल्प शान्त हो जाता है. और ससारकी प्रत्येक वस्तु अनित्य क्षणिक भासति है, उसी वजहसे उसकु ससारकी कोइभी चीज उपर राग होता नहि और स्वयकु अनेक प्रकारके दु खादि प्रसग आता है, तदपि धैर्यहि रखता है और स्वयहि विचारत है की हे चेतन यह क्षणभगुर ससारमें परिभ्रमण करते हुवे तुमकु अनतीवार अनता दु.खोकी प्राप्ति हो चुकी है, ग्रीष्मऋतुका असह्य धूपमें जल २ करते हुए तेरा अनती दफे मरण हुवा है, शीयाळकी सख्त ठडी पाकर अनेक दफे मरण हो चुका है, और वारीस के समय मळता जळप्रवाहमें सहसा खिचाते हुवे अनेकसः मृत्यु हो चुका है और तु अनेक दफे नारकीमें जाकर

वहां अन्यन्त दुःख सहचुके है । वहां (नारकीमें) प्राणीवर्गकुं इतनी क्षुधा लगती है की जगतभरके तमाम पुद्गल भक्षण करनेपरभी तृप्त होते नहिं और तृषा इतनीहि लगती है की समुद्र इत्यादीके जलपान करनेसेभी उसकी तृपा नहि छीपती, अर्थात् "सुयगडाअंग सूत्रमें" नारकीका अधिकार चलता है, उसमें नारकीका दुःखोंका वर्णन कियागया है की चाहे इतना कठीन हृदयका आत्माकुभी हृदयमें ध्रुजारी लगजाती है, ऐसे २ अनेक दुःख तुमने अनंतीदफे सहन किया है उसकी आगे तुमकु आया हुवा दुःख विन्दुमात्रही है और जो दुःख तुमकु आया है उसकु कोइने भेजा हुवा नहिं है लेकीन् तेराहि बंधा-हुवा कर्मकाहि विपाक है, वह कर्म तुमकु उदयमें आया है, इसीलीये तुं समभावनामें रमणता कर, तुं चाहे इतना आर्तध्यान करेगा लेकीन उदयमें आये हुए कर्म सहन किया सिवाय अन्य रास्ता नहिं है, और तत्वज्ञ प्राणीवर्ग भोगादि सामग्रीकु विलकुल इच्छतेभी नहिं, क्योंकी वह तत्वज्ञवर्ग अच्छीतरहसे समजते है की ऐसी २ अनित्य और बाह्य सामग्री अनंतीवार प्राप्त हो चुकी है, और ऐसी आशक्ती करनेसे अनंता जन्म-मरण करचुके है, इसी वजहसे अब उसमे राचना नहि है. ऐसा २ विचार करके जो जो प्रसङ्ग आता है उसमें समकाङ्क्षी भावसेही रहता है.

समकित दृष्टि जीवडो करे कुटुम्ब प्रतिपाल ।

अन्तरथी न्यारो रहे जेम धाव खेलावे बाल ॥

समकित दृष्टि आत्मा कुटुम्बका पालन करता है तद्पी अन्त'करणसे बिलकुल दूरहि रहता है जैसा धावमाता (उपमाता मजदुरीन) पुत्रका पालन करती है लेकिन वह मानती है की यह लडका हमारा नहि है, उसी तरह विवेकवान तत्वज्ञ आत्मा हृदयमें निरन्तर विचरता है की एक दुसरेके लेनदेनुसेहि सजोग मिलते है, यह सजोग नित्य स्थापि नहि है वैसा विचार करके उसमे आन्तया क्रोध करता नहि है, बाह्य सामग्री बृहात्सी माप्त होती है, तब वह पुल्कितात्र नहि बनता है और दु खादि प्रसगमें विलाप नहिं करता है, उसी वजहसे कर्मका बन्धन अल्पही पडता है, ऐसा सच्चा तत्वज्ञान प्राप्त करनेके लीये विवेकवान प्राणीवर्ग अहर्निश प्रयत्न करता है

—*○*—

॥ ससारका ग्रहिलपणा ॥

ससारमें कोइ मनुष्यको भूत प्रेतनादिका वरगाड होता है तब बीलकुल पागलसा बन जाता है, और अनेक विच चेष्टा करते है, घडीभरमें रोता है, और रास्तेते लोटते है, ससारमें भी मोहसे पागल बने हुवे आत्मगण स्व और परका विवेक भूल जाता है और बिलकुल पागलकी जैसीही चेष्टा कर रहा है, जैसा की कोइ मनुष्य पुत्र न हो तब पुत्र प्राप्तीके लीये अनेकानेक मानता विगेर रखते है, और कर्मके योगसे पुत्रका

जन्म होता हैं तब पागलसा बन जाता है, और जैसा की कोइभी दिन वियोगही होने वाला न है, ऐसा मान लेता है, और वहि पुत्रकु रोगादी कारण आता है तब शोकातुर बन जाता है, इसमेंसे यदि पुत्रका मरण होता है तब बहोतही रुदन करता है छातियां कुटने लगते है और बिलकुल पागलसा बन कर पागलकी जैसी क्रिया करते है, और संसारके आत्मा कोइ समय-पर उपवनमें फरनेके लिये जाता है, नाटक और सीनेमामें स्त्रीयोंका हावभाव देखकर मोह पामता है, कोइ समय क्रोधमें आजाता है तब कोइ समय मानमें आजाता है और कोइ कोइ दफे विचित्र प्रसंग उपस्थित होता है तब खेद करता है.

यह पंचमकालमें ऐसे २ प्रसंग नित्यहि देखनेमें आया करता है तदपी मोहसे पागल बनेहुए आत्माकु बिलकुल भान रहता नहिं है, उसी वजहसे नाना प्रकारकी चेष्टा कर रहा है, जैसाकी संसारकी भितर जन्मसेहि कितनेहि प्राणीवर्ग अन्धे, बहिरे, तोतले, होते है और पापका उदय होते हुए अपनेकु सुखी मानता हुवा मनुष्यभी अत्यन्त दुःखदायी स्थितीमें आपदाहो ऐसा दिखा देता है, यह सब पापकाहि फल है ऐसा जानते हुए प्राणीवर्ग अत्यन्तहि रागद्वेष करता है, क्रोध, मान, माया, लोभ, करता है जीवहिंसा करता है, असत्य बोलता है, चोरी करता है, परदार गमन करता है, रात्रीमें भोजन करता हैं, कन्दमूल इत्यादिका भक्षण करता है, इत्यादी अनेकविध

नाना प्रकारके पापमें प्रवृत्ति करता है, वह बिलकुल पागलकी जैसेही चेष्टा गिनिजाति है, प्राणीवर्ग ऐसी रीतीका पागलपना अनंतकालसे कर रहा है तदपी यह पागलपनाकु मिटाडनेके-लिये बिलकुल प्रयत्न करता नहिं है, यदि अब तुमकु ऐसा लगाहो की ऐसा ग्रहीलपणा करके अनंत दु ख सहन किया है, तब अब मेरा सचा स्वरूप किस तरहसे प्रगट हो सकेगा ऐसी यही इच्छा तुमकु होजाय तब परम पवित्र वितराग देवका शरण अंगीकार करके उसी महापुरुषोका शरण करनेसे बिलकुल पागल बनाहुवा प्राणीवर्गका सचा स्वरुप प्रगट करके अनन्त सुखका भोक्ता बना है, और तुमभी सचे हृदयसे वितराग देवका शरण करेगा तब सचा स्वरूप प्रगट करके अन्त आनेकी बाद सचा सुख प्राप्त करनेके लिये भाग्यशाली होगा, जिस वजहसे ग्रहिलपणा निकालदेनेके लिये यथार्थ बराबर प्रयत्न कीजियेगा, विलंब करना नाह, मानव भवमें अनादिकालका ग्रहिलपणाका प्रयत्न करेगा तब निकाल सकेगा वह लक्षमें रखियेगा



॥ यह ससार ग्रीष्मऋतुकी जैसा भयङ्कर है ॥

उनालेके समयमें गरमीके दिनोमें सख्त धूप गीरनेसे प्राणीवर्गकु तृपा लगती है, उसीतरहसे ससारमेंभी क्रोधरूपी

भयङ्कर सूर्यकाधूपसे प्राणीवर्गका समतारूप सरोवर सूकाजाता है, इसी वजहसेही पांच इन्द्रिवर्गका विषयसुखकी अभिलाषारूप अत्यन्त तृषा लगती है, यहि कारणसेहि प्रायः जगतके सर्व प्राणीवर्ग वह (विषयसुख) प्राप्त करनेके लिये बडा प्रयत्न कर रहा है, मानलोकी यह संसारमें परिभ्रमण करते हुए अनंतिवार विषय सुखकी प्राप्ति हुइ है तदपी यह आत्माकु तृप्ति न हो सकी ऐसा मान रहा है, समुद्रकी भितर चाहे इतनी नदियां आती है तदपी समुद्र पूर्ण होता हि नहिं और अग्निमें चाहे इतना काष्ट डालीए तदपी अग्नि तृप्त होता नहिं है, इसी तरहसे चाहे इतना सुख प्राप्त हो तदपी प्राणीवर्गका अनादिकालका विषय भोगवनेकी अन्यन्त अभिलाशारूप तृषा शांत होती नहिं हैं, और गरमीके दिनोमें बहोत धूप गिरनेसे प्राणीवर्ग बहोत आकुल व्याकुल होता है, इसी तरह संसारकी भितर प्राणीवर्ग कामदेव वश होनेकी वजहसे आकुव्याकुल बन जाता है और बहोनसी ग्लानी पाता है. वह प्रत्यक्ष प्रमाणसेहि देखा जाता है, अब यहां इतनाहि विचारना है की यह आत्मा अनन्तकाल हुए संसारकी भितर परिभ्रमण कर रहा है, और उपर लिखि हुइ रितिसे ताप सहन कर रहा है तदपी वह तापकु दूर करनेके लिये प्रयत्न करता नहि है, गरमीके दिनोमें कम गरमी पडती है, तब बगीचेमें हवा खानेके लिये जाते है, सरोवरमें पडते है, और अनेकविध उपचार करते है, तब यह संसार

रूप उनालेकी गरमी मिटानके लियेजीनशासनरूप अमृत-
कुण्ड प्राप्त हुवा है तब उसका आदर करनेके लिये प्रयत्न करता
नहि है, अतीतकालमें जीनशासनरूप सरोवरकु प्राप्त करके
अनेक जीवोने अनंतकालकीविषयरूप तृषा शान्त की है, वर्तमान
कालमें भव्य प्राणीवर्ग कर रहा है, और भविष्यकालमें भी
अनन्त प्राणीवर्ग जीनसाशनरूप अमृतकुन्डकु प्राप्त करके अना-
दिकालकी विषयरूप तृपा शान्त करेगा, खेदकी बात यह है
की अनेक प्राणीवर्ग विषयसुखमें मग्न होनेसे जिनसासन-
रूप अमृतकुण्डका आस्वादन करते नहि है, इसी वजहसे इसमें
शीतलता है इसकी उसकु मालुम नहि पडती है, इसीवजहसेहि
परमोपकारी महापुरुष वर्ग जनाता हैं की हे भव्य प्राणी समु-
दाय हमलोक तुम लोगोंकु आग्रहपूर्वक कह रहे है की तुमलोक
एक दफेभी जीनसासनरूप अमृतकुण्डका आस्वादन कीजिये,
तुमलोक जैसे २ इसमें रमणता करोगे तैसे २ हलाहल झहर
तुल्य तुम्हारी विषयतृष्णा मिट जायगी, अब अमृतकुण्डका
किस तरहसे सेवन किया जाय वह बताते है, यदि तुमकु
नाटक सीनेमा और स्त्रीयोंका सुन्दर मुख और उसका मनोहर
वेश देखनेकी अभिलाषा होती हो तो उसकु बन्ध कर और पर-
मपवित्र जिनेश्वर परमात्माकी मूर्ति, परमपवित्र गुरुमहाराजका
अनेक दफे दर्शन करनेकी भावना कीजिये और तुमकु हमेशा
नयानया वेश पहनकर और मस्तकमें नेत्रादि इ[illegible] रीरकु

शोभायमान वनानेकी मनीषा होती है, लेकीन इसमे यह शरीर कभी भी शुशोभित होगा नहिं. इस लिये वस्त्रकी रीतिसे शरीरकु शोभायमान वनानेकी मनीषा होतो तुमको अनेक प्रकारके अनुष्टान शीलकु धारण करना चाहिये स्वामीभाइ वर्ग और कोइभी पीडितआत्मावर्गकु शांति देनी चाहिये, इत्यादि २ कार्य करना चाहिये, और हमेशां महापुरुषोका चरित्रोका वांचन करना चाहिये, जिससे तेरी अनादिकालकी भवतापरूप तृष्णा शांत होगी यह तृष्णा अनादिकालसे वहोत २ आत्मासमुदायकु दुर्गतिके खड्डेमें डाल देती है, जिससे आत्मावर्गकु वहोत २ सहन करना पडता है, इसी वजहसे ऐसी तृष्णासे वचनेके लिये हि ऐसा प्रयत्न करनेकी पुरी तोरसे आवश्यकता समजनी चाहिये ॥



॥ यह संसार विश्वासघाति है ॥

परमोपकारी महापुरुष समुदाय भव्यप्राणी वर्गकु उपदेश देते हुवे समजाता है की कोइ एक अधम मनुष्यकी उपर चाहे इतना उपकार किया जाय तदपी वह दुर्जन अपनी दुर्जनताकु छोडता नहिं है, और उपकार के वदलेमें अपकारहि करता है, उसी रीतीसे यह संसारभी ऐसा प्रकारका हि है, और यह संसारकी भितर सर्व प्राणीवर्ग अपना २ स्वार्थमेंही लगा रहता है, और जब तक स्वार्थ हो तब तकहि आपस आपसमें प्रेम

दिखाया करता है, अपना स्वार्थ पूर्ण होतेही अत्यन्त प्रेम प्रचुर अपनी प्यारी प्रिय पत्नीभी अपने प्रिय पतिकु सहसा त्यजती है, और अत्यन्त प्यारा पुत्र, प्रतिमासीक अच्छेसे अच्छा वेतन लाने वाला हो तबतक हि पुत्रकु अच्छा २ करते है, यदि भाइसाहेब बहार गये हो और यदि पाचहि मीनीट देर हो जाय तो माता पिता के हृदयमें विचारोंकी परपरा चलने लगजाती है, वहि पुत्र पागल बन जाता है और, रोग-ग्रस्त बनता है तब क्रमसे उसकी उपरसे स्नेह हट जाता है, इतनी मर्यादा तक स्नेह घट जाता है की अन्तीममें अति प्रिय माता और पिता वह पुत्रकु छोड देता है, मामा मौसी बन्धु भगिनि (बहिन) इत्यादि सर्व बिल्कुल स्वार्थ ही वहा तक हि प्रेम दिखाते है, पैसावान भाणजा घरकु आता है उसकु अत्यन्त प्रेमसे आदर सत्कार करते है, और इसके लीये अच्छा अच्छा मिष्टान्न बनात हुवे खिलाते है, और इसके लिये वडेही कम दिवसमें बहोतसा खर्च भी करडालते है, जब ही द्रव्यहीन कगाल भाणजा घरकु आयाहोतो अच्छा भोजन तो दूर रहा लेकीन कोइ आदर सत्कार भी करता नहिं है, एक पिताकु दो लडकीया हो अब एक लडकीके प्रारब्धोदयसे इसके वहा बडा भव्य महेल, मोटर गाडी, बगीचा, इत्यादी सामग्री हो वह पुत्री अपने महियरमें आती है तब माता, पिता, बन्धु, भोजाइ इत्यादि बडाहि सन्मान करते है, और कौटुम्बी-

जनका वहिन २ किया करते हुवे मुख सुखा जाता है, वह दो पांच दिन रहती है तदपी सो दोसो असर्फियोंका (रुपीयेका) खर्चा हो जाता है और वह पुत्री घरका कुछभी कार्य करती नहिं है लेकीन वह पैसा वाली है इसी वजहसे भविष्यमें कोइ समय अपना कार्य सिद्ध होगा ऐसा विचारते हुए सर्व स्नेहि समुदाय स्नेह बताते है, और दुसरी पुत्री सामान्य स्थीतिमेंहि होतो वह पुत्री घर आनेपर उसके लिये सर्व करना तो दूर रहा लेकीन कोइ आदर सत्कारभी करता नहिं है, और वह एक महिना रहेगी तब शिवना, गुन्थना, भरना, इत्यादि घरका तमाम काम करती है तदपी इसकी उपर प्रेम बताते नहिं है, यह सब हकीकतोंका सर्व प्राणीसमुदायकु प्रत्यक्ष अनुभव है तदपी मोहवश होते हुवे मेरा २ कर रहा है, और संसारका कैसा घातकीपणा है उसका विचार करता नहिं है, यदी अब तुमकु संसारका सच्चा स्वस्वरूप समजमें आ गया हो तब बाह्य कुटुम्बकी उपर राग कमती करके सुबुद्धिरूप स्त्री, विनयरूप पुत्र, गुणरति नामकी लडकी, विवेक नामका पिता और शुद्ध परणति नामकी माता ऐसा आन्तर कुटुम्बकी उपर राग रख जिससे वह आन्तर कुटुम्बी वर्ग तुमकु परमपद प्राप्ति करावेगा, उपाध्यायजी म्हाराज यशोविजयजीभी ज्ञानसारमें उसी रीतीसे हित शिक्षा देते है की बाह्य कुटुम्बकु छोडकर अब आन्तरिक कुटुम्बकु ग्रहणकरके सच्चा सुख प्राप्त करनेके लिये सावधान

नन जा कि जिससे कोइभी दिवस तैसा सचा कुटुम्बका वियोग होगाहि नहि यह अच्छीतोरसे खूब यानमे लेना चाहिये



तत्वदृष्टिसे अनादिकालकी प्राणीवर्गकी भूल दृष्टिगोचर होती हे।

शास्त्रकार म्हाराज जनाते है की मनुष्यभवका एक समयभी लक्षावधी असर्फिया देते हुवेभी मिलसक्ता नहि है तब प्राणीवर्ग बाल्यावस्थामें अपना बहु मुल्य समय खेलने कुदनेमें बर्बाद करते हे, तरुणअवस्थामें स्त्रीयादीके समागममें व्यामोह पाते हुवे सुसमयकु गुमादेते है और इस समय उसकु ऐसा विचार तक नहि आता है की मेरा यह अमूल्य समय चला जाता है, वह मोहमें मुग्ध बनकर ससारमें एकाकार बनजाता है, सचा खेद करने योग्य यह है की ससारमें शाणे गीने-जातेहूए ऐसे शेठ, साहुकार, वकील, वैद्य, बेरीस्टर, इत्यादि ? मोहमें पागलसा बनकर एकान्तस्थलमें स्त्रीयोंकी पास नाना विध तरह तरहकी चेष्टाए करते हे, उस समय यदि स्त्री अपमानभी करेगी, धक्काभी मारेंगी, तदपी आनन्दकाही विषय मान लेते है, इस समयपर मैं कोन हु? मेरी क्या फर्ज है? इस तरहका विलास मुझकु कभीकभी शोभास्पद नहि है, वह सब भूल जाता है, और स्त्रीयोका शरीर दुगन्धकाही एक

स्थान है, जिसके बारह द्वारमेंसे निरन्तर गटरकी तरह दुर्गन्ध वहाही करती है, और रोगकाभी स्थान है, वह स्त्रीयोंका मुख देखनेमें, उसका सुन्दर वेश देखनेमें और उसीकी साथ क्रीडा करनेमें आशक्त बनकर बीलकूल छोटेसे बालककी तरह कार्यवाही कर रहे है, तत्पश्चात् माने उसकी बाद सन्ततीका व्यामोह पाते है, उस सन्तानकु विविध प्रकारसे खेलानेमें आनन्द मानते है, उसकु छातीकी उपर बैठाते है, उसकु रोगादी कारण आनेपर बहोतसा खेद करते है, उसकी बाद धनादि बाह्य संपत्तियां संपान करनेके लिये बडेहि कष्ट सहन करते है परदेश गमन करते है, अतीव भयङ्कर समुद्रका उलङ्घन भी करते है, बहोतसी घहरी खांणमें उत्तरते है, धातु रस सिद्ध करनेके लिये नाना प्रकारके मनुष्यकी सेवा करते है, राजा शेठ इत्यादिकी तावेदारी उठाते है, जाडा, घाम, बारीष, क्षुधा, तृषा, इत्यादि २ नाना प्रकारके कष्ट सहन करते है, और ऐसे २ अनित्य अस्थायि पदार्थके लिये प्राणिवर्ग एक दुसरेसे झघडा करते है, आपस आपसमें मार पिटाइ करते है, दुसराका धन प्रतारणासे छल कपटसे हरण हरते है, एक कुटुम्बके मनुष्य होनेपर भी एक दुसरेसे गुप्त रीतीसे धन एकिठा करते है और उस धनकु गुप्त रीतीसे छुपावनेके लिये बडीहि महिनत उठाता है, ऐसी रातीसे प्राणीवर्ग मोहसे विकल बनकर जींदगानी व्यर्थहि गुमाते है, लेकीन जब प्राणी समुदायकु

तत्वदृष्टि प्राप्त होति है तब हृदयकी भितर बहोतसा परिताप होता है, स्वय सोचने है की मैने अमुल्य भव व्यर्थहि गुमाया जैसाकी कोइ मनुष्य अपनी हि गफलतसे लक्षावधि असर्फिया खोडालता है और पिछे शोक करता है उससे अधिक सच्चा ज्ञान प्राप्त होनेकी बाद प्राणी वर्गकु शोक होता है,ऐसा तत्व ज्ञान प्राप्त करने वाले स्वल्पहि होते है, बहोतसे प्राणीवर्ग अन्तीम काल तक मेरा २ करते हुए अन्तमे खालीही हाथसे चले जाते है यह सब विचार करके विवेकवान प्राणीवर्गकु तत्वदृष्टि प्राप्त करनेके लिये अहर्निश उद्यमवन्त बनना चाहिये, प्रात कालमें जलदी उठना चहिये आत्माकी साथ विचार करना चाहिये, तु कौन है? कहासे आया है? कहा जाना पडेगा? और तेरी सगमे कौन आनेवाला है, तु जरासा सोचले तेरे सगे नातिले कौन है? प्रेमी कौन है? की जिसका विना तुमकु घडीभरभी अच्छा लगता नहिं है एसे और तेरे साथमें हि बैठने वाले और साथमेंहि भोजन करने वाले ऐसे २ स्नेहि वर्गकु कालराजा तेरे देखते ही उठाजाता है, और बाल्यावस्थामेंही आनन्द करने वाले, मित्रवर्गकु कालराजा सहसाही पकड गया और तेराभी ऐसाही समय जरूर आनेवाला है, तदपी तु क्यों जागृत बनता नहिं है. इसी लिये जागृत बन जा, ज्ञान ध्यानमें आदर कर दुनियाकी तमाम वस्तुओ उपरसे तेरा मोह दूर कर, राग, द्वेष, कषायादि तेरे भयङ्कर शत्रु है, इसी

इजहसे इससे बराबर सावधान रहनेके लिये प्रयत्न कर, जिससे शुभ भावमें आरूढ बननेके लिये तेरा आत्मा उत्साही होगा और ऐसा प्रकारका उत्साह करनारको तत्व दृष्टि प्राप्त होगी, और तत्व दृष्टि प्राप्त होनेसे मेरेको त्याग करने योग्य क्या है? मेरे लीये आदरणीय क्या है? और जानने लायक क्या है? इत्यादीका ज्ञान होगा, और संसारका प्रत्येक पदार्थकी उपर उदासीन भाव प्रगट होगा, इससे समभावनाकी प्राप्तिहोगी और समभावना प्राप्त होनेसे कर्मका बन्धन बहोतही कम होजायगा, और जैसे २ कर्मका बन्ध कम होगा तैसे २ धीरेसे २ आगे बढ कर उत्तरोत्तर पुण्यानुबन्धी पुण्यप्राप्ती करके हे आत्मा अर्न्तोम अव्याबाध सुखका स्थानमें पहोंच सकेगे, यह खूब अच्छीतरहसे भलि भांतिसे लक्षमें रहना चाहिये. ॥



॥ ध्यानपूर्वक विचार कीजीये ॥

उपर बतलाए हुए भिन्न भिन्न प्रकारसे संसार स्वरूपकी विचित्रताका हृदयमे खूब गहरा विचार करके ध्यानमें लेना चाहिये और विचार करना चाहियेकी उपरोक्त रीतीसे प्रत्येक रीतीसे सर्व लोक अनुभव कर रहे है तदपी ऐसा प्रकारका यह संसारमेंहि हे चेतन अबतक तेरा चित्त दोड धाम कर रहा है वह व्याजबी नहिं है, ऐसी दोड धामसे कदापि संसारका

और उसकी साथ दु खकाभी अन्त आता नहिं है, अत इसीहि वजहसे ऐसी चेष्टाए त्यजनेके लिये निम्नलिखित ज्ञानिजीका वचन ध्यानमें लीजीये—

कुणसि ममत्त धण सयण ।
विहवपमुहेसुअणतदु'खेपु ॥
सिढिलेसिआयरपुण ।
अणत सुखम्मि मुक्खम्मि ॥ १

हे जीव अनत दु खका हेतुभूत धन स्त्री कलत्रादि स्वजन और वैभव विगेरेके विपयमें तु ममत्वभाव सेव रहा है, और जब और तु सुख जिसमें है ऐसा महा दुर्लभ मोक्षके विपयमें आदर शिथिल करता है, ऐसा कौन मूर्ख है की जो दु.ख देनेवाला पदार्थ है उसमें आसक्ति रखकर सुख देनेवाले पदार्थकी ओर उपेक्षा रखता है, लेकिन हे आत्मन् तुमने तो सेवाहि किया और दु.खभी खूब सह लिये अवतो निम्नलिखित गाथा ध्यानमें लेनाचहिये—कितनेहि दु ख नरकमें सहन करचुके उसका विचार कर—

गाथा-सत्तसुनरयमहीसु
वज्रानल दाहसीय विणयासु ।
वसियो अणन्त सुत्तो
विलवन्तो करुण सददेहिं ॥

हे जीव तुं सप्त नारकीमें करुणोत्पादक ऐसा शब्दों करके विलाप करता हुवा अनंतिवार रह चुका है कि जिस नारकीमें वज्र समान अतिशय कठीन अग्निकी और शीतकी असह्य वेदनाएं तुंमकु भोगनी पडी है, अब उससे त्रास पाते हुए वहां न जाना पडे तेसा जैनधर्ममें बतलाए हुए शुभ कार्योंमें सावधान होकर तत्पर बनजा, ऐसे प्रकारके विचारसे जरूर ध्यानमें आवेगा की कोइभी रीतीसे यदि दुःखका अंत लाना होगा तब सम्यक्दर्शन, ज्ञान चारित्र, रत्नत्रयिका आराधन करना पडेगा ज्ञानदर्शन दो कदाचित् प्राप्त करेगा परन्तु तिसरा चारित्ररत्न और उसमें वीर्य डाला हुवा विना आत्माकु अनन्त सुख नहिं मिलेगा २, इसी वजहसे अब तो सब सामग्री मिल चुकी है जैन धर्म पाचुकेहे इसी वजहसे अब बाकी कुछभी नहिं रहा है, इसी लिये सम्यक्त्व और ज्ञानकु अच्छी तरहसे प्राप्त करके अन्तीममें चारित्ररूप रत्नकु प्राप्त करनेके लिये प्रारब्धशाली होगा, उसमें तनीकभी विलंब करना नहिं, और यदी विलंब किया तब कदाचित् नीचे चला गया तब तुम्हारा पत्ता नहिं लगेगा और तेरा भावभी कोइ नहिं पुछेगा, और यदि सहज मनसे ग्रहण करेगा तब उपर कहे हुवे तमाम भयका क्षणवारमें नाश हो जायगा मानव भव सफल होगा और मोक्षमें नहिं पहोंचेंगे तब तक पुण्यानुबन्धि पुण्य प्राप्त